रत्नत्रय

(समीचीन ज्ञान)

संकलनकर्ता

विनयकुमार जैन

दिल्ली

भेंटकर्ता

श्रीमान् योगेन्द्र जैन–श्रीमती उर्मिला जैन

श्री घमंडीलाल जैन परिवार, खेकड़ा वाले (उ.प्र.)

मो. 9810029713

श्रीमान् रवि जैन–श्रीमती निशा जैन

मकान नं. डी–8/7, मॉडल टाउन, दिल्ली

मो. 9871102828, 9810148448

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
[श्रुतपंचमी पर्व के पावन अवसर पर]

प्राप्ति स्थान : **श्री योगेन्द्र जैन, खेकड़ा**
मो. 9810029713
: **श्री रवि जैन, दिल्ली**
मो. 9810148448
: **श्री एन.सी. जैन, दिल्ली**
मो. 9818115566
: **डॉ. पलक जैन**
मो. 9968655552
: **जे.के. जैन, गाजियाबाद**
मो. 9899466667

मूल्य : अमूल्य
भारत में - 290 रुपये
विदेश में - 30 डॉलर

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

प्राक्कथन

भगवान की वाणी गणधर ने सुनी, आचार्यों ने उसे लिपिबद्ध किया। परम्परागत आचार्यों के द्वारा हमारे पास तक पहुँची। हमने उन महान आचार्यों के लेखन का अध्ययन करके उसमें से मोती निकाले और माला बनाकर इस संकलन को पिरो दिया।

यह ज्ञान जहाँ संसार का ज्ञान समाप्त हो जाता है, वहाँ से शुरू होता है। इस ज्ञान को पाकर प्राणी को शान्ति का वेदन होगा, उसका अज्ञान अंधकार दूर होगा और वह अनंत दु:ख से अनंत सुख की प्राप्ति करेगा। इस संकलन की एक विशेषता है कि इसके सारे मोती अपने आप में पूर्णता लिए हैं। आप किसी भी मोती को, कभी भी ग्रहण कर आनन्द उठा सकते हैं, जब भी आपको समय मिले, जब भी आप आकुलित हों, उसे उठाकर, कहीं से भी खोलकर, किसी भी पद्य को पढ़कर सुख का अनुभव करोगे।

आपको सत्य ज्ञान के लिए इधर-उधर भटकने की जरूरत नहीं होगी। आराम से, एकाग्रता से, एकान्त में इसे पढ़कर आप सत्य ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। इससे आपको पूरी संतुष्टि होगी।

मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि तीन लोक का सर्वश्रेष्ठ स्थान मोक्ष और सर्वश्रेष्ठ पद सिद्ध पद पाने में, बनने में इस ज्ञान के अतिरिक्त किसी भी ज्ञान की आवश्यकता नहीं होगी।

आ. कुन्दकुन्द, जिनसेन, वीरसेन, अमृतचन्द्र स्वामी, पूज्यपाद स्वामी, उमास्वामी, शुभचन्द्र तथा समन्तभद्र आचार्य के ग्रन्थों से यह पूँजी एकत्रित की है, हमारा उनके प्रति बहुत आभार है।

- डॉ. पलक जैन, दिल्ली

मो. 09968655552

मेरी भावना

मैत्री भाव जगत में मेरा,
सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे,
उर से करुणा-स्त्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतों पर,
क्षोभ नहीं मुझको आवै।
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उन पर,
ऐसी परिणति हो जावे।।

गुणीजनों को देख हृदय में,
मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा,
करके यह मन सुख पावे।।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं,
द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित,
दृष्टि न दोषों पर जावे।।

कितनी सुन्दर, दुर्लभ मनुष्य योनि तेरी।
जिसको तरसे इन्द्र–देवों की टोली।।

जिसकी कीमत अनमोल,
लगा सके न कोई बोली।

परपदार्थों में लगा लगा कर,
कर दी इसकी उमर पूरी।

यही तो था तेरा कल्पवृक्ष,
जो करता पूरी, मनुष्य से सिद्धों की दूरी।

है अभी समय, पढ़कर गुरुओं की वाणी।
कर ले भगवान बनने की इच्छा पूरी।।

मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।
चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।1।।
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः।।2।।
अपराजित-मंत्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः।।3।।
एसो पंच-णमोयारो सव्व-पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं।।4।।
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम्।।5।।
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।6।।
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे।।7।।

रत्नत्रय

(समीचीन ज्ञान)

(1)

पुण्य की गर्मी जब तक है, हजारों साथ देंगे, गर्मी ठण्डी हो गई, कोई अपना भी साथ नहीं देगा, अतः सिंह बनो, श्वान मत बनो। ऐसा काम करो, जिससे पुण्य का संचय हो और पाप का क्षय हो और दृष्टि में यह रखो पुण्य-पाप दोनों का क्षय हो, जैन बने फिर जिन बनो।

(2)

मान-सम्मान, अपमान, पुण्य-पाप प्रकृति का ही होता-आत्मा का नहीं, जिसने मिथ्यात्व को जीत लिया, वह देश जिन हो गया। षटखण्डागम में लिखा है (धवला) जो जीव श्रद्धापूर्वक, शुद्धिपूर्वक श्रुत को (जिनवाणी) को सुनता है, असंख्यात गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा करता है।

(3)

जिनवाणी वक्ता बनकर मत सुनना, श्रोता बनकर सुनना, मेरा कल्याण हो, सबका कल्याण हो इस भाव से सुनाना और सुनना। मोक्षमार्ग चित्रों का मार्ग नहीं है, चारित्र का मार्ग है। चर्या ही चारित्र का उपदेश देती है, बाहरी धर्म प्रभावना करती है, किसी के पुण्य को तुम मुट्ठी में नहीं बांध सकते। अतः ईर्ष्या को छोड़ देना चाहिए।

(4)

ज्ञानी सभी द्रव्यों को जानता है, उसका वेदन नहीं करता। अज्ञानी उसका वेदन करता है, जानता नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान मात्र से ज्ञान चेतना का अस्तित्व मानना और ऐसा मानना कि हमें कभी फल का अनुभव नहीं होता तथा भोगों में भी बंध न मानना। यह आपका प्रलापमात्र है, जो आगम विरुद्ध है।

(5)

जो कर्त्तव्य और अकर्तव्य, श्रेय और अश्रेय, पुण्य और पाप, तत्त्व और अतत्त्व, धर्म और अधर्म को नहीं जानता - वह सम्यक्त्व से रहित है। योग्य-अयोग्य, नित्य-अनित्य, हेय-उपादेय, सत्य-असत्य, भव्य-अभव्य को नहीं जानता, वह सम्यक्त्व से रहित है। लौकिक जनों की संगति दुर्भावना युक्त करती है, उसे छोड़ना चाहिए।

(6)

ज्ञानी जब कषायवश हो गया तो असंत होता है, असंयमी ही होता है, ज्ञानी उपशम और तप भाव से युक्त है तो संयमी होता, कर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे हाथों से उठाकर फेंक दो, प्रत्येक आत्मप्रदेशों से कर्म प्रदेशों का सम्बन्ध है। मोह उत्पन्न करने की सामर्थ्य इस आत्मा की अशुद्ध उपादान शक्ति है। रत्नत्रय का मार्ग और संसार का मार्ग इन दोनों में से कोई समझौता नहीं है।

(7)

आत्मा का बोध ज्ञान से होता है, परन्तु आत्मा का शोध चारित्र से होता है, ज्ञान आत्मप्रसिद्धि का साधन अवश्य है, लेकिन आत्मविशुद्धि का साधन सम्यक्चारित्र है चारित्र-विहीन ज्ञान खुजली खुजलाने के समान है, जैसे विधवा का शृंगार। ज्ञान के राग में चारित्र का नाश मत करना। कीड़े गिर रहे हों तो स्वाध्याय का लोभ मत करना। ज्ञान का उद्देश्य चारित्र की सिद्धि है। सम्यग्दृष्टि जीव पर की निंदा करने के लिए मूक होता है -

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य वा।
दातांत विस्मरन पापी किंपुनधर्मदेशिनम्।।

एक अक्षर का भी ज्ञान जिसने दिया, उसे जिसने भुला दिया, वह पापी है।

(8)

वस्तु का स्वभाव, उसका नाम धर्म है, फिर करनेवाला धर्म क्या है ? जो पुण्यभूत क्रिया है तथा पाप से निवृत्ति की क्रिया उसका नाम प्रवृत्तिमय धर्म है, प्रवृत्तिभूत धर्म भेद से दो प्रकार का हुआ - 1. सम्पूर्ण पापों से निवृत्ति तथा स्वयं में पूरी प्रवृत्ति यानि स्वयं में लीनता उसका नाम मुनिधर्म है, 2. एकदेश रूप से पाप की निवृत्ति तथा एकदेश रूप व्रतों से प्रवृत्ति उसका नाम श्रावक धर्म है। अभेद दृष्टि से आत्मस्वरूप की लीनता धर्म है, जो वस्तु का स्वभाव है।

9

मैंने कुछ किया नहीं, मेरे साथ यह क्यों हो रहा है, इसका तात्पर्य तुम वर्तमान की पर्याय को देखते हो, भूत की पर्याय पर दृष्टि नहीं है, भविष्य की पर्याय पर दृष्टि नहीं है। जो रेल की पटरियों की ओर दौड़ रहा है वे घोर मिथ्यादृष्टि हैं, वह चार्वाक है, मिथ्यादृष्टि ही नहीं। विवेक ज्ञान हीनता वाला है।

''राम ने यह क्या किया ? सीता ने तो कुछ किया नहीं था'' कार्य को देखकर, कारण का ज्ञान नहीं होता, हमें निमित्त दिखता है। जबकि बिना कारण कार्य नहीं होता। याद रखना आत्मा वर्तमानिक नहीं है, त्रैकालिक है।

10

यदि सब कुछ कर्माधीन होगा, तो संयम, तप, त्याग का अभाव हो जायेगा। अनाचार-व्यभिचार फेल जायेगा।

कर्मोदय तो स्वीकार है, लेकिन कर्मोदय पर कार्य करना ही हो, यह नियम नहीं है। कर्मोदय पर कार्य करूँ या न करूँ, यह मेरा निज का वर्तमान पुरुषार्थ है, विवेक है, ज्ञान है, यदि इसे स्वीकारा नहीं तो कर्मों का चक्र चलता ही रहेगा, कर्म का बंध होने वाला नहीं है, वह बंध नहीं होगा तो मोक्ष कैसे होगा ?

भोग वस्तु का मिलना पुण्योदय है, उसको भोगना मेरे वर्तमान पुरुषार्थ का विषय है।

(11)

जीवन में यदि कुछ करना चाहते हो तो भवनों पर दृष्टि नहीं डालना, भव पर दृष्टि डालना।

जड़ भवनों के राग में चेतन, निज अनुभूति से शून्य आज तक होता आया है।

परिणामों की विशुद्धि बनाए बिना मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व को प्राप्त होता नहीं और सम्यग्दर्शन बिना निर्ग्रंथ होता नहीं। निर्ग्रंथ बिना मोक्ष जाता नहीं। हे ज्ञानियो ! अशुभ भाव करोगे, अशुभ उपयोग करोगे तो नियम से नरक आयु का बंध होगा – ऐसा आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है।

(12)

हे जीव ! द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म जब तेरे नहीं हैं, तेरी मति मोहित हो रही है, इसलिए तू पर को अपना मान रहा है, महावीर का राग गौतम को केवली नहीं बना पाया तो तेरा राग तुझे क्या बनायेगा ? वह तो समाधि भी न करा पायेगा। बिना समाधि तेरी इच्छा, मूर्च्छा तुझे नरक ही तो ले जायेगी। करना है तो अनुराग करो, वात्सल्य करो, राग कर्म न करो। सारे अशुभभाव, ईर्ष्याभाव, रागभाव के कारण से होते हैं। अशुभ भाव में आयुबंध हो गया तो सोच कहाँ जायेगा, कौनसी गति पायेगा। आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, माया, मिथ्या, निदान, अहंकार, ममकार, शृंगार – ये सब अशुभ भाव हैं।

(13)

उपशम भाव पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय करता है, अभिनव कर्मों को प्रवेश नहीं देता है, इस लोक और परलोक में महात्म्य को देता है।

सम्यग्दृष्टि समय को ज्ञान और वैराग्य भाव से बिताता है, मिथ्यादृष्टि समय को इच्छा, तृष्णा, निदान तथा अशुभ भाव व प्रमाद में बिताता है।

पहले शत्रु का जन्म नहीं होता, पहले परिचय का जन्म होता है, मैत्र भाव सबसे रखना लेकिन मित्र मत बनाना। जब तक तेरी पुण्य की सत्ता है तेरे चारों तरफ मित्र हैं, पुण्य के क्षीण होते ही सारे मित्र उड़ जायेंगे।

(14)

हे रागी प्राणी ! तू कैसा भोगों के मल का कीड़ा है कि भोग नष्ट होने लगे, भोगने की शक्ति क्षीण होने लगी, तब भी भोगों के मल से निकलना पसंद नहीं कर रहा है।

स्वतंत्र होना सीखना, स्वच्छंदी होना मत सीखना। इस जीव का सबसे बड़ा शत्रु है तो स्वच्छंद प्रवृत्ति अपने आप पर नियंत्रण रखना बहुत कठिन है, जिसका चित्त विषयों में आसक्त हुआ है तो ऐसा कौन-सा गुण है जो उसके पास बचे हैं ? हे ज्ञानी ! नरभव जो अत्यन्त दुर्लभ है उसका उपयोग संसार को संकुचित करने में काटो, न कि विस्तृत करने में।

(15)

जिसने संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर निज आत्मा में रमण करने के परिणाम किए हैं, वह श्रावक धन्य है, जिसके परिणाम संयमी हैं, जिसकी उत्साहशक्ति जवान है, उसके देह का बूढ़ापन चारित्र के लिए हानिकारक नहीं होता। धर्म तथा धर्मात्मा को देखकर जिसका चित्त आह्लादित होता है, यह संवेग भाव है और सम्यग्दृष्टि की पहचान। पंचमकाल में भी इस आत्मा में कैवल्य की योग्यता है। सिद्धत्व शक्ति से युक्त यह द्रव्य है, इसको चबाओ मत इसे फलने, उठाने दो। आज के भद्र परिणाम वीतराग भाव ही कल के भगवान बनायेंगे।

(16)

जिनशासन में गुणों की पूजा होती है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि गुणहीन चाहे श्रमण हो चाहे श्रावक हो इन दोनों की जिनशासन में वन्दना नहीं है, यदि आपको परमात्मा होने का प्रमाण-पत्र चाहिए तो किसी से मूत पूछना, शान्ति से बैठकर देखना, अन्दर तेरे कषाय-परिणति कितनी चल रही है, मात्र दिगम्बर भेष की पूजा नहीं, रत्नत्रयधर्म की पूजा है, निर्ग्रंथ मुनि के परिणामों को जिसने नमस्कार किया है, उसके चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय होता है। अतः निर्ग्रंथों की भक्ति में चारित्रमोहनीय कर्म की क्षपणा होती है।

17

मोक्षमार्गी को संसारी की लिप्तता कहाँ हैं और संसार की लिप्तता वाले को मोक्षमार्ग कहाँ ? दोनों मार्ग भिन्न हैं।

वहाँ शिवसुख है, वहाँ सबकुछ है, जहाँ शिवसुख नहीं वह तो शव ही है, ज्ञानी वही होता है जो संयम से युक्त होता है, ज्ञानी हमेशा ज्ञान भाव में जीता है, असाता में भी ज्ञानदशा में च्युत नहीं होता। असाता मात्र ज्ञान मोक्ष का हेतु नहीं है, ज्ञान का परिणमन समता का अनुभव हेतु है। सम्यक्त्वरूपी औषधि का सेवन करके, चारित्ररूपी औषधि से कर्मरोग का नाश किया जाता है।

18

जगत की समस्त मुद्राओं का विसर्जन जब होता है, तब जिनमुद्रा का उद्घाटन होता है, इस मुद्रा के सेवन से भगक्ता को प्रकट किए है, दिगम्बर मुद्रा, अरिहंत जिनेन्द्र की मुद्रा है, इसका उपयोग केवल अर्हंतता की सिद्धि के लिए, किसी अन्य पदार्थ की प्राप्ति के लिए नहीं है।

गुरुवर कहते तीव्र राग में यदि मरण हुआ तो तिर्यंच की योनि में जन्म होगा। मेंढ़क सेठानी की गोद में बार-बार क्यों उचक रहा था क्योंकि पूर्व भव में उसका पति था। वह पूर्व संस्कार ही थे जो मेंढ़क को तीर्थंकर के समवसरण में जाने को चल दिया।

ध्यान रहे, सब कर्मबंध चल रहा है।

(19)

पुण्य की दशा, कीचड़ भी कर देती है और परमात्मा भी बना देती है। नरक भी जाता है और स्वर्ग भी जाता है।

जो मनुष्य, मोक्षपथ पर चलना चाहता है, इसके सर्वप्रथम पाँचों इन्द्रियों के व्यापार को वश में करना चाहिए।

विश्व में सर्वाधिक संख्या अधर्म के लिए धर्म करने वालों की है, शान्ति विधान किसलिए कर रहा, व्यापार नहीं चल रहा।

संयमी भेष बनाने से पहले भावों को संयमित करना आवश्यक है, निर्बंध होने आया था तू वक्ता के बंधन में पड़कर आत्मा को नीचे मत ढकेल देना।

जो मुनि एकल विहार करता है, उसकी जिनवानी के अनुसार क्रिया कहाँ ? जिसका अहंकार गुरु खड़ा हो गया, उसने गुरु का साथ छोड़ दिया और एकल विहारी हो गया।

(20)

सम्मान भाव के बिना प्रेम, भक्ति के बिना दान, दया के बिना धर्म, गुरु के बिना तप-ज्ञान-चारित्र को निष्फल जानो।

यह प्राणी निश्चय से बाह्य इन्द्रियसुख कोई सुख मानता है, त्यागनेयोग्य, पाने योग्य क्या है ? मोक्षसुख क्या है ? नहीं जानता है।

भावों की विशुद्धि की वृद्धि जबतक नहीं है, तब तक सारे जगत के प्रीत द्वैतदृष्टि नजर आती है, जब तक राग-द्वेष है, द्वैत दृष्टि बनी रहेगी।

(21)

जब तक मोह का पर्दा मस्तिष्क पर पड़ा है, भगवान भी आ जावें तो समझ न पाओगे। पर्दा हटते ही, स्वयं ही समझ जाओगे, जवान बेटा मर जाये, स्वयं के हाथ-पैर टूट जायें, समझ नहीं आता, सत्य दिखता नहीं। कुरल काव्य में ऐलाचार्य कहते हैं मुझसे मत पूछ धर्म का फल क्या है ? पाप का फल क्या है ? स्वयं देख - एक पालकी ढो रहा है और एक पालकी में बैठा है, दोनों ही मनुष्य देह के धारी हैं।

(22)

धिक्कार है उन जीवों को जो शरीर के, मकान के श्रृंगार में लगे हैं, धन्य हैं उन जीवों को जो भावों के आत्मा के श्रृंगार में लगे हैं।

ज्ञानी आयुकर्म कितने दुर्लभ निषेक हैं, तू उसे कहाँ व्यय कर रहा है।

परम ब्रह्म के हित की बात न करके, परिवार, देश, राष्ट्र, समाजहित की बात करते हैं। यदि निषेक समाप्त हो गये।

संसारी प्राणी इतना कमजोर और अज्ञानी है, जो स्थिति उसे नियति देती है, उसी से लड़-मरकर पूरा कर देता है और फिर अगली पर्याय में नया शरीर पाकर वो ही क्रिया करता, वो ही दुःख सहने लगता है।

(23)

सोचना निजभाव नहीं है, यह परभाव है, जो भवातीत है, वो ही निजभाव है, भाव का तात्पर्य पदार्थ, भाव का तात्पर्य परिणाम।

भगवान से मिलने की बात नहीं है। निज भगवान को निहारने की बात है, जिन शासन में साधना परमात्मा से मिलने की नहीं है, यहाँ साधना भगवान को प्रकट करने की है, भगवान बनने की है, जिन-जिन से मिलते रहे हो, उनसे दूर हो जाओ, कर्मपिण्डों से मिलते रहे हो, उन सबसे बिछुड़ जाओ इसी का नाम भगवान है।

असत्य पर चलने वाले जगत में कोटि-कोटि हैं, परन्तु सत्य को मानने वाला एक भी नहीं है भैया।

(24)

निज आत्मतत्त्व की उपलब्धि के बिना नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती, सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना नियम से निर्वाण नहीं है। जैसे दान, दया, धर्म से विहीन गृहस्थ की शोभा नहीं, वैसे ही ज्ञानविहीन तप की शोभा नहीं है।

जैसे मक्खी श्लेष्मा में गिरी हुई मर जाती है, वैसे ही परिग्रह में पड़ा संसारी, अज्ञानी साधु काय-क्लेश से मरता है।

वस्तु के प्रति जैसी दृष्टि होती है, वस्तु वैसी झलकती है, परन्तु वस्तु वैसी नहीं है, वस्तु तो जैसी है वैसी है, अपने गुण पर्याय लिये हैं।

(25)

ज्ञान, कायक्लेश तप आदि शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर कार्यकारी होते हैं, तभी कर्मों के क्षय का कारण होते हैं, बाह्य दृष्टि यदि है तो संस्कारबुद्धि के कारण होते हैं, मुनि, ज्ञानी, सम्यक्त्व से रहित है तो कर्मों का क्षय नहीं करता।

आत्मा को नहीं जानता, उसका मनन नहीं करता, उसका श्रद्धान नहीं, तब एक श्रावक या श्रमण क्या करता?

जब तक अनंत सुख स्वभावी आत्मा को डालकर, उसकी भावना कर, उसमें परिणमन करें, तब तक उसकी कोई भी क्रिया सार्थक नहीं है, निःसार है।

(26)

ज्ञानियों यदि तुम्हारे भावों में विकृति चल रही है तो हर व्यक्ति के अन्दर अशुभ ही अशुभ नजर आयेगा। यदि चित्त पवित्र है तो नाग में भी भगवान नजर आयेगा।

वस्तु को सुधारने की आवश्यकता नहीं है, केवल अपने चित्त को सुधारने की आवश्यकता है, जिसके लिए तुम्हें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। बैठे-बैठे स्वयं के द्वारा, सम्यक्त्व के द्वारा उसे सुधारा जाता है।

जितने महापुरुष आज तक जगत में हुए वह किसी को समझाने नहीं गये, बैठे-बैठे अन्दर ही अन्दर उन्होंने वस्तुस्वरूप को समझकर विशुद्धि को प्राप्त किया।

(27)

उपयोग का उपयोग तूने अनुपयोग में लगा दिया, उपयोग का उपयोग, उपयोग में ही लगता तो तू कहीं भटकने वाला नहीं था।

हे मुमुक्षु ! आज तक जगत की किसी वस्तु ने तुझसे यह नहीं कहा 'आओ मेरा सेवन करो' तू ही वस्तु के पास गया है, उसका सेवन किया है, नरक में संसार की सारी सामग्री खाने के भाव आते हैं, यहाँ जिसको बहुत खाने के हर समय खाने के भाव आते हैं, समझ लेना आप पुण्यक्षीण पुरुष हैं।

(28)

ज्ञानियो ! जब तक विवेक जागृत है बुद्धि काम कर रही है, तब तक निर्णय कर लेना पता नहीं बुद्धि कब फिर जाये यानि सम्यक्त्व, संयम को अपना लेना। अन्तिम श्वांस तक इन दोनों को संभाल कर रखना। जब पुण्य क्षीण होता तो विवेक कार्य नहीं करता। भावों को संभालों तथा अपनी स्वतंत्र सत्ता का वेदन करो। विचारों को नहीं संभालोगे तो आचार कभी नहीं संभलेगा।

परभावों में निज का विवेक छूट जाता है, जिन के गुण स्वतंत्र हैं, इस पर हर समय विचार करते रहना होगा।

जो तत्त्व का निर्णय अरिहंतदेव ने किया है, वो ही निर्णय तुम्हें करना है।

(29)

इस जीव के अंतस् में अशुभ उपयोग की धारा अनादि काल से वर्तन करती रही, उसका फल दुर्गति का पात्र होता है। समानदृष्टि यह आपकी परिणति है, परन्तु सबका समान सुखी होन, यह आपकी परिणति का विषय नहीं है, प्रत्येक के निज पुण्य का विषय है। ऐसा चिन्तन करना कि कोई मेरा पतन कर रहा है अथवा करवा रहा है यह भी तेरा पाप का ही उदय है, पापकर्म के उदय में धर्म क्रिया, धर्म ध्यान, संयम आदि भी तो कर सकते हो, निस्वार्थ भाव से अपध्यान क्यों करना? जिनके संसार दीर्घ है, नीचगति का बंध हो चुका उसके धर्मध्यान नहीं होता है, वस्तु, व्यक्ति मेरी सुगति का साधन नहीं है, धर्मध्यान सुगति का। आर्त-रौद्र ध्यान दुर्गति का साधन है।

(30)

गृहस्थी, प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव कषाय की मंदता में भद्रता को प्राप्त होता है, ऐसा भद्र मिथ्यादृष्टि आसन्न भव्य जीव देव, शास्त्र, गुरु के चरणों में पहुँचता है और प्रतिबोध को प्राप्त होकर सम्यक्त्व परिणति को प्राप्त होता है, वो ही सम्यग्दृष्टि जीव देशव्रती और महाव्रती बनता है, आगे यथाख्यातचारित्र को प्राप्त होता है।

हीनता मत लाना की तू गृहस्थ है, वहीं संयम होता है, सम्यक्त्व श्रद्धान और विशुद्धि रागी ही वीतरागी होता है राग से जन्म हुआ, वीतरागता में मरण होता है।

31

सब जीवों के लिए पापारंभ से निवृत्ति और पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति कराने का हेतु ज्ञान ही है, ज्ञान को ही, ज्ञानधारा को ही धर्मध्यान कहा है, स्वानुभूति की अनुमति का वेदन करना है तो श्रुत की गोद में पहुँचना पड़ेगा।

पुण्य-पाप जीव की परिणति में है, उसे पवित्र नहीं किया तो क्या करा ? लोक व्यवस्था, तत्त्व व्यवस्था नहीं है। हे ज्ञानी ! उपयोग तो एक समय में एक ही होता है, एक दिन में 24 घण्टे ही होते है, देख तेरा उपयोग कहाँ जा रहा है।

जिनेन्द्र के शासन में वही ज्ञान ज्ञान है, जिससे तत्त्व का बोध हो, जिससे चित्त का निरोध हो तथा मान्यता की विशुद्धि हो।

32

किसी की पसंद सत्य नहीं होती, सत्य तो सत्य ही होता है, आज निर्णय करना, अपने भविष्य का क्योंकि नरक, तिर्यंच, स्वर्ग में जाकर निर्णय नहीं होता, याद रखना सम्यग्दृष्टि जीव की दुर्गति नहीं होती। अन्दर का विपरीत श्रद्धान छोड़ना बहुत कठिन है, विषय-भोग छोड़ना, घर छोड़ना फिर भी आसान है। हे ज्ञानी ! अंतरंग को सुधारो, बहिरंग क्रिया से भव नहीं सुधरता। बहिरंग क्रिया से वर्तमान में तिलक तो लग जाता है, लोक व्यवहार चलाने के लिए अपनी आत्मा की विडम्बना मत कर लेना।

(33)

अल्पज्ञानी यदि निर्मोही है तो मोक्ष जा सकता है, बहुज्ञानी यदि मोही है तो नियम से संसार में ही डोलेगा।

ज्ञान का अनुभव है, जिसे वह ज्ञानी है, कितनी डिग्रियों से युक्त ज्ञानी नहीं। ग्रंथों का बोध निर्ग्रंथों से लेने मत जाना। निर्ग्रंथता का बोध निर्ग्रंथ से लेने जाना।

आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं भाई! श्रुत का अभ्यास कर। मकान में नालियाँ एक बार बनती हैं, लेकिन सफाई प्रतिदिन होती है। मात्र शास्त्रों के पढ़ने से कुछ नहीं होता, उसका जीवन में अभ्यास प्रतिदिन होना चाहिए। कुंए में प्रतिदिन पानी निकालते रहने से कुंए का पानी साफ रहता है, ज्ञानाभ्यास करते रहने से ज्ञान शुद्ध रहता है।

(34)

श्रुतज्ञान का अभ्यास किये बिना तपश्चरण करने वाला सैनी सांसारिक सुखों में अनुरक्त रहता है। ज्ञानी, ध्यान दो। जो रागादिक भाव हैं, वह तात्कालिक हैं। जो ज्ञायक भाव हैं, वह त्रयकालिक हैं। मैं कौन हूँ त्रयकालिक या तात्कालिक। पहले ज्ञान, फिर ध्यान, फिर तप, ज्ञान में किंचित् भी विकार है, विपरीतपना है तो तेरा सारा ध्यान नि:सार है, मुक्ति का साधन नहीं है।

बिन जाननतैं दोष गुनन कौ कैसे तजिये गहिये।

(35)

पुण्य का फल पाप लीनता नहीं है।

'पुनाति आत्मानं इति पुण्यं' जो आत्मा को पवित्र करे, उसका नाम पुण्य है, पुण्य का भोग पाप में मत कर बैठना। जो आत्मा की पाप से रक्षा करे, वह पुण्य है, यह परिभाषा सर्वार्थसिद्धि में दी गई है – हे प्राणी तू कितना भोला है। पाप की बात को मान लेता है, उसे गले लगा लेता है, यदि पाप की बात को नहीं मानेगा, तो परमात्मा बन जायेगा। आत्मस्वभावं परभावमित्रं – परभावों में, आत्मा का स्वभाव नहीं है। त्यागी बनने के लिए त्याग करना होता है, मुनि बनने के लिए घर छोड़ना होता है।

(36)

रागादि से युक्त जीवों को अपना आत्मस्वरूप कुछ भी दिखाई नहीं देता। जैसे मलिन दर्पण में कुछ दिखाई नहीं देते।

संसार की सन्तति का जो अविराम परिणमन है, उसका विराम कैसे हो ? उसके लिए ज्ञानी, रत्नत्रय धर्म है।

जिस कषाय भाव से वर्तमान की शांति भंग होती है, वह कषाय भाव भविष्य में सुख का साधन कैसे बन सकता है, संसार के पदार्थों में सम्बन्धों के बढ़ने में जो सुख मानता है, वह अज्ञानी है क्योंकि इन सबके बढ़ने से कषाय भावों में उन्नति होती है।

(37)

ज्ञानियो, इस धरती पर एक दिन आयेगा जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा ही खायेगा, पंचमकाल में जब तक श्वांसे चल रही हैं, तब तक सम्यक्त्व की आराधना करके, पर में निरपेक्ष होकर के, संयमी होकर के, स्वयं में लीन होकर के साधना कर लेगा तो तू छठवें काल के दुःख से बच जायेगा। यह चिन्तन, यह साधना परिवार को छोड़कर, राग को छोड़कर, मित्रों देश को छोड़कर, मिथ्यात्वभाव को छोड़कर करनी होगी। परिवार को साथ लेकर तुम परमात्मा बनने का चिन्तन करोगे तो कभी नहीं कर पाओगे।

(38)

सम्यक्त्व के साथ की गई संयम-साधना ही सर्वज्ञदेव के शासन में मान्य है, यहाँ वीतराग भावों के साथ ही वीतराग भेष वन्दनीय है, निर्ग्रन्थों की वंदना, जिनवरों की वंदना निर्बन्ध होने के लिए करना। वीतराग मुद्रा आत्म-सिद्धि की प्राप्ति के लिए करना। यह वीतरागियों का मार्ग है, यह रत्नत्रय का मार्ग है ज्ञानियो। यह राग का मार्ग नहीं है, यह पाप-पुण्य का मार्ग नहीं है, यह आत्मकल्याण का मार्ग है।

जो आत्मस्वरूप पर किंचित् भी दृष्टिपात नहीं करता, वह धर्म मार्ग पर नहीं है, वह सर्वज्ञदेव के मार्ग पर नहीं है, आ. पूज्यपादजी कहते हैं, मोह में आवृत्त ज्ञान निश्चय से स्वभाव को प्राप्त नहीं होता।

(39)

जो प्राणी मन, वचन, काय को वश में नहीं करता, माया मिथ्या, निदान से युक्त है अभिमानी, ईर्ष्यालु, कलह करने वाला, याचना करने वाला है, वह दीर्घ संसार में भ्रमण करता रहता है। जो प्राणी विषयों में आसक्त है, कषायों से युक्त है, आत्मस्वभाव से अप्रभावी है, वह सम्यक्त्व से रहित है।

सम्यक्त्व शून्य साधक की साधना मोक्ष का साधन किंचित् भी नहीं है। ज्ञानियो ! संसार की संतति का विराम कैसे हो ? तो उसके लिए निर्मल रत्नत्रय धर्म की साधना करना ही एकमात्र उपाय है।

(40)

हे ज्ञानी साधु बनना सरल है, परन्तु साधुत्व आना अत्यन्त कठिन है, सम्यक्त्व के साथ साधना दुर्लभ है, जितनी अधिक निर्मल साधना होगी, विशुद्धि होगी, उतने ही शीघ्र कर्मों की निर्जरा होगी।

जिनको कोई विवेक नहीं है, जिसकी कोई मर्यादा नहीं है, अभी ज्ञानी होकर भी मनुष्यत्व से शून्य है तो फिर साधुत्व कहाँ ?

वर्तमान के ज्ञानी लोग यदि अमर्यादित जीवन जी रहे हैं तो वह भेष से मनुष्य अवश्य है, लेकिन भाव से तिर्यंच ही है।

(41)

पंचमकाल में स्वाध्याय ही परम सुख का साधन है, परम तप है। श्रुत की साधना में चित्त स्थिर होगा और निर्मल भी। धन्य है वह श्रमण, श्रावक जो तत्त्वचिंतन में लीन है।

सम्यग्ज्ञानी ही कर्म से रहित होता है तथा भगवान बनता है। मुनि के लिए ज्ञान–ध्यान ही बताया है। वीतरागी श्रमण ज्ञानोपकरण एवं संयमोपकरण मात्र को धारण करते हैं।

श्रीजी का मिलना इस पंचमकाल में इतना महान नहीं है जितना जिनवाणी का मिलना जरूर महान है। जब कभी भी तेरा कल्याण होगा, इस जिनवाणी से ही होगा।

(42)

जिस भवन में तुम रहते हो, कितना ही सुन्दर बनाया हो, उसे जाना ही है, यह शरीर कितना ही इसका श्रृंगार करो, इसे भी छोड़ना है। फिर उस भवन में क्यों नहीं वास करो, वहाँ से कभी जाना ही नहीं, उसे प्राप्त करो, जिसे कभी छोड़ना ही नहीं। भगवान कुन्दकुन्द कह रहे हैं, कर्म मेरी आत्मा का धर्म नहीं है, वह कह रहे हैं, वैराग्यबल भी होगा घर में ही होगा, मंदिर में नहीं होगा, मंदिर में तो भक्ति होती है।

हे ज्ञानी ! छोड़ो सब निवास स्थानों को जो निश्चित मुकाम है, तेरी आत्मा, उसमें वास करो।

(43)

कुन्दकुन्द कहते हैं हे योगीश्वर ! जो उपदेश आप सभा में श्रावकों को देते हो, वह उपदेश स्वयं की सभा में स्वयं को भी दिया करो। सुख-दुःख में समता भाव रखना सामायिक है। बैरी से बैर वृत्ति करना है यह साम्य वृत्ति करता है, यह आपका वर्तमान पुरुषार्थ है। याद रखना अन्तिम निर्णय में पूरे जीवन का लेख-जोखा देगा।

जितना अच्छा तुम्हें संसार मिलेगा, भोग विषय नाम यश मिलेगा, उतना अच्छा नरक मिलेगा, स्थिति अच्छी नहीं होती, गति अच्छी-बुरी होती है।

(44)

धन्य है उस योगी की दशा को, जो मन को, कर्मों को घोंट रहे हैं, जो संसार से दूर एकान्त में बैठकर अपनी आत्मा में रमण कर रहे हैं।

अपनी रक्षा के लिए, अपने स्वाद के लिए, अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का घात न करना उपशम भाव, निस्पृहवृत्ति, ध्यान-अध्ययन में लीनता - ये मुनियों के गुण बताये हैं।

अंतरंग में जब विवादि आते हैं तो न समय दिखता है, न स्थिति, न निमित्त भीतर का भगवान स्वयं जाग जाता है।

जो आत्मा के तीन भेद - बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा को नहीं जानता, उसका तीव्र तप भी संसार का ही कारण है।

(45)

धर्म की सम्यक् व्याख्या तभी कर सकेंगे, जब आपको आत्मा की त्रैकालिक सत्ता पर श्रद्धा होगी, जिसको यह श्रद्धा नहीं, वह कभी भी वस्तुस्वरूप का व्याख्यान कर नहीं पायेगा, जिसको मात्र स्वयं के जीने का राग है, वह नास्तिक है। वह केवल जीना ही जीवन जानता है। पुण्य-पाप के व्याख्यान की उसे क्या आवश्यकता। अरे मूढ़ जीना ही जीवन नहीं है, मरने के बाद भी जीवन है।

जिसे आत्मसत्ता का श्रद्धान नहीं है, उसे पुण्य-पाप, अहिंसा-हिंसा से क्या प्रयोजन ? जैनदर्शन में किसी की पूजा नहीं है। वहाँ 'वन्दे तद्‌गुणलब्धये' वहाँ तो आचार की पवित्रता के घोल घुले हुए विचार हैं वे पूज्य हैं।

(46)

ज्ञानियों पहले चारित्र भ्रष्ट नहीं होता, चित्त भ्रष्ट होता है, जिसका विचार उत्कृष्ट होगा, उसका आचार उत्कृष्ट होगा।

जिसके चित्त में अहिंसा नहीं, उसके चारित्र में अहिंसा कैसे आयेगी ?

पाप प्रवृत्ति की चर्चा तो सारा विश्व करता है, पाप परिणति की चर्चा केवल जिनदर्शन करता है। शरीर में जो पाप होते हैं वह दिखते हैं, मन से जो पाप होते हैं वो दिखते नहीं, जैनदर्शन उसकी बात करता है।

(47)

धर्म व्यवस्था भिन्न है और धर्म संभाल व्यवस्था भिन्न है। रागियों ने समाज व्यवस्था में धर्म को रख लिया है, इसलिए लोगों ने धर्म से दूर होना प्रारम्भ कर दिया। लोक में, समाज में महावीर 'को' मानते हैं वो महावीर के भक्त।

यह गलती है जो महावीर 'की' मानते वो ही महावीर के भक्त यह सही है।

भगवान महावीर ने क्या कहा है – समदृष्टि सम्यग्दृष्टि।

पानी आज तक गंदा नहीं हुआ है, पानी में गंदगी आई है और पानी गंदा होने का कारण पानी नहीं था, बाहर की गंदगी थी। मैत्री भाव हटने का कारण क्या हुआ है ?

किसी ने निश्चयनय का आलम्बन ले लिया, किसी ने व्यवहारनय का आलम्बन ले लिया।

किसी ने परमात्मा की पूजा शुरू कर दी, किसी ने उनकी वीतरागता को देखा। पर किसी ने भी वस्तुस्वरूप को नहीं समझा।

जो व्यक्ति भगवान महावीर की पूजा कर रहा है, प्रश्न करो, पूजा किसकी कर रहा है।

सत्य तक पहुँचनेवालों की संख्या दी नहीं है, सत्य तभी समझ में आयेगा, जब दृष्टि अनेकांत होगी।

भगवान की प्रतिमाओं की यदि पूजा करते हो तो जगत् के प्राणियों के प्रति साम्यभाव रखना प्रारम्भ कर दो।

(48)

मन-वचन-काय - इन तीनों को एक करके निजस्वरूप में लीन हो जाना, इसका नाम सामायिक, माला फेरना सामायिक नहीं है, शुभ भावना है। सामायिक तो निज आत्मश्रद्धा का नाम है। जब तक जीवों में समता भाव नहीं, सामायिक नहीं। आर्त-रौद्र परिणामों के अभाव होने का नाम सामायिक है।

समता का आना सबसे कठिन साधना है, कपड़े उतारना बहुत कठिन नहीं, कषाय उतार फेंकना ही तो कठिन है। ज्ञानी ! किसी पर करुणा, दया हो या न हो, लेकिन अपने परिणामों पर दया अवश्य कर लो।

(49)

परमात्मा पर विश्वास करने में स्वर्ग मिलता है, स्वयं पर विश्वास करने से भगवान बनता है। पुण्यात्मा के मुख में जहर भी अमृत हो जाता है, मेरी आत्मा का धर्म दुनियां के साथ जाना नहीं है, मेरा तो ज्ञायक स्वभाव है। देखो, जानो, जाने दो, सामायिक के पूर्व दुनिया के सारे संपर्क दूर कर दो जगत् के प्राणी मात्र को दुःख नहीं, ऐसे परिणाम मन में होना इसका नाम मैत्री है।

मंदिरों की संख्या बढ़ रही है, साधुओं की संख्या बढ़ रही है, लेकिन साम्यभावियों की संख्या घट रही है, क्योंकि हम बहिरंग बातों पर जोर दे रहे हैं। अंतरंग का लक्ष्य नहीं हो रहा है।

(50)

मोक्षमार्ग है, इसमें पूरी शुद्ध सोलह ताव का ही चलता है, टांके वाला मार्ग, मोक्षमार्ग में नहीं चलता, परमाणु मात्र भी यदि मूर्च्छा है तो सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाओगे, सारे आगम को धारण करने के बाद भी शान्त बैठकर विचार करते। राग कितना घटा है 'आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा' आत्मा की प्रभावना रत्नत्रय के तेज में करना - इसी का नाम प्रभावना है। संक्लेश परिणामों से आयु के निषेकों का क्षय होता है।

(51)

अज्ञानी ने ध्यान की शिक्षा दे दी, श्वांस को देखो घण्टों बैठा दिया, श्वांसों को देखने के लिए नजर श्वांसों पर नहीं। भाई कषायों पर रखनी है। वह कितने ऊपर नीचे हो रहे हैं, उन्हें मंद करना है, श्वांसों का निग्रह नहीं करना, कषायों का निग्रह करना है। मैं श्वांस नहीं, मैं आँख नहीं चिंतवन करो।

ऐसा कर भ्रमित हो रहा है, कोई नाच-गान करके ध्यान लगाने को कहकर भ्रमित कर रहा, भाई! आर्त, रौद्र, ध्यान के घटने का नाप और धर्म ध्यान में रहने का नाम, चित्त की एकाग्रता का नाम ध्यान है।

आँख बंद करके किसी प्रिय का चेहरा झलका - क्या यह ध्यान नहीं है। पर कौनसा। आँख बंद करके तीर्थंकर का बिम्ब झलका यह भी ध्यान है, इस अंतर को समझना, ध्यान समझना है।

(52)

छह द्रव्य में एक ही द्रव्य है जो मोही है, बाकी सब द्रव्य तो निर्मोही हैं। चेतन ने जड़ को देखकर राग कर लिया, पुण्यबंध कर लिया और द्रव्यकर्म को बुलाकर अपने आपको नरक में पटक दिया। सीता के रूप को देखकर मोहित न होता तो लक्ष्मण के बाणों से क्यों मरता ? प्राणी काम के बाणों से मरता है। अंतर केवल कपड़ों का है, अंदर तो सब बराबर है। सत्य दृष्टि से हम सब शून्य हैं, जो सत्यदृष्टि से शून्य है चाहे कोई भी भेष धारे हो, कोई भी व्रत धारे है मोक्ष जाने से शून्य है।

(53)

जब भी कोई भाव आयेगा कुछ करने का शान्ति भंग करके ही आयेगा, भगवान बनने का भाव भी आयेगा, तब भी शान्ति भंग होगी। भगवान बनने के भाव से भगवान नहीं बनेगा। जब शांत हो जायेगा, तो भगवान बन जायेगा, अग्नि को कुरेदने से अग्नि शान्त नहीं होती और भड़क जायेगी। जो भगवान बनने के भाव से ही भिन्न हो चुका है वही भगवान बन पायेगा। ज्ञानियो सोचो, जब भगवान बनने का भाव भी भगवान बनने नहीं देता, तो जगत के प्रपंचों के भाव, पुण्य क्रियाओं के भाव की आकुलता तुम्हें क्या बनने देगी ? जिसको करने का कोई भाव ही नहीं रहा, उसका जन्म-मरण छूटता है, तरना है तो करने का भाव छोड़ दो।

54

जो शक्ति ध्यान में है, ध्यान साम्यभाव में है, वह शक्ति जगत में कहीं नहीं है। एक मिनिट के ध्यान से असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा होती है।

वैरागियों को देख द्वेष भाव आ रहा है, संयम के प्रति अरुचि हो रही है, साधर्मियों के प्रति ईर्ष्याभाव आ रहा है, समझ लेना दुर्गति में जाना है। आ. कुन्दकुन्द कहते हैं दीर्घ संसारी स्वार्थवश धर्मात्मा को देखकर कलह करता है।

अन्य जीव धर्मात्मा को देखकर आनंदित होता है। ऊँचे सिंहासन पर बैठकर साधुत्व का रहना अत्यन्त कठिन है।

55

जो निज आत्मा के लिए साधना करता है, उससे जिनशासन की प्रभावना स्वयमेव हो जाती है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं - आत्मरथ पर आरूढ़ होकर आत्म गुणों की जो आराधना है, वही ध्रुव प्रभावना है।

राजा मधु हाथी पर बैठा हुआ था, धनुष हाथ में था, शत्रुघ्न बाण छोड़ रहा है, देखते-देखते दृष्टि मुड़ गई, धनुष फैंक दिया, गज पर बैठे-बैठे केशलुंचन प्रारंभ हो गया। जमीन पर उतर कर भी तो केशलुंचन किए जा सकते थे। चिंतवन चल रहा था, कहाँ हाथी से नीचे उतरा और उतरते-उतरते कहीं परिणाम उतर गये तो फिर क्या होगा ?

(56)

जो दया से विशुद्ध है, वही धर्म है। निज के परिणामों को संभाल लो, यही विश्व की सबसे बड़ी दया है। कषाय परिणाम स्वयं को काट रहे हैं, उस निजात्मा पर दया आज तक नहीं की, दया बाह्य में तो बहुत की। आत्मरमणी कभी नहीं हुआ, बाह्य रमणी ही हमेशा होता रहा।

भोजन शरीर की रक्षा के लिए, संयम पालन करने के लिए, ज्ञान तथा ध्यान की वृद्धि के लिए ग्रहण किया जाता है।

(57)

शांतता का सानंद यदि कहीं है तो अध्यात्म विद्या में है। सारी विद्यायें जहाँ शांत हो जाती हैं, सारी विद्याओं का जब अंत हो जाता है। वहाँ से अध्यात्म विद्या का आरंभ होता है। कैसी होगी उस योगी की दशा, जो अहर्निश समरस में लीन रहता है, ध्यान रखना इन्द्रिय सुख की प्राप्ति तो लाभान्तराय कर्म, योगान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होगी, परन्तु स्वात्मा की अनुभूति का आनन्द किसी कर्म के क्षयोपशम से नहीं मिलता। वह तो आत्मा का आत्मा के द्वारा प्रकट होता है, इस पारिणामिक भाव, किसी कर्म की अपेक्षा नहीं है, यह आत्मा का अपना निज सहजभाव है, जैसे पानी का अपना स्वाद।

कर्म का किंचित् भी अपेक्षित भाव जिसमें नहीं है, वह आत्मा का ध्रुव स्वभाव है, कोटि-कोटि भव लग जाते हैं, इसको प्राप्त होने में।

(58)

एक जीव भोग-भोग कर बंध कर रहा है, दूसरा भोगों को देखकर ही बंध कर रहा है, एक पाप नहीं कर रहा, पाप की भावना कर रहा है।

अच्छी सोच उसी की बनती है, जिसका भविष्य सुन्दर होनेवाला है। अच्छा चिंतवन करने के लिए भी पुण्य चाहिए। प्रशस्त परिणाम पाप की सत्ता में नहीं आते। बहुत लोग अच्छा सोचने का भाव करते हैं, लेकिन मन में अच्छा आता नहीं। अच्छे चारित्रवान की प्रशंसा भी कर रहा है, फिर भी उस रूप बनने के परिणाम क्यों नहीं आते ? मन में आता है, गलत कर रहा हूँ, फिर भी गलत को रोक नहीं रहा है।

जैनदर्शन ही शक्ति देता है, अपने पापों का स्वीकार करने की, अपने पापों को प्रगट करने की जिसका नाम प्रतिक्रमण है।

(59)

सम्पूर्ण पदार्थ को जानकर भी क्या लाभ है ? और बहुत तप करके भी क्या लाभ है। सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन, ज्ञान और तप को संसार का बीज जानो।

आज मंदिरों, मुनियों, शास्त्रों की कमी नहीं है लेकिन एक-दूसरे के प्रति वात्सल्य भाव समाप्त हो गया है, जो धर्म की व्याख्यायें हैं, वे संकुचित हो गई हैं, विशाल धर्म के बीच मान कषाय की दीवार खड़ी हो गई है।

(60)

अनन्त द्रव्यों को जानने वाला जगत में कोई द्रव्य है तो उसका नाम जीवद्रव्य है, निज के धर्मों को, पर के द्रव्यों को पहचानने की सामर्थ्य किसी में है तो वह मात्र जीवद्रव्य है।

हेय-उपादेय का विवेक कहीं है तो एक मात्र जीव के पास है अतः जीव की बुद्धि जड़ नहीं होनी चाहिए, मेरा विकास, मेरा ह्रास, दूसरे के हाथ में नहीं है। इस भ्रम को निकाल देना।

यदि उपादान तेरा पवित्र है तो उत्कर्ष तेरे हाथ में है, यदि उपादान हीनता की ओर प्रवृत्त होता है तो अपकर्ष ही होगा।

(61)

विश्वास रखो, आप पुण्य लेकर आये थे, उस पुण्य का कहाँ-कहाँ उपयोग किया। तू जरा हिसाब तो लगा। आयु कर्म का हर समय क्षय हो रहा, पुण्य कर्म का क्षय हो रहा, इस देह का क्षय हो रहा है। किसमें ? सोचना होगा ? किस किस कार्य में इनको नष्ट किया है तूने पैसा कमाने में, खर्च करने में, समय भी लगा और बुद्धि भी। आत्मा का गुण ज्ञान-दर्शन है उसका उपयोग खाने, कमाने में हुआ क्या नहीं, पुण्य को तूने 5 पापों में नष्ट कर दिया और 4 संज्ञा में कर दिया, सप्त व्यसन में कर दिया। विषय-भोगों में कर दिया, चार कषायों में कर दिया।

समस्त पुण्य को पाप में बदल दिया, यह तूने क्या किया ?

(62)

बिना मन के मंदिर गया, स्वाध्याय किया, जाप में बैठ गया। तब भी विश्वास रखना, पुण्य का ही आस्रव होगा। संकट के दिनों में, मित्रों के, रिश्तेदारों के घर मत जाना, मात्र पंचपरमेष्ठी के द्वार जाना। जिसके पास चार-चार शरण बैठे हों, कौन अभागा होगा, जो दुनियां के चबूतरों पर भटकने जायेगा। जो यहाँ पर एक संग मिलकर बैठकर धर्म आनन्द लेते हैं वो ही सिद्धशिलाा पर एक में असंख्यात एक साथ विराजते हैं, जिसके अंतस में एकत्व भाव नहीं, अंतस में साम्यभाव नहीं, पुद्‌गल भाव है, वह सिद्धशिला पर कैसे बैठ पायेगा।

(63)

यदि आपके अंदर क्षमता है, वीरता है तो दूसरे के सुख को देखकर मुस्कुराना सीखो, दूसरें के दुःख को देखकर दुखी होना। एक बात याद रखना "जीव की उन्नति या अवनति उसके स्वयं के हाथ में है, भगवान के हाथ मे नहीं है। पुरानी गलतियों को माफ करने की बजाय, नई शुरू कर दो। संकल्प करो आगे के जीवन में गल्ती नहीं करूँगा। तत्त्वज्ञानी जीव बहुत विवेकी होता है। योगी पुरुष कभी उपसर्गकर्ताओं को उत्तर देने नहीं जाते। अपने मार्ग को उत्तरोत्तर आगे बढ़ाते हैं और शिवालय पहुँच जाते हैं। उत्तर देने जाएगा तो वह पीछे ही रह जायेगा। बुद्धिमान पुरुष धूप-छाँव को नहीं देखते हैं। अपनी बुद्धि को ही देखते हैं।

(64)

भगवान बनना है तो पाषाण जैसी क्षमता धारण करो। छैनी चले, हथौड़े चले, दुनियां की गाली मिले, मौन होकर बैठ जाना तो परमात्मा नियम से बन जाओगे।

पर्याय मिली, मिलती रहेगी। पर्याय मिलने से पहले उन परिणामों को मिटा देना जिससे पर्याय धारण करनी पड़ती है, आंख बंद होने से पहले कषाय बंद कर देना।

धर्म सभा में रहते तो निर्मल भाव रहते हैं, बाहर जाते ही क्लेशित हो जाते हैं, तेरा स्वभाव क्या है ? तू उसे भूल जाता है, संस्कार से मुक्ति चाहते हो तो महात्मा बनकर एकान्त में रहना सीख लो।

(65)

संक्लेश मुक्त मनसा। संक्लेशता से मुक्त रख पाना अत्यन्त कठिन है। जैनदर्शन में साधु बनने का अर्थ संक्लेश से मुक्त होना है, अन्य जीव को ही जिनवाणी सुनने में तत्त्वचिन्तन में आनन्द आता है। संसार में दुःखी वही होता है, जो वस्तु को अपना मान लेता है, जैनदर्शन का संवैधानिक आनन्द देनेवाला कोई सूत्र है तो कण-कण स्वतंत्र है।

जगत में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो मुझे दुखी करके चली जाये। धूल भी वहीं चिपकती है, जहाँ स्निग्धता होती है, दुःख वही पाता है, जहाँ राग होता है, अपने ही रुलाते हैं, पराये नहीं, इसलिए भगवन्त कहते हैं परायों के बीच में रहना चाहिए।

(66)

जन्म लेने के लिए जो जन्में, वह मिथ्यादृष्टि है। जन्म रहित होने के लिए जो जन्मे वह सम्यग्दृष्टि है, यह जन्म इसलिए मिला, यह उत्तम स्थिति इसलिए मिली है कि ऐसा पुरुषार्थ कर लो, जिससे जन्म-मरण का अभाव हो जाये। मृत्यु की पीड़ा को निहारना कितनी तड़पन है। आत्मप्रदेश जब खिंचते हैं, निकलते हैं शरीर से बाहर तीव्र वेदना होती है। बार-बार ऐसी वेदना से तेरा ज्ञाता जुड़ा है। इस पर्याय के बाद दूसरी पर्याय न बने, ऐसा यत्न कर। हे ज्ञानी ! अपने राग में तूने कितनों का नाश किया वर्तमान कब भूत हो जायेगा, निश्चित नहीं है। वर्तमान को पवित्र कर लो और वर्द्धमान बन जाओ।

(67)

हे प्राणी, अपना भला चाहता है तो अपनी देह को अपने द्रव्य को सुपात्रों के दान में लगा देना। सम्यग्दर्शन सहित, धर्मध्यान में रत, परिग्रह रहित, तीन शल्यों से रहित, विशेष पात्र कहे गये हैं। विशेष पात्र को जो दान देता है, वह मोक्षमार्ग में रत है। सारे विश्व को एकत्व की दृष्टि देनेवाला और प्राणी मात्र के प्रति सम्यग्दृष्टि रखने वाला कोई दर्शन है तो वह जैनदर्शन है, जैनदर्शन ही ऐसा है, जहाँ अहिंसा दो प्रकार की बताई है। एक का नाम द्रव्यहिंसा, दूसरे का नाम भावहिंसा है। किसी के प्राणों की रक्षा करना द्रव्यहिंसा, स्वयं के परिणामों को कलुषित नहीं होने देना भाव अहिंसा है।

(68)

धर्म धर्मात्मा के बिना नहीं होता – 'न धर्मो धार्मिकै बिना''

जो धर्मात्मा को स्वीकार नहीं कर पायेगा वह धर्म को क्या स्वीकार करेगा ? धर्म कहाँ है ? धर्मात्मा में। मैं मुनि हूँ, मैं त्यागी हूँ, यह भी तुझे ध्यान नहीं करने देगा। उपशम भाव ही संयम भाव है। जिनवाणी बार-बार सुनोगे, तो समझ आना प्रारंभ हो जायेगा। आत्मा स्व-पर संवेदी है, ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है, जो-जो जाना जाता है, आत्मा से ही जाना जाता है।

(69)

आंखों से देखा तो जाता है, लेकिन देखन हारा, आंखें नहीं आत्मा है इन्द्रियाँ कारण तो हैं, इन्द्रियाँ कर्त्ता नहीं हैं।

मैं कुछ नहीं करता, यह पुद्‌गल का परिणमन है, है अज्ञानी। यह पुद्‌गल का परिणमन नहीं, यह तेरा कर्त्ता स्वभाव है, जो आत्मा की विभाव दशा है, यह सारा उसका परिणमन है, आत्मा की विभाव दशा है, वह ही खाती है, वह ही नाचती है।

शुद्धात्मा खाता नहीं, अशुद्धात्मा ही खाती है, आत्मा जिस समय विभाव में परिणमन कर रही है, उस समय भी स्वभाव का ज्ञान रखती है, गाली दे रहा प्राणी जानता है, मैं गलत कर रहा हूँ।

70

जो भावेन्द्रिय है वह भाव, ज्ञानी आत्मा का होने पर भी आत्मा का स्वभाव नहीं है।

द्रव्येन्द्रिय मेरा स्वभाव नहीं, भावेन्द्रिय मेरा स्वभाव नहीं। तो मैंने पूरी पर्याय किस पर नष्ट की द्रव्येन्द्रिय से विषयों का सेवन किया और भावेन्द्रिय से राग की पूर्ति करी, इस तरह पूरी पर्याय नष्ट कर दी। जो विकार मन में आ रहे हैं, वे स्वभाव नहीं सोपादिक हैं, जितना शांत बैठ सकते हो, उतना अशांत नहीं बैठ सकते। तुझे अपने हित के लिए विकारी भावों का तिरस्कार करना चाहिए।

71

हे ज्ञानी ! बिना सोपाधिक दशा के विकार आते नहीं। जब परवस्तु का राग सता रहा है, छूटोगे कैसे ? द्रव्य कर्म ने धक्का लगाया, भावकर्म बिगड़ने लगे तो नोकर्म को सम्हाल लेना - इसका नाम संयम है। इन्द्रियों को देह को उस तरफ बिगड़ने मत देना। गुस्से में आपा मत खो देना। स्वाद में अभक्ष्य मत खा लेना। लोभ में हिंसा मत कर देना।

भावकर्म का स्खलित होना, एक अतिचार हुआ, नोकर्म का चलायमान, अनाचार हो जायेगा। शुभ-अशुभ में, सम्यक्-मिथ्यात्व में, दुःख-सुख में जो मुस्कुराता हो, ज्ञायक भाव रखता हो, उसका नाम सम्यग्ज्ञानी है।

(72)

नरक में जाने के लिए, स्वर्ग में जाने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है सिद्ध बनने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता। जो कुछ तुम्हारे पास है, अन्दर और बाह्य में उसे छोड़ दीजिए, यह सहज है।

जो सहज स्वरूप है वह निरुपादिक (ऑरिजिनल) है। असहज स्वरूप सोपादिक (उठाया हुआ) है। सहजस्वरूप के लिए किसी सहयोग की आवश्यकता नहीं है। असहज स्वरूप के लिए संयोग की आवश्यकता है, ब्रह्मनंद सहज है, जो जो यह सापेक्षी द्वैत है, वह असहज है, जब तक 8 कर्मों के परिग्रह का अभाव नहीं होता, पूरी सहजता नहीं है।

(73)

जो वैभव मिला है, वह पुण्य का फल है। जो धन मिला, उसको भोग लिया – पुण्यवान संसार में दिख रहे हैं, वह सब पापात्मा हैं क्योंकि उनका सारा पुण्य भोगों में–मदिरा में खर्च हो रहा है। प्रबल पुण्यात्मा ही 7वें नरक में जाता है। पुण्य से नरक नहीं जाता, पुण्य के दुरुपयोग से नरक जाता है। पुण्य के सदुपयोग से स्वर्ग जाता है।

अविकारी भाव को प्राप्त होना है तो तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को समझना पड़ेगा।

(74)

तत्त्वज्ञान के लिए, तत्त्व निर्णय के लिए तत्त्वज्ञानी का समागम अनिवार्य है। आचार्य बार-बार कह रहे हैं श्रद्धान को दृढ़ करो। जब ज्ञान सम्यक् होगा तो जगत की परिस्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं। मिथ्यात्व पहले उतरे, फिर कपड़े उतरें। ज्ञानी का कण-कण स्वतंत्र है, मेरा कर्म मेरा है, अन्य कर्म मेरा कुछ नहीं करता। मोक्षमार्ग की यात्रा उसी की सम्यक् है, जिसके पास निश्चय और व्यवहार की दो आँखें हैं। पंचपरमेष्ठी की आराधना साधन है, निज शुद्धात्मा की आराधना साध्यभूत है, जब तक साध्य न मिले तब तक साधन को नहीं छोड़ना।

(75)

सम्यग्दृष्टि जीव आराध्य की आराधना करता है। आराधना के लिए नहीं, आराध्य बनने के लिए। साध्य के लिए हम हमेशा साधन का अवलम्बन लेते हैं।

निश्चय की भाषा, व्यवहार की भाषा साध्य नहीं है दोनों भाषाओं में विसंवाद नहीं करते। सोचो, हम साधन की ही सेवा में तो नहीं लगे हुए। परम साध्य की सिद्धि चाहते हो तो सब भाषाओं को भूल जाओ। सत्स्वरूप सत्ता की सिद्धि चाहिए तो असत् स्वरूप सत्ता से आपको राग हटाना होगा। यह सहज है। सहज को समझना सहज नहीं है।

(76)

सोच दर्पण देखते-देखते, पर के चेहरे देखते-देखते कितनी उम्र नष्ट कर डालो। जबकि मैं स्वयं स्वरस से युक्त, निर्मल भाव युक्त मैं अकेला हूँ।

मैं तो आनंदकंद हूँ। ज्ञायक भाव से ही मेरा भाव है, ज्ञेयभाव मेरा स्वभाव नहीं है, वे अज्ञानी हैं जो कहते हैं कि पहले ज्ञान अर्जित कर लूँ, फिर दीक्षा लूँगा। नहीं आगम पर ध्यान दो – **अव्रती व्रत आदाय व्रती ज्ञान परायणः।** आत्म पांडित्य से सभी पांडित्य छोटे हैं, आत्मज्ञान भिन्न है, शब्द ज्ञान भिन्न है, ज्ञानी वही जो 'अहमिक्कोऽहम्' ज्ञानी तुरन्त जिनभेष को अपनाता है।

जिसका व्यवहार ही विपरीत है, आगम अनुसार नहीं। उसका परमार्थ सम्यक् कैसे हो सकता है, गलत कौन है ? इसका निर्णय समाधि का काल कहलायेगा। जो साम्यभाव रखते हैं, उसकी समाधि तो आज से शुरू।

'नास्ति-नास्ति' क्या कलश लिखा आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने 'नहीं है-नहीं है' मोह मेरा किंचित् भी नहीं है, जो पर से निर्भर होते हैं, वे स्वरस का पान नहीं कर पाते। इसलिए किसी से चिपक कर मत रहना वरना स्वरस में लीन नहीं होंगे। मन की, ज्ञान की कहने वाले करोड़ों मिल जायेंगे, जिनकी बात कहने वाले 1, 2 ही मिलेंगे।

(77)

कांटा चुभा, गुस्सा कांटे पर क्यों कर रहा। तुम देखकर नहीं चले तो दोष तुम्हारा है। हे ज्ञानी! पूर्व में बंध किया तो काँटा चुभा, अब पुनः क्रोध कर बंध किया तो तुम कितने और कांटे बुला लोगे। सम्यग्दृष्टि जीव, जीर्ण कर्मों की निर्जरा करता है, अभिनव (नये) कर्मों को निमत्रण नहीं देता, उसका नाम ज्ञानी है, हम अज्ञानी जरा सी विषमता में या अनुकूलता में आपा खो देते हैं, अपने को नहीं सम्हाला तब ही तो पंचमकाल में आये हैं, आज नहीं सम्हाला तो कल छठे काल में जाना होगा। भावकर्म तेरे चलायमान हो जाते हैं तो द्रव्यकर्म अपने आप आ जाते हैं।

(78)

इस जगत में कोई सबसे बड़ा शत्रु है तो तुम ही हो। चट्टान सिर पर उठाकर कहीं पटक आना सरल है, परन्तु मन के परिणाम एक समय के लिए अच्छे रखना कठिन है। थोड़ा इधर-उधर दौड़ेगा तो एक्सीडेंट हो जायेगा, सीधा देखे तो मार्ग प्राप्त कर लेगा। ज्ञानी ! बस इधर-उधर देखना नहीं है।

हे ज्ञानी ! सत्यता यह है कि तुमने मोह को कभी अनिष्ट माना ही नहीं। रागरूप मोह को तो अपना ही माना। मित्ररूप मोह को उपादेय माना। ज्ञानी वही है जो पुण्य-पाप दोनों को अपना नहीं मानता।

(79)

आत्मा 148 कर्मों के बीच में फँसी है, स्वतंत्रता में भी परतंत्रता है, परतंत्रता में भी स्वतंत्रता है, मैं स्वतंत्र हूँ परद्रव्यों में क्यों लिप्त हो रहा है स्वभाव पर दृष्टि डाल। तूने ब्रह्म स्वभाव भोगों की नाली में कैसे फैंका। आत्मा की दो पर्याय हैं - 1.सिद्धपर्याय रूप और 2. अशुद्धपर्याय रूप। जो जीव दर्शन-ज्ञान-चरित्र में स्थित है, वह स्वसमय है, जो पुद्गल कर्म प्रदेशों में स्थित है, वह परसमय है। दोनों पर्याय में जीव वही है, यद्यपि दोनों पर्याय जीव की ही हैं परंतु परसमय में स्थित आत्मा आकुलता की जननी है। अतः त्याज्य है, दूसरी निराकुलता देने वाली है, अतः उपादेय है इसकी प्राप्ति का उपाय रत्नत्रय पुरुषार्थ है।

जीव का अनादि से कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल द्रव्य का संबंध आ रहा है, इसी से वह संसारी जीव कहलाता है, मिथ्यात्व के कारण जीव शरीर नोकर्म को ही आत्मा का स्वरूप मानता रहा है। रागादि भाव अजीव है अर्थात् जीव की निज परिणति नहीं है, कर्म की उदयावस्था में यह भाव होते हैं, उसका अभाव हो जाने पर ये स्वयं विलीन हो जाते हैं जैसे अग्नि के संसर्ग से जल में उष्णता आती है, रागादिक का उपादान आत्मा ही है, कर्म उदय निमित्त है, वह अपने को पर का करता मानने से पर में हर्ष-विषाद, राग-द्वेष करता है।

80

जो ज्ञान पर में जा रहा है, उसे रोक लीजिए। ये ही तो त्याग है, सारी दुनियां कहती है, मैं कर्मों से छूट जाऊँ, मैं कर्मों से छूट जाऊँ, यह सब अज्ञानियों की भाषा है, जिस दिन संसार विषयों से यश कीर्ति से ग्लानि हो जायेगी, निजात्मा का ज्ञान हो जायेगा।

आत्मा स्वसंवेदी है, बिना पुरुषार्थ के, उपादान के, निमित्त के, काललब्धि के कार्यसिद्धि होती नहीं। इन सबकी आवश्यकता है।

द्रव्य आगम ज्ञान नहीं है, द्रव्य आगम भी ज्ञेय ही है, समयसार भी ज्ञेय ही है, ज्ञान नहीं है, ज्ञान तो आत्मभूत ही होता है, इसलिए निज ज्ञान में निज का रमण करा देना परमार्थ यही है।

81

जब योगी को शुभोपयोग ही झुलसाता है, उस योगी को अशुभोपयोग कहाँ जीवित रहेगा। ज्ञानी ! भेष न ऊपर जाता है, भेष न नीचे जाता है, परिणाम ही ऊपर जाते हैं, परिणाम ही नीचे जाते हैं, इसी का नाम गुणस्थान है, अपनी निज की भावनाओं को देखो। समयसार समझना कठिन नहीं है, समयसार सम्हलना कठिन है। भावलिंग की अनुभूति ग्रंथों में नहीं होगी, वह निर्ग्रंथता में ही होगी।

व्रतियों ध्यान दो, जो भाव व्रती है, वही व्रती है।

(82)

यदि शरीर पाप करता है, शरीर छूटता, जब जाता तो पाप भी छूट जाते, जल जाते कोई समस्या ही नहीं थी। इस तरह संसार एक दिन समाप्त हो जाता। फिर मोक्ष की क्या आवश्यकता थी ?

नहीं भाई ! पाप आत्मा करता है आत्मा कभी मरती नहीं, शरीर बदलती है, उसका पाप-पुण्य उसके साथ-साथ चलता है।

पूरा जैनदर्शन आत्मा पर टिका है और आपने आत्मा को हटा दिया, ज्ञानी तो कुछ नहीं बचेगा। समय यानि आत्मा यानि आगम समय यानि जैनधर्म। आत्मा को कर्ता, इन्द्रियों को करण कहा है, आत्मा ने ही यह पाप किया है।

(83)

यह भ्रम हो जाए कि मैं तो शरीर से भिन्न हूँ, इसलिए कुछ नहीं कर रहा हूँ जो कर रहा है, शरीर कर रहा है।

बंध दृष्टि मोह, आत्मा से रहित होती ही नहीं है, यदि रहित होगा तो मोह होगा कहाँ पर (मोह आत्मा से ही होता है)।

जब जीव की स्वतंत्र धारा में देखेंगे तो आत्मा की परिणति ही कर्ता है, आत्मा का परिणाम ही कर्ता है, आत्मा की परिणति ही 'क्रिया' है, वही कर्ताकर्म करण है, जो कर्म वह सापेक्ष है, आत्मा की परिणति शुद्ध अवस्था में भी चलती है, अशुद्ध अवस्था में भी चलती है।

(84)

इस लोक में सर्वाधिक संख्या मिथ्यादृष्टियों की है, एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव नियम से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय में भी थोड़े ही सम्यग्दृष्टि होते हैं, बहुमत मिथ्यादृष्टियों का है।

अज्ञानी को अपना ज्ञान मत बखारना, उसे दु:ख हुआ तो तुम हिंसक हो जाओगे। लोगों के बीच सरल बनकर रहना। मरण के बाद भी कोई जीव लोक के बाहर जायेगा क्या, फिर क्यूँ दु:खी होता है ?

जो जीव अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, वह स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, उसका मोह विलय को प्राप्त होता है।

(85)

आकाश में छह द्रव्य अवश्य हैं, पर प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, परिणमनशीलता की अपेक्षा द्रव्य विनाशी है, पर भावरूप नहीं होता, इसलिए अविनाशी है जो कुछ भी उत्पन्न होता है, उसका विनाश नियम से होता है, यह परिणमन की अपेक्षा से समझना, द्रव्यत्व का विनाश नहीं होता। जो पुरुष है, वह चैतन्यभूत है, यह स्वयं को नहीं जान रहा। आत्मा आनंद स्वभावी है, सारे लोक में जो कुछ आत्मा कर रहा है, वह आनंद के लिए ही तो है विषयानंद, रागानंद, परमानंद ये सब आनंद है।

(86)

ज्ञान से ज्ञान का निर्णय कीजिए। पानी से ही पानी की सफाई होती है। बंध दशा का दोष नहीं है, दोष तेरे बंध भाव का है, कर्मबंध तो बंद हो जायेंगे, भावबंद हो गए तो। द्रव्यकर्म तेरा विषय नहीं है, भावकर्म तेरा विषय है, द्रव्यकर्म दिखते नहीं, कोई बात नहीं, भाव तो समझ आते हे भाई! कैसे परिणाम चल रहे हैं?

पुरुषार्थ तेरा भाव कर्म पर होना चाहिए। साधना परिणामों को सम्हालने में ही तो है शरीर से भी साधना करेगा तो भी परिणामों को सम्हालना पड़ेगा। देहाश्रित संयम धारण भी कर लिया, परिणाम संयमित नहीं, स्वर्ग जा सकता है मोक्ष नहीं।

(87)

द्रव्य संयम के पुण्य का प्रभाव इतना है कि एक अभव्य मिथ्यादृष्टि स्वर्गों से ऊपर ग्रैवेयक तक की यात्रा कर सकता है, लेकिन संसारातीत नहीं होने देगा। जैसे द्रव्यलिंगी, भावलिंगी साधु होते हैं, वैसे ही द्रव्यलिंगी, भावलिंगी श्रावक भी होते हैं। मन की अशुद्धि में शुद्धात्मा की अनुभूति संभव नहीं है। आर्त-रौद्र ध्यान जहाँ रहेगा, वहाँ शान्तिचित्तता ही नहीं है, परमतत्त्व को समझने के लिए अंतरंग-बहिरंग परिग्रह से हटना आवश्यक है, तनाव युक्त जीवन में मन की निर्मलता नहीं हो सकती। आत्मानंद तभी संभव है, जब विकल्पों से शून्य होगा।

(88)

भाग्यहीन से निर्दोष संयम भी नहीं पलता, संयम भी पुण्य में पलता है, चारित्रवश मत करो, पहले चित्त वश करो। साधक को दृष्टि चित्रों में नहीं, नीची रखनी चाहिए तथा विषम लिंगियों से दूर रहना चाहिए। समझते चलो, सम्हलते चलो। रत्नत्रय के तेज से आत्मा की प्रभावना करो।

जो परभाव में फूल वह मूर्ख है, सच्चा मुमुक्षु रागभाव छोड़ने में समय नहीं लगाता। बड़ी साधना करने से पहले सब जीवों पर साम्यभाव रखना सीख जाओ।

(89)

अज्ञानी तभी तक है, जब तक शुद्ध का ज्ञान नहीं है, ज्ञान होते ही अज्ञानता का नाश होता है, परवस्तु का भिन्नत्व का ज्ञान होते ही निज वस्तु की अनुभूति प्रारंभ हो जाती है। जैसे यह वस्तु मेरी नहीं है, इस शब्द के अंतस में आते ही निज वस्तु झलकना प्रारंभ हो जाता है। ज्ञानी, उधर मिथ्यात्व विगलित होना शुरू हुआ ही, यहाँ सम्यक्त्व का वेदन प्रारंभ हो गया। उधर वस्त्र उतर रहे हैं, वासनायें छिल रही हैं, स्वानुभूति हो रही है, शादी पक्की होते ही, पत्नी के विकल्प शुरू हो गये, उस आस्रव की धारा में बंध भी प्रारंभ हो चुका।

90

जिनशासन की अंतिम साधना – समाधि। प्राप्ति का कोई उपाय है उसका नाम ध्यान। गीत–संगीत–भक्ति से आत्मा का कल्याण नहीं होगा। समयसार संगीत से आत्मा का कल्याण होगा। जिन सांसों को तूने भोगों के, भागने के डिब्बों में नष्ट किया है, उनको स्व अनुभूति में लगा देता तो तू आज स्वयं समयसार होता। कुछ को समय नहीं मिलता, तो कुछ समय को समझ नहीं पाये। शरीर का भोजन पराधीन है, आत्मा का भोजन स्वाधीन है। ज्ञानी बस एक काम करो अकषायभाव को प्राप्त करो।

जब परद्रव्य का त्याग होगा, तब स्वद्रव्य की अनुभूति होगी। त्यागने में एक आनन्द है, परभावों को तू अपना कब तक कहता रहेगा, उन्हें पर मान छोड़ना होगा। काम, क्रोध, मान कषाय लोभ परभाव है, अनादि से इन्हें अपना मानता रहा है, पर भावों को तुझे छोड़ना ही होगा। यह आत्मा का स्वभाव नहीं है, इनमें क्यूं झुलस रहा है।

एकान्त में जाकर अंतस में बैठो, अहम् को समाप्त करो, यह अहम् तुझे शुचिता से दूर कर रहा है।

91

जिसको कर्म सिद्धान्त पर विश्वास है, जिसको विपाक विचय धर्म ध्यान है, वही तो जैन है, जो विपाक विचय धर्मध्यान में लीन हो जाता, वो ही तो सम्यग्दृष्टि है।

(92)

यह आत्मा मोह के वशीभूत हुआ, परभाव का भावक अनंत काल से रहा। परन्तु ज्ञानी आत्मा निज भाव का ही भावक है, यह परमार्थ दृष्टि है, जहाँ ममत्व वहाँ बंध धारा है, जहाँ निर्ममत्व वहाँ निर्बंध धारा है, जीव सुनता है समझता है जानता है पर मानता नहीं है, आज तक जो भी दुःख हुआ है, यह निमित्त से हुआ है, कर्मों ने तुझे आज तक उपेक्षित ही कराया है, फिर भी तू कर्म के ही सम्मान में लगा है (द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म)।

(93)

तत्त्व निर्णय नहीं कर सकेगा जो स्वानुभूति पर लक्ष्य क्या रखेगा ? ध्याता का, वैरागी का चेहरा हर समय प्रशस्त रहेगा, चमकता रहेगा। जब विषयों की अनुभूति लेने वाला मुस्कुराता है। तो आत्मा की अनुभूति लेने वाले का चेहरा नहीं चमकेगा ? सम्यग्दृष्टि जिनके चेहरे पर अंदर के चारित्र की निर्दोषता, सम्यक्त्व की अनुभूति, ज्ञान का आनंद झलकता है धिक्कार है, मोह की अग्नि को जो निर्धन को, धनी को दोनों को जलाती है।

जिनशासन में कोई किसी को दुःखी, सुखी नहीं करता। तुम्हारा सोच पवित्र हो तो सुखी हो। तुम्हारा सोच अपवित्र हो तो दुःखी हो।

(94)

मनीषियो! जब वेदों (स्त्री, पुरुष) को गौण करके अस्ति पुरुष चिदात्मा देखे, वह ब्रह्मचारी है, अन्यथा भ्रमचारी है। देह का धर्म तो बहुत हो चुका, अब आत्मधर्म पर लक्ष्य करो।

आचार्य जयसेनस्वामी लिखते हैं मोहादि का परित्याग नहीं करेगा तो शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं होगी, नहीं होगी। मोह की सामग्री छूटेगी, तब मोह का छूटना होगा।

मन-वचन-काय के नियोग से जो आत्मा के प्रदेशों का परिस्पंदन है, वह योग है और योग कौन कर रहा है? आत्मा! तो शरीर से जो पाप-पुण्य होगा, वह आत्मकृत होगा-शरीरमात्र निमित्त है।

अभी व्यवहारधर्म नहीं आ रहा तो निश्चय धर्म कैसे आयेगा। शुद्धि तभी होगी जब द्रव्य संयम होगा। निर्ग्रंथों के ग्रंथ को पढ़ना, पर ग्रंथों की ग्रंथि बांध कर मत बैठ जाना। धर्मादि सम्यक्त्व के साधन हैं, इन्हें राग के साधन मत बनाना।

"विपरीत वृत्तौ माध्यस्थभावं"

बची पर्याय में ऐसा करके जाओ, जिससे परमात्मा बनने के संस्कार पड़ जायें।

'होता स्वयं जगत परिणाम' - इतना करो और पकड़ो पिच्छी।

(95)

आनंद जैनधर्म का धर्म नहीं, आत्मा का धर्म है 'सच्चि-दानंद स्वरूपोऽहं' आज अच्छा नहीं लग रहा क्यों ? घर तो वही है क्योंकि आत्मा में असाता का उदय चल रहा है, आनंद गुण परद्रव्य का नहीं है। इंद्रिय सुख में इतना आनंद है कि कष्ट का एक दिन भी तू देखना नहीं चाहता। इंद्रिय सुखों में तूने अनादि समय व्यतीत किया है। वर्तमान में इसमें सुखाभास अवश्य है लेकिन यह ही सुख-दुःख का कारण है, इसकारण छोड़ने योग्य है। इंद्रिय सुख पराधीन हैं और आकुलता के साथ हैं। हे मुमुक्षु ! अतीन्द्रिय आनंद कितना महान है, एक बार तो उस तरफ निहार तो लो। वह पराधीन नहीं स्वाधीन है, बंध का कारण नहीं निर्बन्ध का कारण है, विषम नहीं सरल है।

(96)

आज दशा की विडम्बना तो देखो, जो किंचित् भी आत्मा का धर्म नहीं है, उस पर कैसे जीव झुलस रहा है। विषय-कषाय पुण्य-पाप क्रिया क्या आत्मा का धर्म है। पूरा जीवन इसमें बिता दिया। जितने बंध को प्राप्त हुए हैं, वह भेद-विज्ञान के अभाव में हुए हैं, जितने निर्वाण को प्राप्त हुए हैं भेद-विज्ञान के सद्भाव में हुए हैं। त्याग और ग्रहण आत्मा का धर्म नहीं है तो इसी भ्रम में पड़ा है। इस अहंबुद्धि ने तुझे आर्जव-मार्दव से रहित कर रखा है। मैं त्यागी, मैं त्यागी कहते फिर रहा है, इस अहंबुद्धि का त्याग कर।

(97)

धिक्कार है ! कर्म से रहित होने की बात कर रहा है और नोकर्म पर राग कर रहा है शुद्ध मायाचारी! दुनिया की प्रशंसा से अपने आपको प्रशंसनीय मानना ही महान भूल है। बाहर के धर्म आत्मा से, धर्मात्मा की पहचान नहीं होती। मार्ग में मल को देखकर ग्लानि होती है, ऐसे ही है अब्रह्म भाव को मलरूप देखकर ग्लानि जिस दिन हो जाएगी, उस दिन ब्रह्म भाव का आनंद प्रारंभ हो जाएगा। कुशील भाव के जाते ही शील भाव का आनंद आएगा कि नहीं आएगा।

(98)

संवेदन नहीं है, विश्वास रखना, प्रवृत्ति नहीं है आत्म स्व-संवेदी है। परवस्तु का भी संबंध होगा, संवेदन होगा, स्व-संवेदन होगा। उपादान की योग्यता से कार्य होता है - निमित्त मिलने पर, काललब्धि पर पुरुषार्थ के द्वारा। सभी समवायों की आवश्यकता है, जिनवाणी विराजमान है, वह ज्ञान नहीं है, ज्ञान तो आत्मभूत ही होता है निज ज्ञान में निज ज्ञान का रमण कर देना यही प्रत्याख्यान है, निश्चय परमार्थ।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यं। कार्य तीन हैं, समय एक है, युगपत ही होता है, इसी तरह योगी के स्वात्मलीनता, कर्म क्षीणता एक साथ है।

(99)

मुनि कभी निगोद नहीं जाता, परंतु चित्र मुनि जा सकता है, जो मुनि द्रव्यलिंग को धारण कर निर्दोष मूलगुणों का पालन नहीं करता, वह द्रव्यभेष है, द्रव्यलिंग भी नहीं है। अपनी श्रद्धा को निर्मल रखना, परिणामों को संभाल कर रखना, संयम जितना हो करना, समाधिमरण तक तुझे जाना है, जिनलिंग का जो द्रव्य संयम है उसे उस पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। अहिंसा परम ब्रह्म है, उसकी रक्षा करना मुनि का धर्म है। आर्त रौद्रध्यान जहां रहेंगे, वहाँ शांत चित्तता ही नहीं। यही कारण है कि परमतत्त्व को समझने के लिए अंतरंग व बहिरंग परिग्रह से दूर होना पड़ता है।

(100)

जहाँ अरि, मित्र में साम्य प्रवृत्ति है, यह दिगंबर मुनि की दशा है, जो भावव्रती है वही व्रती है द्रव्यवती की सुगति नहीं होगी, देवगति बेशक हो जाए। सिद्धगति का नाम सुगति है भाग्यहीन से निर्दोष संयम नहीं पालता। निर्दोष संयम भी तभी पता है, जब पुण्य होता है साथ में।

चित्त गया तो चरित्र गया, चित्त को वश में करो। दृष्टि नीचे रखो, विषय लिंगियों से दूर रहो। प्रभावना को एक किनारे रख देना। परंतु आत्मा की प्रभावना मत खो देना। समझते चलो, संभलते चलो।

(101)

निमित्त किसी का उपादानरूप से कर्त्ता नहीं हो सकता। उपादान निर्मल तुझे ही करना पड़ेगा। तत्त्व का निर्णय निर्मल होगा जिसका, वह आंसू नहीं गिरा सकता। ज्ञान-श्रद्धा चर्या में आ जाए तो समयसार है। आत्मा का कोई परम- स्वभाव है वह है - ज्ञानस्वभाव। चरित्र धर्म बाद में प्रकट होगा। ज्ञान कह रहा है कि दर्शन प्राप्त करोगे तो मैं ही विशुद्ध दिलाऊँगा, संसार में भटकोगे तो मैं ही अशुद्धि दिलाऊँगा। अणुव्रती बन रहा है ज्ञान से। अणुबम बन रहा है ज्ञान से। मुमुक्षु अंदर देखने लग जाए, तो कल्याण हो जाये।

(102)

ज्ञान परिग्रह करके आनंद ले रहा है, जब ज्ञान ज्ञान में आकर निजात्म का आनंद लेगा तो कितना होगा। ज्ञान ही आत्मा को आनंद प्रगट कराता है। एक आत्मा अनंत गुणों से प्रकाशमान, ज्ञान से ज्योतिर्मय, निज आत्म-वन में ही रमण करता है। आकुलता कहाँ ? जहाँ ज्ञान नहीं।

तेरी वस्तु खो गई, तुझे पता नहीं कहाँ है ? तू ढूंढ़ रहा है, कितना परेशान है किसी ने ज्ञान कराया वहाँ है तू निराकुल हो गया। ज्ञान सुख देता है सर्वाधिक दुःख कही है तो अज्ञान में है।

(103)

बंध दशा का दोष नहीं है, दोष तेरे बंधभावों का है, कर्म बंध तो बँधना बंद हो जाएंगे, यदि भावबंध हो जाए तो।

निज भाव तो तेरे भावों में आ रहे हैं कि नहीं! नयनो से द्रव्यकर्म दिखाई नहीं देते, परंतु परिणामों से भावकर्म समझ में आते हैं कि नहीं। भावकर्म की दशा तेरी जैसी होगी, द्रव्य कर्म व नोकर्म का परिणमन वैसा ही होगा। इसलिए सारा पुरुषार्थ जो है भावकर्म पर होना चाहिए। जब भी द्रव्यकर्म आत्मा से पृथक् होंगे, तो भावकर्म के पुरुषार्थ से ही होंगे। शरीर में भी साधना करेगा, तब भी परिणामों को ही संभालना होगा।

(104)

रत्नत्रय के प्रभाव से पहले आत्मा की प्रभावना करो। निज को प्रभावित किए बिना, पर को प्रभावित करेगा, तो ध्यान रखना फूलता अवश्य है पर फलता नहीं है। आश्चर्य है, जो तेरा है ही नहीं, उसे छोड़ने की बात कर रहे हो। समयसार कह रहा है कि न छोड़ो, न जोड़ो, बस अपने ज्ञान को अपने में ही मोड़ लो यही त्याग है।

ज्ञानी! घर छोड़ना कठिन नहीं है, घर से छूटना कठिन है। यदि साम्यभाव की दृष्टि नहीं है तो शरीर सूख जाएगा, आत्मा निकल जाएगी लेकिन सुगति नहीं पाएगा। पूरी पर्याय किस को दे डाली? बच्चों को मनाते-मनाते खोखला हो गया, परंतु निज के लाल को नहीं मना पाया।

परभाव में मेरा किंचित् भी स्थान नहीं है, मोह मेरा धर्म नहीं है तो मोह के साधन मेरे कैसे हो सकते हैं, जो परद्रव्य मुझे अपने दिखाई दे रहे हैं, यह मोह कर्म की देन है, आप जो कुछ भी कर रहे हो, कर्म की ही पुष्टि कर रहे हो। धिक्कार है – द्रव्यकर्म–भावकर्म इन दो कर्मों के पोषण में स्वभाव धर्म को भुला दिया। सोच रहा था सुखी हो रहा हूँ सुखी हो रहा हूँ। हे ज्ञानी ! कषाय में कभी सुख आता है क्या ? संसार की दुनियादारी में तेरे आयु कर्म के निषेक तथा वीर्यान्तराय कर्म दोनों नष्ट नहीं हुए और ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम विपरीत नहीं हुआ।

तूने अपना अमूल्य द्रव्य किस तरह नष्ट किया – देख निजानंद की लीनता ही पर्यायातीत की वंदना है, विषयों की मान्यता, कषाय की मान्यता को स्वरूप में लगा दो, बस ये ही तो धर्म है, जो विषयानुभूति है, उसे स्वानुभूति में लगा दो – अनुभूति वही है।

अनुभूति तो त्रैकालिक है, विषय बदलता है, अनुभूति का कभी विनाश नहीं होता। मात्र चेतना आत्मा का धर्म है, भाव कर्म भी आत्मा का धर्म नहीं जो मात्र ज्ञान सामान्य रूप से है, वह आत्मा का धर्म है कैवल्य, मतिज्ञान, अवधिज्ञान, श्रुतज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है, आत्मा का धर्म मात्र जानना देखना है।

(106)

आचार्य कुन्दकुन्द अष्टपाहुड़ में कह रहे हैं कि वस्त्रधारियो ! वस्त्र के साथ सिद्धि का संयोग होता ही नहीं है तीर्थंकर भी क्यों न हो शेष सभी उन्मार्ग हैं, उन्मार्गों से सत्यार्थता की प्राप्ति संभव नहीं है, राजमार्ग पर ही चलना पड़ेगा। राज्य तेरा सिद्धालय है। सिद्धालय की तरफ जाने वाले सब सिद्धयात्री हैं धन्य हैं। उनके तो निर्मल भावों की व्याख्या ही नहीं। दुनिया धर्म खोजती है देखो उनको, वहाँ धर्म ही धर्म है।

(107)

मोक्ष केवल तन की शक्ति से नहीं चेतन की उत्साहशक्ति से प्राप्त होता है। मुमुक्षु ! पाप करने से पहले रो लेते तो बाद में रोना नहीं पड़ता। तुझे अपने दोषों और गुणों दोनों का ज्ञान होना अनिवार्य है। बिना जाने दोषों को छोड़ेगा कैसे और गुणों को बड़ायेगा कैसे ? गुण उपादेय है तथा दोष हेय है।

जहर हाथ में रखने से, उसे देखने से मृत्यु नहीं होती। ऐसे ही वस्तु को जानने से, देखने से बंध नहीं होता उसमें जो राग करता है, द्वेष करता है तब बंध होता है, साम्यभाव का होना ही समाधि है।

108

ज्ञान परिग्रह करके आनंद ले रहा है, जब ज्ञान ज्ञान में आकर निजात्म का आनंद लेगा तो कितना होगा। ज्ञान ही आत्मा को आनंद प्रगट कर आता है, एक आत्मा अनंत गुणों से प्रकाशमान, ज्ञान से ज्योतिर्मय, नीच आत्म-वन में ही रमण करता है। आकुलता कहाँ? जहाँ ज्ञान नहीं है

तेरी वस्तु खो गई, तुझे पता नहीं कहाँ है, तू ढूंढ़ रहा है, कितना परेशान है कि किसी ने ज्ञान कराया, तू निराकुल हो गया। ज्ञान सुख देता है, सर्वाधिक दुख कहीं है तो अज्ञान में है।

109

दो ज्ञान ऐसे हैं जिस पर आवरण नहीं पड़ता। निगोदिया का ज्ञान, सर्वज्ञ का ज्ञान वो नित्य उदित है। निज ज्ञान का अनुभव, ज्ञान का संवेदन नित्य उद्घाटित है, आवरण तेरे नित्य स्वरूप को नष्ट नहीं कर रहा है।

आज कहो, हे कर्म! तुम 148 भेद रूप हो, प्रभेद से असंख्यात लोक प्रमाण हो, मेरी आत्मा के केवलज्ञान स्वरूप को ढंक सकते हो, नष्ट किंचित् भी नहीं कर सकते। अनादि संसार से बंधे बद्धकर्म को विध्वंस करने में कोई कार्यकारी है तो वह है विशुद्ध ज्ञान।

(110)

चरणानुयोग का अर्थ है इंद्रिय संयम, प्राणी संयम। वस्तु छोड़ने के साथ-साथ वस्तु के राग से छूटना अनिवार्य है। आपने वस्तु छोड़ दी, उसका राग नहीं छूटा, कर्म नहीं छूट पाएंगे। यह समयसार की व्याख्या है। जब तक गृह-त्याग नहीं है, तबतक परित्याग संज्ञा नहीं है। निजानंद का आनंद एकमात्र निर्ग्रन्थ दशा में है, प्रपंचातीत होने के लिए यह दिगंबर दशा है निर्ग्रन्थ दशा देह आश्रित नहीं, आत्माश्रित है, मुक्ति वधु से मिलन जब भी होगा, जिन मुद्रा से ही होगा।

(111)

हे वस्त्रधारियो ! वस्त्र के साथ सिद्धि का सहयोग होता ही नहीं। जिनेन्द्र के शासन में तीर्थंकर ही क्यों न हो, मोक्ष नग्नता में है। शेष उन्मार्ग है उपशम भाव ही संयम भाव है उपशम भाव का जहाँ अभाव है, वहाँ संयमाभास है सम्यग्दृष्टि से कथन करेंगे तो चतुर्थ गुणस्थान में ज्ञानी हैं। जिनराज के मेले में आए मुनिराज, यदि निजानंद के मेले की अनुभूति नहीं ले पाए तो उस मेले में जाने से क्या लाभ ? आत्मा ने पेन का ज्ञान से जाना। कर्ता कौन ? आत्मा, कर्म कौन पेन, कारण कौन ज्ञान। इसी तरह आत्मा ने आत्मा को आत्मा से जाना। आत्मा ही करता आत्मा ही कर्म, आत्मा ही करण है।

(112)

अपनी आंख से अपनी नाक न दिखे, वह अंतिम दिन है आपका। शुद्ध को सुनने मात्र से असंख्य गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है, जब तक पर-पुत्र और स्व-पुत्र में भेद दिखाई दे रहा है, तब तक भाषा के धर्मात्मा हो, भावों के धर्मात्मा नहीं हो, जब भी आत्मा भगवान बनेगी, आत्मा के आश्रय से ही बनेगी। लाखों का घाटा लग जाये, पुत्र-पत्नी बीमार हो जाये, तेरे चेहरे पर मुस्कुराहट कम न हो तो तू भेदविज्ञानी है।

(113)

मैं शुद्ध-बुद्ध हूँ यह कहना बहुत सरल है लेकिन परद्रव्य से भिन्न स्वयं को देखना बहुत कठिन है, सोने का एक बूंदा खो जाये कहाँ-कहाँ भटकते हैं।

जगत के देव से पूछना क्या तुम किसी का रोग-शोक, दुख-दर्द दूर कर सकते हो ? जितनी समझ पर को समझने में की, वही स्वयं को समझने में की होती तो किसी को समझने की जरूरत ही ना पड़ती। जो चैतन्य आत्मा है वह स्वयं ही ज्ञेय है, स्वयं ही ज्ञाता है, ज्ञानानंदस्वभावी है, आनंद ज्ञान में ही है, सारे लोक में जो कुछ कर रहे हैं आप विषयानंद, रागानंद आदि।

114

जिनवाणी किसी के प्रति भी अशुभ भाव लाने का निषेध करती है बहुत सा आस्रव बंध यह जीव व्यर्थ में कहता है आनंद तो आया है खाने में, आनंद उसे बताने में आया वह खाने में कब आया? विश्वास रखना, निमित्त बहुत मिल जायेंगे, परन्तु स्वयं का विवेक जब तक काम नहीं करता, कुछ नहीं होता है। प्राणी बाहर के गुरु को भी तभी सुनता है जब अंदर का गुरु निर्मल होता है। ज्ञानी ! जिनवाणी जहाँ भी सुनने को मिल जाये, सुनने के लिए बैठ जाना। न जाने किसके शब्द कार्यकारी बन जायें।

115

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं बहुत राम आए, बहुत राम गए यह आत्मा राम सदा राम। यह तत्त्व दृष्टि है कि परमात्मा परमात्मा है वे हुए हैं, पर यह आत्मा त्रैकालिक है, जब भी मैं परमात्मा बनूँगा तो परमात्मा का आश्रय छोड़ना पड़ेगा और आत्मा का आश्रय लेना पड़ेगा।

परम त्याग की महिमा तो वह है, जहाँ त्याग के विकल्प का भी त्याग है, जगत के सम्पूर्ण आनंद, जगत के सम्पूर्ण अवस्थाओं में लिए जा सकते हैं, पर निजानंद का आनंद एकमात्र निर्ग्रन्थ अवस्था में है, जानन हारे को जानने वाला जगत में एक है, वह जिनलिंग है।

(116)

समरस में लीन त्यागी, सारे जगत का त्यागी हो जाएगा। यदि अन्य भाव से दृष्टि हटे और स्वभाव में प्रवृत्ति न हो तो हटा किससे और गया किसमें ? दीपक का जलना, अंधकार का जाना। जब स्व का वेदन करेगा, तो पर का वेदन करेगा कैसे ? ध्रुव सत्य यह है कि जिससे तेरे राग की पुष्टि हो रही है, उस राग में ही राग है। बेटे से राग-उसका हिस्सा मांगते ही चला गया ?

(117)

काषायिक भाव से परिणत आत्मा - पापात्मा।

अकषाय भाव से युक्त आत्मा - पुण्यात्मा।

पुण्य-पाप से रहित आत्मा - परमात्मा।

परमार्थ से निज ज्ञान की लीनता ही प्रत्याख्यान है, जैसी प्रीति देह से वैसी प्रतीति परम से है, यह सत्यार्थ प्रत्याख्यान है, निज आत्मा के स्वभाव से प्रीति होना ही सत्यार्थ प्रत्याख्यान है। रागादि भाव का अभाव करना प्रत्याख्यान है मोह से निज को हटा लेना, यही ध्यान का फल है पर-भावों से ध्यान हट जाए, यही तो ध्यान है निज भावों में ध्यान लग जाए, यही तो ध्यान हैं ध्यान व्रत संयम से ऊपर है ।

श्रावकाचार ने नींव खोद दी, मूलाचार ने नींव भर दी, समयसार कलशारोहण करेगा।

(118)

यह आत्मा ज्ञान गुण से 'पर' का संवेदन करती है, यह आत्मा निजी ज्ञानगुण से 'स्व' का भी संवेदन करती है, जो जो जाना जाता है, वह आत्मा से जाना जाता है, जो जानती है, वह आत्मा ही जानती है, इंद्रियाँ बहिरंग कारण हैं, जैसे रसना से भोगा तो जाता है, परंतु रसना भोगती नहीं। हे अज्ञानी ये पुद्गल का परिणमन नहीं है, तेरा कर्तृत्व भाव है, रसना खाती है या रसना से खाया जाता है, खाने वाला कौन है? आत्मा की विभाव दशा है, वही खाती है, अलबत्ता शुद्धात्मा नहीं खाती है, अशुद्ध आत्मा खाती है।

(119)

आत्मा जब विभाव की मंद दशा में होती है, तब आत्मा स्वभाव पर लक्ष्य करती है और स्वभाव पर लक्ष्य करके, स्वभाव को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करती है और स्वभाव को प्राप्त होती है, पुरुषार्थ करते हुए उत्साह शक्ति को मत छोड़ना। 80 साल का बूढ़ा उत्साह शक्ति के साथ बूढ़ा नहीं है। तीनों लोक वायु पर टिके हैं, घनवातवलय, घनोदधि वातवलय।

आपको अपने गुणों का, दोषों का यदि ज्ञान नहीं होगा तो गुणों को कैसे बढ़ाओगे दोषों को कैसे छोड़ोगे। जानने में कोई पाप का बंध नहीं होता, बंध भोगने में होता है।

(120)

परवस्तु का त्याग करना व्यवहार प्रत्याख्यान है, निज स्वभाव का वेदन करना, अनुभूति लेना निश्चिय प्रत्याख्यान है, साम्यभाव का होना ही समाधि है, जिस जीव को जहाँ राग होता है, उस वस्तु को त्यागने की बात ही नहीं करता, शुद्ध समयसार को कह नहीं पाता।

बहुत बड़ी साधना कर पाओ या न कर पाओ, लेकिन जिसे छोड़ दिया उसको मत देखना। जितने भी विकारी रागादि भाव हैं, यह मेरी आत्मा का ध्रुव ज्ञायक भाव नहीं है – ऐसा जानकर परभावों को छोड़ दो।

(121)

अज्ञानी तभी तक है, जब तक स्वद्रव्य का ज्ञान नहीं है। इधर मिथ्यात्व विचलित होना शुरू हुआ ही नहीं कि इधर सम्यक्त्व का वेदन होना प्रारंभ हो गया कि मेरा द्रव्य तो ऐसा है एक जीव निर्ग्रंथ दशा को प्राप्त होने वाला है, उसे अपनी निर्ग्रन्थ दशा का ज्ञान होना प्रारंभ हो चुका है। शादी की चर्चा होते ही, शादी का ज्ञान अनुभव करता है, जितने प्रकार के विकल्प प्रारंभ हुए थे, उतने प्रकार का आस्त्रव, बंध भी प्रारंभ हो चुका था। जिन मुद्रा की प्राप्ति की चर्चा से जिन मुद्रा की अनुभूति का भाव नहीं हो रहा है तो मुनि बनने का पात्र ही नहीं है।

(122)

निजानंद में लीनता ही ध्यान है, किसी एक वस्तु की तरफ ध्यान लगाना ध्यान नहीं है, निर्वाण प्राप्ति का साधन कोई है उसका नाम ध्यान है। इस ध्यान पर किसी का लक्ष्य नहीं है – पूजन-विधान छोड़ नहीं पा रहे हैं, जब परद्रव्य को छोड़ेगा, तब स्वद्रव्य की अनुभूति होगी। पर को छोड़ते ही, विकार को छोड़ते ही निज का आनंद आएगा। तू व्रती है भोजन की थाली देखकर आनंद आता है या उसमें से चार चीजें त्याग कर आनंद आता है? एक बैरागी खाते-खाते भी त्याग करता रहता है, जिसमें राग है वह वस्तु अच्छी लगती है, जिसमें राग नहीं है, वह वस्तु अच्छी नहीं लगती है 'किं सुंदरम किं असुंदरम' वस्तु तो जैसी है, वैसी है।

(123)

हे अज्ञानी ! खाना खाना, खिलाना कमाना, खर्च करना, जन्म लेना, मर जाना, यह कौनसी बड़ी बात है। जन्म लेकर जो जन्म, जरा, मृत्यु के अभाव का पुरुषार्थ करे, उसका नाम ज्ञानी है। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, गृह, स्त्री, पुत्र, कलत्र परभाव हैं, इन्हें मैं कब से अपना मान रहा हूँ, यह मूढ़ मोह की दशा है – ऐसी भावना भाओ, वह दिन कब आये जब परभावों को छोड़कर यथाजात स्वरूप को प्राप्त करूँ। ज्ञान करने वालों का कल्याण नहीं होता, कल्याण जब भी होगा, भेद-विज्ञानी का ही होगा।

(124)

ये राग द्वेष की दो डोरियाँ हैं, जिससे संसार में भटक रहा है। हे! जीव तेरी स्वयं की पर्याय तेरे लिए कार्यभूत नहीं है तो पर के राग-द्वेष क्या तेरे कार्यभूत होंगे? बाहर के त्यागी, उपवासी कितनी संख्या में हैं। परंतु कषाय का उपशम करने वाले जीव गिनती के भी नहीं हैं, आज अंतरंग साधना पर ध्यान नहीं है। बाहरी साधना, बाहरी प्रभावनायें दो मुख्य हो गए हैं। कलिकाल में वाह-वाह के लूट में अंतरंग छूट गया। समय अल्प है, ज्ञानी पुरुष परसमय में समय न लगाकर स्वसमय में ही समय लगाते हैं।

(125)

लोक में छह द्रव्य मिले होने पर भी, अपने-अपने स्वभाव को छोड़ते नहीं हैं, जब द्रव्य का स्वभाव ऐसा है, तू द्रव्य के स्वभाव को बदल नहीं सकता, तो अपने स्वभाव को परभाव में क्यों बदल रहा है ? काषायिक भाव लाने के लिए पर को अंदर बिठाना पड़ता है, परंतु स्वाभाविक भाव लाने के लिए पर को भगाना ही पड़ता है।

सबसे बड़ा परिषह सहन करने की कोई साधना है सत्कार-पुरस्कार नाम का परिषह है। लोग मुझे नहीं पूछते, मेरा सम्मान क्यों नहीं करते? ऐसे मन में जो भाव नहीं लाते, उनको नमोस्तु। इस जीव का कोई कष्ट नहीं है, कष्ट है तो बस पूछ का है। धन-धरती को पूरी पर्याय दे डाली, अब निज के लिए कुछ करो।

(126)

आत्मा का लक्षण उपयोग (ज्ञान-दर्शन) है। स्व-पर स्वरूप का ज्ञायक (जानने वाला) कौन है, जो मोह से निर्ममत्व है 'आत्मा स्वभावं परभावभिन्नं' आत्मा परभाव का भावक अनंत काल से रहा, परंतु वास्तव में आत्मा निजभाव का ही भावक है, जहाँ निर्ममत्व धारा है वहाँ निर्बन्ध धारा है। संसार में बिना पर के प्रति अपेक्षा के दु:खी कोई हुआ नहीं। कर्मों ने तुझे उपेक्षित ही कराया है फिर भी तू कर्म के समभाव में लगा है, तत्त्व की स्वतंत्रता का निर्णय वही कर सकेगा, जो खाने-पीने कमाने से भिन्न होकर स्वानुभूति पर दृष्टि रखेगा।

(127)

धन्य है उस धन को, जो जड़ होकर भी चेतन के चेहरे पर मुस्कान देख रहा है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु जीव को सम्यक् की अनुभूति ज्ञान का आनंद चेहरे पर चमकता है, उसे मुस्कान देता है चेहरा मलिन तो समझना संयम का फल नहीं है व्यर्थ का दुख, व्यर्थ का क्लेश, मोह की विडंबना है यह जैनदर्शन है, जहाँ दुखी होने का स्थान ही नहीं है।

तुम्हारी सोच पवित्र है, सुख ही सुख है।
तुम्हारी सोच है अपवित्र है दुख ही दुख है।।

हमारी पर्याय पर दृष्टि इतनी दृढ़ हो चुकी है, पर्याय ही द्रव्य झलकता है, उत्तम पुरुष वो है जो मात्र स्वात्म की चिंता रखते हैं।

(128)

पंचपरमेष्ठी का आलंबन निज भटकाव रोकने के लिए है, वीतराग दशा में निज आत्मा का आलंबन लेना। सराग दशा में पंचपरमेष्ठी आलम्बभूत है, लेकिन दृष्टि आत्मा के ऊपर ही रखें, नहीं तो काम बिगड़ जाएगा।

विषय-कषाय का बंद हो जाना, आत्म आनंद का खुल जाना, यही तो समाधि है, इसलिए सहज हो जाओ, समय ज्यादा नहीं है। भीतर-बाहर जो सोता रहेगा, उसका कुमरण होगा। ये भूल जाओ कि मैं सौ साल जिऊँगा, प्रतिसमय समाधि की भावना भाओ। जो सुनो, स्वयं को सुनाने के लिए दुनिया को सुनाने के लिए नहीं है।

(129)

रोज-रोज सुनोगे, तब एक दिन अवश्य काम आएगा। पहली प्रतिमा को लेते ही समाधि शुरू हो जाती है, अविरत-सम्यकदृष्टि का मरण बालमरण है, देशव्रती का बालमरण नहीं, बाल-पंडित-मरण है महाव्रती का पंडित और केवली का पंडित/पंडित मरण है। ज्ञान समुद्र में भगवान आत्मा कैसा है मोह का, भ्रांति का, दोषों का चादर जिसमें उतार फेंक दिया है, साधु बाहर के कपड़े उतार देने से निर्ग्रन्थ नहीं होता, जब तक मोह की थैली न निकाले। 12 वर्ष मुनि बन निकल गया, कानी स्त्री का राग नहीं छूटा। तुम अज्ञान से संसार में आए और मोह की नींद में सो गए, आत्मद्रव्य को भूल गए गलती कहाँ है?

(130)

मोह की माँ को छोड़ कर, माँ जिनवाणी की गोद में आजा, यदि तुझे अपनी आत्मा का कल्याण करना है, ज्ञान स्वरूप आत्मा आनंदस्वभावी है। यदि आनंद आत्मा का स्वभाव न होता, तो पुरुषार्थ किसका ? विषयानंद, रागानंद, करुणानंद, ये सब आनंद ही तो है।

जो मुझे परज्ञेयों से भिन्न कर दे, वही ज्ञान ज्ञान है।

'हिताहितप्राप्तिपरहिरासमर्थ हि प्रमाणं ततोज्ञानमेव तत्' जो ज्ञान हित की प्राप्ति, अहित का परिहार निहित हो, वही ज्ञान ज्ञान है शेष अज्ञान।

(131)

वह मूढ़ ही होता है जो पर को संभालने में लगा है। पानी की सफाई पानी से ही होती है, ज्ञान की सफाई भी ज्ञान से ही होती है, ज्ञान पर जो मोह का शैवाल आता है, उसे भेद-विज्ञान की ज्ञान से साफ करो। बाहर का कोई साफ करने नहीं आएगा। कषाय के हटाने का काम कोई करेगा तो वह तेरा ज्ञान ही होगा। जो कल अच्छे लगते थे, वो आज बुरे लगने लगे। जो कल बुरे लगते थे, वो अच्छे लगने लगे। यह सब राग-मोह का ही खेल है। सत्य , राग-मोह दिखाई नहीं देता। 6 माह तक राम (क्षायिकसम्यग्दृष्टि) लक्ष्मण के मृत शरीर को लेकर घूमते रहे, उस नहलाते, सुलाते, भोजन कराते रहे।

(132)

केशलोंच दीक्षा लेना, पिच्छी लेना 20 मिनट का कार्य है, लेकिन परिणामों को जीवनपर्यंत संभालना होता है, तब कहीं मोक्षमहल का द्वार खुलता है, नरक जाने के लिए, स्वर्ग जाने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। मोक्ष जाने के लिए कुछ भी मतलब कुछ भी नहीं करना होता है।

समयसार को रुचि से सुनना, श्रावक के लिए प्रबल पुण्य का योग कहा है, जो जीव मोह संतान को बढ़ा रहा है, वह अप्रतिबुद्ध है यानी अज्ञानी है शास्त्रों का ज्ञानी भी अज्ञानी है, यदि राग-द्वेष की परिणति चल रही है।

(133)

जब तक तत्त्वज्ञान नहीं होता, तत्त्व निर्णय नहीं होगा, तत्त्व श्रद्धान नहीं होगा। उसके बिना सम्यक्चरित्ररूप परिणति नहीं बनेगी। अपने अशुभ या शुभ परिणामों को ज्ञेय बनाना सीखो। देखो, बार-बार वह कहाँ जा रहे हैं क्यों जा रहे हैं, रुको उन्हें, कहो उनसे भाई मेरा नुकसान क्यों कर रहे हो, हे धर्मात्मा तू निज के अशुभभावों से बचने के लिए धर्मात्मा बना है कि निज को अशुभ में ले जाने के लिए धर्मात्मा बना है? चिंतन करो! जीवन संकल्प और विकल्पों की आती हुई बाढ़ को न समझते हुए, बांध-बांध कर बैठ जाता है, इतना बड़ा अनर्थ कर लेता है।

(134)

जिन मुद्रा का मोह भी तुझे मोक्ष नहीं दिला पाएगा। मात्र नमोस्तु होती है, जिन शासन में दिगंबर मुनि को, यानी पंचपरमेष्ठी को वस्त्रधारी को नहीं, चाहे आर्यिका हो।

निर्मल परिणामों से समाधि हो जाए, तो समझना अंतरंग में कांटा नहीं था, यदि नहीं हुए तो समझना अंतरंग में काटा था। जीवन में किसी को सहयोग दे पाओ या न दे पाओ, लेकिन किसी के हृदय को व्यथित मत करना। समाधि कब होगी, जन्म-मरण होगा ? नहीं आज ही होगी जब साम्यभाव जीवन में आ गया। जो पर से दूर रहते हैं, वो ही स्वरस का पान करते हैं राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ-कर्म-नोकर्म-मन-वचन -काय-श्रोत-चक्षु-घ्राण-रसना - स्पर्शन ये 16 पर भाव हैं, इसे अपनी रक्षा करो।

(135)

साधु के दो ही कार्य हैं - तपः श्रुत - तपस्या करना और श्रुत की आराधना करना। तीसरा कार्य कोई नहीं है, साधु बनकर सेठों के हाथ मत जोड़ना। यथार्थ यह है 'जो गुरु चरण जहाँ धरे, जग में तीरथ हुए' हमारे तीर्थ बनाये नहीं गये, वे तो बन गए। जहाँ तीर्थंकर के कल्याण हुए, समवसरण आया, वही जगह तीर्थ हो गई। जन्म, जरा, मृत्यु, आत्मा का दोष है, 18 दोष शरीर में नहीं, आत्मा में है। अरहंत की आत्मा 18 दोषों से रहित होती है, आत्मा परभावों से घिरा होने पर भी परभावरूप नहीं होता।

(136)

विभाव भाव के आंगन में बैठा हुआ संसार की क्रीड़ा में मस्त हो रहा है संभालो संभलो, क्षण-क्षण में निषेक निकल रहे हैं सिद्धों के अनंतवें भाग, कर्मों का आस्रव-बंध एक समय में हो रहा है।

नट को हजारों देख रहे हैं, नट किसी को नहीं देख रहा। हजारों रागी वीतरागी को देख रहे हैं, वीतरागी किसी को नहीं देख रहा है। मोह जिससे कर रहे हो, उसे बचा नहीं सकते, मोहवान नहीं बचता, फिर मोह क्यों ? मोह आत्मा का धर्म नहीं है। मुर्दा खाता नहीं, सिद्ध आत्मा खाती नहीं फिर कौन खाता है? यह जीव की राग दशा, जो भोजन कर रही है।

(137)

इस पर्याय में जितना संचित किया, सबको भोग लेगा? पेट के लिए नहीं कमा रहा, मोह के लिए कमा रहा है, मोह का गड्ढा कभी भरता नहीं है, जब तू जगत के लिए रागरूप था, तब तू बंधभूत था, जब तू बंधभूत था, तब तेरी आत्मा कष्ट में थी। निज की दया निज में हो जाती, तो निर्बन्ध दशा को प्राप्त कर लेता। यह परम वीतराग दशा है, मत सोच गृहस्थी का क्या होगा। समयसार गृहस्थी छुड़ाने का ग्रंथ है, यह जगत के द्रव्यमोह कर्म के विषय हैं, जब मोह मेरा नहीं, तो मोह कर्म के विषय मेरे कैसे ? परद्रव्यों की पुष्टि कब तक करेगा।

138

जिस दिन आप काय को वश में कर लेंगे, कोटि कोटि जीवों की हिंसा बच जायेगी। उसके लिए गुप्ति-समितियाँ पालन करनी होती हैं। तपस्वियों, योगियों की स्तुति करने से चरित्रमोह कर्म की निर्जरा होती है।

पंचमकाल के योगियों की पूर्ण रूप से प्रशंसा करनी चाहिए। मन को जिसने जीत लिया, वह जितेन्द्रिय है, मन से तात्पर्य ज्ञान की धारा है, द्रव्य संयम नहीं तो भाव संयम भी नहीं है। द्रव्य खराब तो भाव कैसे अच्छे। तुम यदि संभलना ही नहीं चाहते तो ध्यान रखना, आदिनाथ अपने पोते मारिचि को नहीं समझा पाये।

139

ध्यान रखना जितने भी काषायिक भाव हैं, बुद्धि पूर्वक उन पर लगाम लगाता है। त्यागी को त्यागी कहना सीखो, तुम्हारे में त्याग भाव आएंगे। भगवान से, ग्रंथों से, निर्ग्रंथों से, राग नहीं श्रद्धान करना। लोक में सबसे कठिन कोई आराधना है तो अद्वैत भाव है, शुभोपयोग द्वैतभाव है शुद्धोपयोग अद्वैत भाव है में पंचपरमेष्ठी की आराधना वहाँ द्वैत भाव है, स्वरूप-लीनता वहाँ अद्वैत भाव है, जब तक शुद्धोपयोग में नहीं पहुँच रहे, तब तक आराधना करना, दृष्टि शुद्ध पर ही रखना।

140

जो आत्मा की पुण्य से रक्षा करें, उसका नाम पाप है, जो आत्मा की पाप से रक्षा करें, उसका नाम पुण्य है, आचार्य पूज्यपादजी 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रंथ। आप पुण्य से अपनी आत्मा की रक्षा कर रहे हैं, कैसा पागलपन है। आचार्य वसुनंदी ने लिखा है पंचम काल में घर-घर में द्रव्य मिथ्यात्व फैलेगा। हमारे यहाँ प्रतिमा बनाई नहीं जाती, निकाली जाती है, जैसे अंदर बैठे ने आत्मा से व्यर्थ का कर्मपिण्ड हट जाए तो निज आत्मा भगवान निकल आते हैं। कर्म निकाले गए, भेद-विज्ञान की छैनी से उत्कीर्ण हो गई, आत्मा फिर कभी मिटने वाली नहीं है।

141

निज ज्ञायक स्वभाव ही मेरा ध्रुव भाव है, परभाव में मेरा किंचित् भी स्थान नहीं है, मोह मेरा धर्म नहीं है, यह आठ कर्म में प्रधान कर्म है, पर के नोकर्म के राग में तू भावकर्म को विकृत कर रहा है और द्रव्यकर्म को आमंत्रित कर रहा है ये शरीर नोकर्म है अहो अज्ञ! तूने दूसरे के नोकर्म में ऐसा घोर राग किया। धन्य हे दर्पण! उसके सामने काले-गोरे, अंधे-गूंगे सब आए परंतु उसने अपनी स्वच्छता को नहीं छोड़ा। सम्यग्दृष्टि के सामने साता-असाता सब आए, परंतु उसने अपने स्वरूप को नहीं छोड़ा। जो है, सो है।

(142)

कर्म-कलंक मिटाना मेरा स्वयं का पुरुषार्थ है, लोक का कलंक मिटाना मेरे पुरुषार्थ के बाहर है (अंजन, भरत) समयसार अपने घर की व्यवस्था मत देखना। घर की व्यवस्था को समयसार परिपूर्ण भंग कर देगा। मैं मोह कर्म का भाव्यभावक नहीं हूँ और घर मोह कर्म के बिना होता नहीं। प्रत्येक संसारी जीव को जो संसार में व्यवस्थित किए हैं वह कर्म है अनुभूति करने वाला तू ही है। जब विषयानुभूति करेगा तब भी तू ही होगा और चरित्रानुभूति करेगा, तब भी तू ही होगा। अनुभूति आत्मा का धर्म है, जब मैं स्वयं संवेदी नहीं होऊँगा तो सुख-दुख का वेदन कौन करेगा? ठंडी गर्मी का वेदन पर्याय नहीं कर रही, आत्मा कर रही है देह साध्य में है।

जब आत्मा का कथन स्वचतुष्टय में करेंगे, तो हम यही कहेंगे कि आत्मा ही कर्ता, आत्मा ही भोक्ता है जो परिणाम कर रहा है वह आत्मा है जो परिणामी है वह आत्मा है कर्ता भी आत्मा, करण भी आत्मा, क्रिया भी आत्मा है। यह शरीर मेरा कर्ता नहीं, नोकर्म मेरे कर्ता नहीं हैं, यह द्रव्यकर्म मेरी आत्मा से भिन्न है। ज्ञानी! भावकर्म भी इस आत्मा का वास्तविक धर्म नहीं है, भावकर्म मेरी बंध दशा का धर्म है, यह सब जीव की विभाव दशा है, स्वभाव नहीं है। संवेदन धर्म है आत्मा का। यदि आत्मा को संवेदन से रहित कर दोगे, तो आत्मा ज्ञान शून्य हो जाएगी।

(143)

क्या आत्मा में कर्म सहजरूप आते हैं ? कर्म सहज नहीं आते, अगर ऐसा होता तो सिद्ध भगवान के भी कर्म आना शुरू हो जाएंगे। कर्म सहज नहीं आते। आत्मा के विभाव परिणाम से कर्म आते हैं, बिना द्रव्य कर्म के आत्मा में रागादिक भाव नहीं आते। एक ही काल में दोनों एक- दूसरे के निमित्त बनें, तब तीसरी पर्याय हुई है। उपयोग, द्रव्यकर्म के उदय से जुड़ा तो राग-द्वेष-मोह की पर्याय उत्पन्न हुई है, भूल मोह कर्म की नहीं है, भूल मोही की है।

(144)

हाथ-पैरों ने जवाब दे दिया, शरीर साथ नहीं दे रहा है, लेकिन मोह कम नहीं हुआ, जबकि मोह मेरा नहीं है, छोटी-छोटी साधना से सिर पर जलती सिगड़ी सहन नहीं होती, ध्यान रखना। भक्ति जहाँ होती है, वह खोज लेता है, उसे पत्रिकाओं की जरूरत नहीं होती है, आत्मस्वरूप की चर्चा करने वाले, पुद्गल में लिप्त हो गए। समय ही नहीं है तेरे पास जो 'समय' को समझ कर चल सकें। यह शब्द यह मत बोलना कि काललब्धि नहीं आई। काललब्धि तो आ गई परंतु तेरा पुरुषार्थ नहीं हो रहा है। संज्ञी हो पंचेन्द्रिय हो, जागृत हो कर्मभूमि से हो, जिनवाणी का निमित्त है।

145

स्वभाव में आने के लिए साम्यभाव और स्वभाव में साम्यभाव का भी अभाव 12वें गुणस्थान तक साम्यभाव है, 13वें में उसका भी अभाव है। दर्शनमोहनीय का अभाव चौथे गुणस्थान में, चरित्रमोहनीय का अभाव 12वें गुणस्थान में, ब्रह्म की पूर्णता 14वें गुणस्थान में है। आप अनादि से कर्म प्रकृति सत्ता को नहीं मानोगे, तो स्वभाव सत्ता का कथन नहीं होगा। उस कर्म बंध की सत्ता को सद्भाव मानकर उस कर्मरूप अपने को मान लेना ही तो तेरी भूल-अज्ञानता है, कर्म बंध है आत्मा में। मैंने कब मना किया लेकिन कर्म बंध आत्मा है, यह मत कह देना।

146

वह बड़े सौभाग्य से ज्ञानी हुआ, जो परद्रव्य को निज द्रव्य से भिन्न स्वीकारेंगे तेरा निज भगवान आत्मा तेरे अंदर है, तू देख रहा हूँ आकाश में। आत्मा को देखना आँखों का विषय नहीं अनुभूति का विषय है।

ज्ञानी! मोक्षमार्ग मति-श्रुतज्ञान से खुलता है, बिना श्रुत ज्ञान के मोक्षमार्ग खुलता ही नहीं। केवलज्ञान भी प्रकट श्रुतज्ञान की आराधना से होगा। जो परोक्ष कहा है आत्मा ही तो ज्ञान है ज्ञान ही आत्मा है संपूर्ण विकल्प, कषाय-राग की धारा है। अवैध रत्नत्रय की धारा संकल्प-विकल्पों से रहित है।

147

जब कषाय का वेग अल्प होता है, राग हल्का होता है, तब संबोधन कार्य कर जाता है, जब मोह का वेग तेज होता है, तब परमात्मा का संबोधन भी कार्यकारी नहीं होता। सुनो ही नहीं, गुनो भी। यह आज के लिए नहीं, आगे की पर्याय के लिए भी सुनना है प्रार्थना करना, किसी रागी के चरणों में मेरे प्राण न निकल जाए। त्यागी का एकमात्र सूत्र होना चाहिए कि परभावों से भिन्न कैसे भिन्न कैसे होकर रहना है, जगत से चिपकने की कोई आवश्यकता नहीं, कर्म से संबंध कब से है ? 'अनादि सम्बंधे च' कब तक और रहना है ?

148

भिन्नत्व भाव की जब तक अनुभूति नहीं है, तब तक काषायिक भाव है। भेदविज्ञान क्या कहता है ? विकल्पात्मक होने के लिए नहीं, साम्यभाव होने के लिए निर्विकल्प होने के लिए कहता है, भेदविज्ञान उन विकल्पों से दूर ले जाता है, जो संसार के साधन हैं, जितने सिद्ध होंगे - भेद-विज्ञान से ही होंगे। भेद-विज्ञान परिग्रह का प्रमाण प्रथम अवस्था में करता है, क्या बिना परिणाम के तीनलोक की संपत्ति का आश्रय हो रहा है ? भेष तो दुनियाँ बना सकती है, भाव बना। भव का नाश भावों से ही होगा। द्रव्य संयम के बिना परिणामों में शुद्धि आती नहीं। जैसे मोक्ष के लिए द्रव्यलिंग अनिवार्य है।

(149)

बिना व्रत पालन किये, हृदय के निर्मल भावों से श्रुत के सुनने मात्र से असंख्यात गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा होती है, ऐसा धवलाजी के प्रथम पुस्तक में लिखा है। सम्यग्दृष्टि जीव धर्म-धर्मात्मा को देखकर प्रमोद के अश्रुपात को कह सकता है परंतु इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग में रुदन नहीं करता और कभी करता भी है तो तीव्र चरित्रमोहनीय ही करता है, दर्शनमोहनीय से नहीं करता।

आत्मा को देखो, जानो से तात्पर्य यह है कि अनुभूति ही जानना है अनुभूति ही देखना है। आत्मा तुझे ज्योतिर्मय दिख रही है, तूने तो उसे पुद्गलमय बना दिया। तुझे यदि शुद्धात्मा का कभी विवेक ही नहीं जगेगा, तो फिर स्वतंत्र आत्मा सत्ता को पाने का पुरुषार्थ ही नहीं करेगा।

(150)

परमात्मतत्त्व का रहस्य एक भोगी को भोग करते समझ नहीं आएगा, क्योंकि वह रहस्य योगगम्य है, तुझे योगी बन कर बैठना होगा। साधु होना सरल है, योगी होना सरल नहीं है। जहाँ जगत के योगी समाप्त हो जाते हैं, वहाँ कुंदकुंद का योगी प्रारंभ होता है। **काय-वाङ्-मनः कर्मयोगः** - इन तीनों योगों को जो निज में संभाल कर रखता है, उनका नाम योगी है चंचलता का जहाँ अभाव होता है।

151

प्रभु ज्ञान ज्योति तमहार, विश्व प्रकाश किया।
निज ज्ञान ज्योति हितकार, नहीं पुरुषार्थ किया।।

संज्वलन कषाय के मंद उदय में ही आत्मानुभूति की दशा है, कषाय की मंदता में तत्संबंधी अनुभूति होती है, तुम्हारे सारे भेष नष्ट हो जाएंगे, परंतु जिनेंद्र का भेष कभी नष्ट नहीं होगा। वस्तु स्वतंत्र है-स्वभाव दृष्टि परतंत्र है - विभाव। दोनों का कथन करो। जीव को विभाव से परतंत्र नहीं मानेंगे तो स्वभाव की स्वतंत्रता का पुरुषार्थ कौन करेगा। रस्सी तो रस्सी से बंधी है, उसके बीच गाय फंसी है कर्म-कर्म में बंध है परंतु बंध कर्मों के बीच जीव फंसा है।

152

क्या तेरी धर्मपत्नी तुझे भगवान बनाएगी? यह संबंध राग ही बढ़ाएंगे। ज्ञान से ज्ञान का निर्णय कीजिए। मोह-राग की तीव्रता में सत्यार्थ किंचित् भी समझ में नहीं आता है, बड़े-बड़े विद्वान अंतिम समय में भ्रमित होते देखे हैं, क्यों हो गये, मोह के साथ ज्ञान को मस्तिष्क में रखा है। अपनी प्रज्ञा (मस्तिष्क) को ज्ञान के साथ ज्ञान में लगाकर रखते हो, अंतिम समय में विवेक नहीं खोते। जीव और अजीव दोनों एकमेक होकर रंगमंच पर उतर रहे हैं, इस नाटक को समझना आसान नहीं है।

(153)

सिद्ध परमेश्वर मुक्त ही नहीं, अमुक्त भी हैं। मात्र कर्म से मुक्त ज्ञान से, दर्शन से, वीर्य से, सुख से मुक्त नहीं हैं (अनंतचतुष्टय के धारी हैं) मेरी आत्मा का धर्म उपयोग है, जो चेतन गुणों से युक्त है, वह जीव है, जो जीता है, जिया था जियेगा, इसका नाम जीव है।

व्यवहार में से जो तीनों काल में 4 प्राण से जीता है, वह जीव है ज्ञानी ! अशुद्ध चेतना से शुद्ध चेतना तो हो जाएगी, परंतु शुद्धचेतन कभी भी अशुद्ध चेतन नहीं होगी। संपूर्ण स्थावर कर्मफल चेतना को भोग रहे हैं, त्रसजीव कर्म एवं कर्मफल चेतना को भोग रहे हैं, सिद्ध भगवान शुद्ध ज्ञान चेतना में लीन हैं।

(154)

द्रव्य से रहित पर्याय नहीं है, पर्याय से रहित द्रव्य नहीं है। पर्याय भी कारण-कार्य समयसार है, द्रव्य भी कारण-कार्य समयसार है। बिना पुद्गल के जीवद्रव्य समझ नहीं आता। बिना जीव पुद्गल समझ में नहीं आता - ऐसा ही है। जो परमात्मा होता है, वह पुनः अंतरात्मा या बहिरात्मा नहीं होता। जबकि पुद्गल शुद्ध से अशुद्ध, अशुद्ध से शुद्ध होता रहता है। समयसार को पढ़कर, आत्मा को जान लिया, नहीं अभी तो वह तेरे मात्र-ज्ञान में आया है, जिस दिन जान लेगा उस दिन तू स्वसमय में चला जाएगा।

155

बैल रस्सी से बंधे होने पर भी उसको तोड़ने का प्रयास तो करता है, आप कैसे ज्ञानी जीव हैं, किसी खूंटे से बंधे नहीं हो, यह बंधन कैसा है?

आचार्य अमृतचंद्र ने कहा है ज्ञानी 6 महीने एकांत में बैठकर ध्यान लगा। वह एकांत में चला गया, वहाँ स्वच्छंद हो गया। भाई, एकान्त का मतलब विकल्पों से दूर होना है, जो संसार के, पर के भाव चल रहे हैं, उनकी निवृत्ति करनी है। एकांत में तो तुम्हारी बुराई तुम पर हावी हो सकती है। आज के समय में गुरुओं का, साधर्मी का, ज्ञानियों का साथ अनिवार्य है। विभाव की चर्चा में कभी स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। स्वभाव की चर्चा में ही स्वभाव की प्राप्ति होती है।

156

जब तक किसी विषय की चर्चा नहीं करोगे तो उसे प्राप्त कैसे करोगे? जिसे शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्ति का लक्ष्य है, उसे स्वरूप की चर्चा करनी ही होगी। अध्यवसाय भावों से शून्य होना है तो पहले का रागादिक का व्यापार बंद करो, प्रत्याख्यान करो। 'परस्परोपग्रहोजीवानाम्' व्यवहार से लेकिन परमार्थ से निमित्त होते हुए भी स्वतंत्र ही है। जब तक परभावों में आत्म दृष्टि है, परसमय है, निजभाव में निजदृष्टि ही – स्वसमय है।

157

छह द्रव्यों के समूह का नाम लोक है, छह द्रव्यों के समूह में तू एक द्रव्य है कि नहीं ? तो तुम भी एक स्वतंत्र लोक हो। चिंतन करो। व्यवहार नय से यह जीव लोकाकाश में रहता है, निश्चय से यह जीव आत्मलोक में ही रहता है, एक द्रव्य दूसरे धर्म का कुछ भी नहीं करता, परंतु, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को प्रभावित करता है। ऐसा कहोगे कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करता ही नहीं है, अहो निश्चय-वासियो! आप निमित्त-नैमितिक व्यवस्था को ही नष्ट कर दोगे। वस्तुस्वरूप में बहुमत कार्यकारी नहीं होता, सत्य स्वरूप कार्यकारी होता है, बहुमत मिथ्यादृष्टियों का है।

158

द्रव्य परभावरूप नहीं होता है, इसलिए अविनाशी है परंतु स्वभाव में रमण करता है इसलिए विनाशी है (पर्याय रूप) अनित्य भावना पर्याय दृष्टि से है न कि द्रव्यदृष्टि से। द्रव्य किसी को दिखता नहीं, जो कुछ देख रहे हो, वह पर्याय को देख रहे हो, मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, यह शुद्धोपयोग की भावना है, जब तक भावना है, तब तक वैसा नहीं है, जब वैसा है, तो भावना नहीं है, जब वैसा होगा, तो उसकी अनुभूति होगी। जब तक वस्तु प्राप्त नहीं होती, तब तक भावना ही होती है, प्राप्त होने पर उसका सुख उसका आनंद होता है।

(159)

तटस्थ होकर निहारता है (अपरभावित) प्रत्येक क्रिया को ज्ञेय बनाता है, परन्तु ज्ञेयों के साथ बहता नहीं है, देखता-जानता है, इस तरह प्रत्येक द्रव्य का केवल ज्ञाता होता है, इसकारण बंधता नहीं है।

ज्ञाता-दृष्टा भाव में जो राग भाव है, वह ही बंध भाव है, जब भद्र मिथ्यादृष्टि ऐसा शुरू करेगा, तो वह सम्यग्दृष्टि बन जायेगा। सम्यग्दृष्टि जब ऐसा करेगा तब देशव्रती बन जायेगा। देशव्रती जब ऐसा करेगा तो महाव्रती बन जायेगा। स्वयं तटस्थ होकर ज्ञाता बनकर तब तक, तेरा न शुभोपयोग बनेगा, न व्रती बनेगा, न महाव्रती, न शुद्धोपयोगी।

(160)

दीक्षा तभी कार्यकारी है, जब परतंत्र दशा होने पर भी निज स्वतंत्र दशा का ज्ञान होगा, ध्यान रहेगा क्योंकि स्वतंत्र दशा का ध्यान करनेवाली आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाण से स्व-संवेदन करेगा। वह सम्वेदन खण्ड-खण्ड में नहीं अखण्ड होगा। मति-श्रुतज्ञान से युक्त आत्मा को ही केवलज्ञान होता है।

हे ज्ञानी ! यह जीव विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय में जी रहा था, जो 84 लाख योनियाँ हैं। हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, ये सब विभाव-व्यंजनपर्याय की धारा है। विभाव गुण व्यंजन पर्याय का अभाव होते ही आत्मा की जो त्रिविध शुभ-अशुभ परिणति है, इसका भी अभाव है।

161

परिणति जो है, उपयोग लक्षण है। जैसी परिणति होगी, बंधस्थान वैसा बनेगा और जैसा बंध स्थान बनेगा, गमनस्थान वैसा होगा। धर्म के निमित्त से भी कषाय करेगा तो तेरी आत्मा का कल्याण नहीं होगा। ऐसे जीवों की गोष्ठी में नहीं बैठना, जहाँ हमारे शुभ भावों की रक्षा न हो। जिस काल में तेरी ज्ञान दृष्टि जैसा परिणमन करेगी, तू वैसा ही परिणत होता है।

सम्बन्धों का पालन हमेशा किया है। अब अपने स्वभाव का पालन कर लो, धर्मध्यानरूप परिणाम का होना शुभोपयोग।

162

चन्द्रगुप्त के 16 स्वप्न में एक स्वप्न था - दो स्त्रियाँ नग्न नाच रही हैं, उसका अर्थ था कि पंचमकाल में साधु-साधु भी लड़ेंगे। यही तो हो रहा है, आज भक्तों के प्रति भी करुणा रखना। द्वेष किसी से मत रखना बिना किसी सद्गुरु की अनुकम्पा के सत्यार्थ बोध नहीं होता, यह मानकर रखना।

यह संसारी प्राणी राग-द्वेष की दो डोरियों में घूम रहा है और भटक रहा है। सम्पूर्ण द्वादशांग का सार साम्यभाव है। इष्ट-अनिष्ट बुद्धि का अभाव कर लेना ही सम्यक् साधना है।

(163)

जिन हाथों से अरिहंतों का अभिषेक करते हो, उन हाथों से पाप कैसे कर सकते हो, किसी को नहीं अपने को देखो - यह समयसार है।

यह ग्रंथ तो अशरीरी भगवत् स्वरूप को कहने वाला है त्यागियो ! घर-परिवार की स्मृति में नहीं स्वात्मरमणी की स्मृति में डूबना। जैसे कोई पुरुष परद्रव्य जानकर छोड़ देता है। रागी वीतरागी को देखे तो आनन्द ही आनन्द है। वीतरागी रागी को देखे तो आनन्द गया। भक्त भगवान को देखे तो बहुत अच्छा है, भगवान भक्त को देखने आ जाये तो मैं उनको नमोस्तु भी नहीं करूँगा।

न किसी ने किसी को नष्ट किया, न उत्पन्न किया, मोह ही कर सकोगे, पर मोहवान को बचा नहीं सकोगे।

मोह मेरा धर्म नहीं है, यह भगवान आत्मा मोह करती नहीं, कर्म मोह करते नहीं, तो मोह कौन करता है। ज्ञानी! यह जीव की मिश्र धारा विभावधारा है, जीव की राग दशा, विभाव दशा, मिश्र दशा जो है, वह भोजन कर रही है, सुख-दुःख की अनुभूति आत्मा ही लेता है।

कर्तृत्वभाव, भोक्तृत्वभाव यह पुद्गल का भाव नहीं है आत्मा का भाव है।

164

सल्लेखना सत्य में वो ही करता है, जिसे न जन्म से राग है, न मरण से। सल्लेखना करने वाले को राग छोड़ना होगा, इंद्रियों पर नियंत्रण रखना होगा। भवांकुर का अभाव कब होगा ? जब बुद्धि पूर्वक परद्रव्य से हट जाओगे, बुद्धिपूर्वक व्रतों को स्वीकार करोगे।

याद रखना यदि अशुभकर्म चल रहा है तो कोई भी तुम्हारी मदद करें, वह कार्यकारी नहीं होगा। समयसार सुनने वालों, समयसार तभी सार होगा जब साम्यभाव धारण करोगे तथा ममत्व भाव का त्याग करोगे।

165

समयसार उतना ही है, जितना समय निजसार में चला जाए। यदि आप वर्तमान के धर्म को सब कुछ मानते हैं, आगे-पीछे कुछ नहीं मानते, तो आप धर्मात्मा नहीं, जैन भी नहीं हैं। आत्मा का अभिनंदन ग्रंथों से नहीं है, निर्ग्रन्थ दशा से है।

अधिक बोलने से चित्त विपरीत होता है जैसे-जैसे परिचय बढ़ता है स्वयं से अपरिचित होता जाता है। परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है, आत्मा को छोड़ सर्व पर है मुनि की साधना मौन से शुरू होती है मौन से समाप्त होती है, धर्मात्मा से वात्सल्य तो रखना, राग नहीं रखना।

(166)

छल–कपट में मनुष्य के भाव तिर्यंच समान होते हैं, जैसा हृदय का सांचा होगा, वैसा तेरा द्रव्य पर्याय का आकार मिलेगा। लोभ ने मान, माया, क्रोध सब कर दिया। ज्ञानियों ने मात्र आत्मा–पुद्गल की चर्चा को द्रव्यदृष्टि समझ लिया है। इन भंगों पर भी विचार कीजिए। लोभ में अविश्वास का जन्म होता है, जिन विषय कषाय को देखा, उसमें चिपक गया – जो देखे, सुने नहीं उनकी स्मृति में लाकर जीवन बेकार कर दिया। कितनी कटोंच है, इस मन को पवित्र स्थान पर भी पवित्र नहीं कर पा रहा है।

(167)

ये नहीं खाता, वो नहीं खाता, यह नियम ले लिया। यह भी नियम ले लेना यह नहीं सुनूँगा, वह नहीं सुनूँगा। पर की निंदा क्यों करते हो और क्यूँ सुनते हो।

अपनी आँखों से भी आँखें मिलायें, वे ही आत्मदर्शी हैं, समाधि की भावना है तो करना, पर नियंत्रण अनिवार्य है। बंध का प्रबल हेतु–सेतु कोई है तो मोह हैं, समयसार की पात्रता नियम से श्रमण को ही है अध्ययन श्रावकों को अनिवार्य है, इसलिए ज्ञानी आत्मचिन्तन बैठकर प्रतिपल करो।

(168)

जिसको समयसार का ज्ञान नहीं है, वह संयम को जड़ की क्रिया कहेगा। जब छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज चर्या को जा रहे हैं, जब सरागदशा है तो हे श्रावक तू भोजन करता, व्यापार करता, वीतराग दशा में कैसे, ज्ञाता-दृष्टा कैसे ?

उस द्रव्य के संचय में द्रव्यहिंसा है, वहाँ राग है और राग ही हिंसा है, जो जीव कषाय से युक्त हुआ उस क्षण अपनी आत्मा से ही आत्मा का हनन कर रहा है, इसलिए अन्तरंग व बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग ही अहिंसा है, जब तक दोनों अंश मात्र हैं, तब तक हिंसा है, धन्य है वह निर्ग्रन्थ दशा, जहाँ दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग है, जहाँ राग का त्याग है, वहाँ परद्रव्य का त्याग है।

(169)

अशुभ कर्म को दुनियां कुशील कहती है, शुभ कर्म सुशील कैसे ? संसार में प्रवेश कराये। अशुभ नरक और तिर्यंच ले जायेगा, शुभ स्वर्ग ले जायेगा। शुभाशुभ मनुष्य बनायेगा। सिद्ध तब बनेगा जब शुभ व अशुभ दोनों का अभाव होगा। अशुभ से बचने के लिए, शुभ उपादेय है, पुण्य प्रकृतियों का क्षय हुए बिना परमात्मा बनता नहीं, पुण्य प्रकृतियों को प्राप्त हुए बिना परमात्मपद को प्राप्त होता नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव का पुण्य नियम से संसार का कारण नहीं है, मोक्ष का हेतु है, यदि वह निदान नहीं करता है।

170

शुद्ध आत्मधर्म को बाहर की बातों के लिए समय कहाँ है। मन के संकल्प-विकल्प स्थिर हो जायें तो शुद्धात्म मणि दिखना प्रारंभ हो जायेगी। इसलिए राग-द्वेष की हिलोरे लेना बंद कर दो।

बंध दशा में देह में आत्मा है, देह को मारोगे तो आत्मा को कष्ट होगा, देह को कष्ट निमित्त है, इसलिए जीव हिंसा मत करना। पर्याय उत्पन्न होती है, नष्ट होती है, लेकिन आत्मा ध्रुव है, चमकता चेहरा पुद्गल का धर्म है-आत्मा का नहीं। हे ज्ञानी! व्यवहार का पक्ष लोगे तो मिथ्यात्व में चले जाओगे, निश्चय का पक्ष लोगे तो मिथ्यात्व में चले जाओगे।

171

साधु पुरुष कभी बहिरंग पर दोष नहीं देते। समयसार में न राजनीति चलती है, न कूटनीति चलती है, नीति का अर्थ है कि येन-केन प्रकारेण अपने स्वार्थ की पूर्ति कर लेना। इससे केवल संसार बढ़ता है।

परिणाम कलुषित किए, तो असंख्यात लोकप्रमाण कर्म का आस्रव तूने कर लिया। शास्त्र पढ़ डाले, सबकुछ त्याग दिया, पर बेचारे आज भी कर्मों से परतंत्र हैं, भक्तगण आगे-पीछे घूमते हैं, फिर भी कषाय के घेरे में फंसे हैं।

(172)

निर्मोही भाव से देखने-जानने में कर्म का बंध नहीं होता, मोही भाव से देखने-जानने में कर्म का बंध होता है। दृष्टि का जाना दृष्टि को ले जाना इसमें महान अंतर है। वीतरागी को जानता है, दिखता है, वो जानते-देखते नहीं हैं। इच्छा पूर्वक आँख जायेगी तो आत्मा में कर्म बँधेंगे। जो देखना चाहता है, वह रागी, जो देखना नहीं चाहता, वह महारागी (द्वेषी)। समदृष्टि में बंध नहीं है, जो है सो है बस।

हे रागी! तेरे श्वांसों में भी शुभाशुभ भाव निहित है और आँखें में भी शुभाशुभ भाव निहित हैं। अपने शरीर का राग भी व्यभिचारी बनाता है, जो पर का राग सता रहा है, वह पराग्राही है। इन्द्रियाँ तेरे वश नहीं, देह तेरे वश नहीं, विदेही को कैसे समझेगा।

(173)

वे अज्ञ जीव हैं, जो कर्मों को कभी नहीं मानते और कर्मों को कम भी नहीं करते। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म मेरी आत्मा का ध्रुव धर्म नहीं है, पर्याय सहित भक्ति है, पर्याय मात्र की भक्ति नहीं है। गुण-पर्याय को जानकर निज स्वभाव पर लक्ष्य है, तो तू अंतरात्मा है। अरहंत के गुण-पर्याय को जाने बिना आत्मा का भान होता नहीं है, इसलिए पंचपरमेष्ठी की आराधना अंतरात्मा ही कर सकता है। घर में मन नहीं लगता, कोई दूसरा रास्ता नहीं मिलता, आ गये इस रास्ते पर। नहीं। कल्याण की इच्छा वाला, पापों से डरनेवाला ही इस मार्ग पर आये।

(174)

यदि आत्मा को जानना, सीखना है, पहचानना है तो अपनी कषायों को निकाल दो। राग-द्वेष जीव का स्वभाव नहीं है, विभाव भाव है। विभाव को स्वभाव मान बैठा है। जो सामान आपने जोड़कर रखा है, वह प्रयोग में हो या नहीं, भोगकर्म का अन्तराय पड़ रहा है। गाड़ी स्टार्ट खड़ी है, तेल तो जल रहा है।

निरोग शरीर मिलना पुण्योदय है, निरोग शरीर मिला है तो अच्छी साधना करो, दूसरों की वैयावृत्ति करो।

मुनि की वैयावृत्ति से तुम्हारा शरीर निरोग होगा।

(175)

कर्म और आत्मा का सम्बन्ध संश्लेष सम्बन्ध है, अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है।

सारी व्याख्या (कथन) आगम में शुद्धात्मा के लिए नहीं है, अशुद्ध आत्मा के लिए है। समझने समझाने की दृष्टि सिद्ध आत्मा में नहीं है, संसारी आत्मा में है। भगवान अरहंतों में क्षायिक अभयदान है, जो देशना के माध्यम से तीर्थंकरों में होता है।

विद्यार्थी जैसे प्रथम क्लास में पढ़ाई शुरू कर 12वीं क्लास तक क्रम से पढ़ता है, इसीप्रकार अध्यात्म की पढ़ाई क्रम से होनी चाहिए, स्वरूप का कथन अलग से, बंध का कथन अलग से चारों अनुयोगों का कथन अलग-अलग।

176

आत्मा बंधस्वरूपी नहीं है, आत्मा विभाव रूप है क्योंकि वह बंध को प्राप्त है, विभावरूप आत्मा ही निर्बंध होगी, जो तेरे अनुकूल पुरुषार्थ से होगी। यदि तू पुरुषार्थ नहीं करेगा तो तेरे स्थिति-अनुभाग आदि बंधस्थान गलत नहीं होंगे। साधना का मार्ग एक सीमा तक है, जबकि विशुद्धि का मार्ग असीम है, जीवन जीने की उम्र वह भी सीमित है, लेकिन जीवन में कषायों की वृद्धि असीम है। 70 साल की आयु में करोड़ों वर्षों का आस्रव-बंध हो जाता है।

177

मत समझना समयसार को सूखा-सूखा। कोई भी स्वामित्व भाव कार्यकारी नहीं होगा। यदि कार्यकारी है तो मात्र एकत्व-विभक्त भाव ही कार्यकारी है, इस तत्त्व के लिए जग के सम्बन्धों को रखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अन्य तत्त्वों की सिद्धि अन्य के संयोग से होती है, परन्तु आत्मतत्त्व की सिद्धि संयोग के वियोग से होती है। स्कन्ध को परमाणु की आवश्यकता है, परमाणु की सिद्धि के लिए स्कन्धों की आवश्यकता नहीं। तत्त्वार्थ सूत्र का 5वाँ अध्याय रहस्य से भरा हुआ है, जब भी पुद्गल शुद्ध होगा तो भेद से होगा, असंयोगी भाव से होगा। जब तक संयोग है, तब तक स्कन्ध (अशुद्ध) है।

(178)

अध्यात्म विद्या गुरु के बिना सिद्ध हो ही नहीं सकती। लोग सिद्धान्त में नहीं, अध्यात्म में भटके हैं, जबकि अध्यात्म भटकानेवाला नहीं है, वह तो निर्मल बनानेवाला है, इस पर्याय को सौभाग्य मानकर, अगली पर्याय का बीज बना कर चलना।

रागादि भाव आत्मा का विभाव भाव है, स्वभाव नहीं। वर्तमान में जो पुण्य से सुख मिला है, उसे कौन छोड़ेगा ? ऐसा चार्वाक कहता है। हे अज्ञानी ! तेरा ज्ञान तो किसान जितना भी नहीं है, जो मुट्ठी में चमकते दानों को मुँह में न रखकर मिट्टी में फैंकता है। संसारावस्था में देह में आत्मा अवश्य हो सकती है, लेकिन देह आत्मा नहीं है।

(179)

अकषायभाव ही तत्त्व का वास्तविक स्वभाव है, जो वस्तु का स्वभाव है, वही तत्त्व है। आत्मा का स्वभाव अकषायक भाव है, ये ही आत्मा का स्वभाव है, ये ही जीव तत्त्व है, उस ज्ञान-दर्शन का विपर्यास कर लिया, ये ही तत्त्व का विपर्यास है, कोई बाहर से विपर्यास नहीं आता, निज के सोच में ही विपर्यास है। निज के सोच में ही सम्यक्‌पना है।

एक मात्र निज जीवद्रव्य ही ज्ञेय है-उपादेयभूत है, बाकी सारे जीवों से मेरा उद्‌देश्य नहीं है, नाना ज्ञेय जानने भूत तो हो सकते हैं, परन्तु उपादेय नहीं हैं, मेरे स्व कल्याण के लिए तो मात्र मेरा जीवद्रव्य ही सहकारी है, उपादानभूत है। व्यवहार से पंचपरमेष्ठी हैं।

180

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कार्य तीन हैं, लेकिन समय एक है। जब योगी समरस में लीन होगा, तब सारे जगत का त्यागी हो जाएगा। वह रस मेरी आत्मा का स्वभाव है वह आनंदकंद स्वरूप है परभाव से दृष्टि हटे, स्वभाव में प्रवृत्ति नहीं तो ज्ञानी गया कहाँ? दीपक का जलना और अंधकार का जाना। स्वयं की अनुभूति होते ही परभाव भिन्न हो जाते हैं कितनी बड़ी विडंबना है यह ज्ञानी प्राणी तात्कालिक पर्याय की अनुभूति के पीछे त्रैकालिक भगवानात्मा की अनुभूति को भूले हैं। ज्ञानी ध्यान देना आत्मा का स्वभाव उपयोगमय है मोहमय नहीं है। मोह से मेरी आत्मा मलिन हो रही है, मोह नहीं तो कर्म का आस्त्रवबंध नहीं, वही आत्मा स्व को जानने वाला है जो मोह से निवृत्त है। आत्मा का स्वभाव परभाव से अत्यंत भिन्न है आत्मा का एकत्व विभक्त स्वरूप है जो सबसे सुंदर है। जहाँ द्वैतभाव है वहाँ बंध है एक कभी बंध को प्राप्त नहीं होता। यह मेरा, यह तेरा कहते ही बंध है मोह अद्वैत नहीं द्वैत है अद्वैत दशा परमब्रह्म दशा है। लोक में सबसे कठिन अद्वैत साधना है, पंचपरमेष्ठी की आराधना द्वैतभाव है जहाँ निज स्वरूप लीनता है अद्वैत भाव है।

181

ध्यान में चित्त की एकाग्रता से मतलब है, एक स्थान पर, एक वस्तु पर एकाग्रता चाहिए। ध्यान ये चिंतन नहीं है। चिंतन अनुप्रेक्षा है।

(182)

जब श्रद्धा में ज्ञान आता है और चर्या में ज्ञान आता है तो तपस्या में आनंद आता है, एक विचार आपको बनाना है, इस भव से मैं निकलूँ, उससे पहले भवातीत होने का मार्ग जिनदीक्षा को प्राप्त कर लूँ क्योंकि ये ही एक मार्ग मात्र है। माना आपके पास तपस्या करने की सामर्थ्य नहीं है, लेकिन श्रद्धा को दृढ़ बनाने में तो कोई ताकत नहीं लगती। याद रखना असमाधिमरण हुआ तो नियम से कुगति होगी, धर्मात्मा कभी दुर्गति में नहीं जाता।

धर्म क्रिया के समय, साधना के समय अशुभ कर्म उदय में आते हैं तो समझना तेरा पुण्य है, क्योंकि बुद्धि उस समय विवेक में है और सहने का सामर्थ्य है।

(183)

जो युवावस्था में ज्ञान वृद्ध हो जाये, संयम वृद्ध हो जाये उन्हें बूढ़ा होना नहीं पड़ता, उनका तो सल्लेखनापूर्वक मरण होता है। पर का वेदन ज्ञानरूप हो रहा है, निज का वेदन तन्मयभूत हो रहा है, ऐसा वेदन पर का नहीं है, मिश्री की मिठास दूर से भी जान रहा है, मुख में रखकर भी जान रहा है, दोनों जानने में भेद है, क्या नहीं?

एक ज्ञानानुभूति मात्र है दूसरी ज्ञानानुभूति स्वादानुभूति है।

जब राग मेरा स्वभाव नहीं, तो राग के साधनों में मेरा राग क्यूँ? धिक्कार है स्वतंत्र सत्ता का भाव जीव को किंचित् भी नहीं हो रहा है।

(184)

निश्चयचारित्र सप्तम गुणस्थान से शुरू होता है, यथाख्यात फिर भी नहीं है, यथाख्यात अर्थात् जैसे स्वरूप कहा है, उस स्वरूप में लीन हो जाना। आत्मा पौद्गलिक नहीं है, वह स्पर्श का विषय नहीं है, व्यक्त रूप से स्वयं ही अंतरंग-बहिरंग प्रगटमान है। जाननहारा ही जाननहार को जानता है, जो सत्यार्थ ध्रुवस्वरूप था उस स्वरूप पर दृष्टि ही नहीं गई। वर्णादिक और रागादिक में लिप्त होकर सत्यार्थस्वरूप से पूर्ण भिन्न हो गया।

(185)

परभाव की सरसता महा अशुभोपयोग है, निज भाव की सरसता और परभाव का रूखापन ये ही योगी की परमयोग दशा है, हम अभी बन न पाये, जो बने हैं, उनके प्रति श्रद्धा बनी रहे तो हमारे बनने का मार्ग खुला रहेगा। समझदारी क्या है ? हम अपनी आयु कर्म के निषेकों को पाप में न लगाकर, पाप के क्षय में लगायें, निषेक तो प्रति क्षण झर रहे हैं।

एक-एक श्वांस में समाधि हो, श्वांस-श्वांस में साम्यभाव ये ही मेरे जीवन की समाधि है।

अलाभ में संक्लेशता, लाभ में हंसी, खुशी क्या यह संक्लेशता नहीं है। हर्ष में भी हृदयघात होता है भाई! रोने में भी कषाय, हंसने में भी कषाय समझना होगा।

186

हमारे मानने वाले कम न हो जायें, इस राग ने मिथ्यात्व बढ़ा दिया। साक्षात् मोक्षमार्ग निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है, निर्ग्रन्थ मार्ग की सेवा करना परम्परा से मोक्षमार्ग है, जब विषय-कषाय में अनुभावक जायें, तो उससे कह देना कि तू स्वात्म तत्त्व में भी तो जा सकता है। जीव-पुद्गल की मिली-जुली सरकार चलती है स्वभाव-विभावशक्ति। जीव में स्वभावभूत राग नहीं है। जीव में विभावभूत राग है।

परिणमन शक्ति एक है, परन्तु परिणमन दो प्रकार हो रहा है, मेरी अनुभूति तेरे में नहीं है, तेरी अनुभूति मेरे में नहीं है। मैं स्वतंत्र अखण्ड आनंदकन्द भगवान आत्मा हूँ।

187

विकारभावरूप जो परिणमन है, उस समय आत्मा विकारी है, अविकाररूप जो परिणमन है, उस समय आत्मा अविकारी है। विकार-अविकार दोनों में जो शून्य है, उसका नाम परमात्मा है, मेरी आत्मा मोहस्वभावी नहीं है, कोई किसी को बांध कर नहीं बैठा है, आपका अपना राग ही तुझे पकड़े है, आत्मा का स्वभाव ने अध्यात्म है, न अध्यवसाय।

बाल-बाला छूट जाये, तो बाल-बाल मरण समाप्त हो जाये और पण्डित-पण्डित मरण हो जाये। कोठी का राग या मंदिर का राग दोनों विभावभाव ही हैं, स्वभाव नहीं है, न औदयिक भाव, न क्षायोपशमिक भाव, न क्षायिकभाव, एक परमभाव, परमपारिणामिकभाव, सहजानंद भाव, जहाँ ध्येय नहीं, ध्याता नहीं है वह है अखण्ड स्वभाव।

(188)

इस आत्मा को जाननेवाला कोई है तो ध्रुव आत्मा ही है, जब रस मेरा धर्म नहीं है, तो रस में रस किस बात का। स्थिर हो जाओ। तू अरस स्वभावी था, अरस स्वभावी है, ये ही त्रैकालिक अवस्था है। तू तात्कालिक पर्याय के सम्बन्ध में आकर रसों में परिणति क्यों ले जा रहा है। अरस स्वरूप का व्याख्यान करते हुए भी संगीत रस के साथ ले रहा था। जो आत्मा संचारी भाव नव रसों में रस ले रही है, वह आत्मा असरस स्वरूप नहीं, बंधरूप है, जब तक तू शब्द शक्ति में लीन रहेगा, तब तक स्वानुभूति-आत्मानुभूति नहीं बन पायेगी। ग्रन्थों में जीना भी, निर्ग्रन्थों का स्वभाव नहीं है।

(189)

पुण्यात्मा जीव की ही कषाय मंद होती है। केवलज्ञान को प्राप्त करनेवाला क्या क्षीण पुण्यात्मा होगा। पुण्य को कभी हेय मत कह देना। लेकिन जब तक पुण्य को पकड़े रहोगे, तब तक मोक्ष नहीं होगा। अन्तरात्मा वही है, जो अपने ध्रुव ज्ञायक भाव पर ही अपने लक्ष्य को रखता है और उसी ओर अपनी आत्मा को ले जाता है। चक्षु इन्द्रिय इतनी नहीं भटकती, जितनी अचक्षु अर्थात् मन भटकता है, जिनवाणी सुबह शाम सुन लेना पुण्यशाली जीवों का भाग्य है, लेकिन उसके अनुसार प्रवृत्ति कितने जीवों की है, आपने भगवान की भक्ति बहुत करी होगी, उसका आनंद लिया होगा। लेकिन किसी योगी की भक्ति की अनुभूति बिल्कुल अलग है।

190

काललब्धि नहीं आयेगी, पुरुषार्थ करेगा काललब्धि आ जायेगी। इस मुमुक्षु से पूछना एक तरफ कहता है कि मैं पराश्रित नहीं हूँ, मैं स्वाश्रित हूँ, दूसरी तरफ कहता है कि काललब्धि आयेगी, तब हो जायेगा। हे अज्ञानी ! तू काललब्धि के पराश्रित हुआ कि नहीं हुआ। जैसे कन्या की शादी की चिन्ता पिता को होती है, ऐसी चिन्ता मुझे मोक्ष प्राप्ति की होनी चाहिए। आप संसारी हैं, संसार जो झलक रहा है, उसे जानने आये हो या जो नहीं जान पाये आज तक उसे जानने के लिए आये थे। आत्मध्यान में ठहरना है, तो इन्द्रिय ग्राम से बाहर निकलना होगा।

191

पर के कारण निज परिणामों का विघात नहीं होने देना। उसी क्षण संभाल लेना। प्रायश्चित्त भी कर लेना। कर्म आपको छोड़नेवाले नहीं हैं, निरास्रव भाव में रहना चाहते हो, तो सबसे पहले कर्तृत्व भाव का विसर्जन करो। महाराज को मैं लेकर आया, यहाँ भी कर्तृत्व भाव आ गया। ये कर्तृत्वबुद्धि तुझे तेरा सब कुछ होने के बाद भी–निर्जरा नहीं होने देगी। आ. अमृतचन्द्रस्वामी लिखते हैं – वर्णों से शब्द बने, शब्दों से वाक्य, वाक्यों से अध्याय बने, अध्यायों से ग्रन्थ बना, मैंने क्या किया ? मैं पर का कर्त्ता नहीं, पर मेरा कर्त्ता नहीं। कण–कण स्वतंत्र है।

192

देव-शास्त्र-गुरु और 7 तत्त्वों का श्रद्धान तथा 7 कर्मों की प्रकृतियों का क्षय, क्षयोपशम, उपशम ये साधन हैं सम्यग्दर्शन होने के। भाव इन्द्रिय जो है वो कोई भिन्न नहीं है, आत्मा की दशा ही है, समयसार की जो लीनता चल रही है, वर्तमान में वो भावइन्द्रिय का ही विषय है। 12वें गुणस्थान तक भावेन्द्रिय, द्रव्यइन्द्रिय के साथ है।

काम, क्रोध, विकारी भाव ये कर्मोपाधिक भाव हैं, ये सहज भाव नहीं हैं, ये सोपाधिक भाव हैं, जब तक विषय-कषाय का पाटा तुम्हारे ऊपर चढ़ा रहेगा, हे ज्ञानी तू सहज सुख में नहीं जा सकेगा।

193

तू 148 कर्म की प्रकृतियों को नष्ट करने आया है। स्यान्दीभूत स्वभाव की प्राप्ति चाहते हो तो आप अपने को सोपाधिक (औपाधिक) भाव से दूर कीजिए। पहले रसना का त्याग। फिर उस त्याग का भी त्याग। उस दिन समाधि के पात्र बनोगे। यदि तेरे को संक्लेश भाव आ गये, सिद्धों के अनंतवें भाव कर्म का आस्रव-बंध एक समय में होता है।

धर्म बाहर की किसी क्रिया का विषय नहीं है, धर्म तो अन्दर का विषय है, योगी तभी तो भवन छोड़कर, जंगल में जाता है। चेतनतत्त्व भाव का स्यान्दीभूत आत्मस्वरूप में लीन होना, विकारी भावों से रहित, स्थिर होना, वही परम-पारिणामिक भाव की प्राप्ति का सहज भाव है।

194

'पुण्य फल अरहंता' पुण्य का फल अरहंत है। 12 गुणस्थान के बाद पुण्य नहीं होता। अरहंत का द्रव्य भी पूज्य है, पर्याय भी पूज्य है और गुण भी पूज्य है। जो प्रशस्त राग में ही उलझे रहें और वीतराग भाव को प्राप्त नहीं हुए, वह आत्मा भटकती है।

पहले अशुभ राग को छोड़ना होगा, बुद्धिपूर्वक शुभ का त्याग मत कर देना, ऐसा करने वाला शुद्ध में जा ही नहीं सकता। जब तू शुद्ध में जायेगा तो शुभ स्वयं ही छूट जायेगा। सत्य यह है जो संयम साधना करता है, ध्यान में रहता है, ऐसा करते-करते निर्विकार, निर्विकल्प हो जाता है, तब शुभ स्वयं छूट जाता है और साधक शुद्ध में प्रवेश कर जाता है।

195

ज्ञानी है गर तू तो बुद्धिपूर्वक 5 पापों का त्याग करना ही होगा। त्याग करते ही तू शुभोपयोग को प्राप्त कर लेगा। शुभोपयोग में रहते हुए, शुद्धोपयोग की भावना भाता है साधक। परम तत्त्व पर दृष्टि रखना। ध्यान पर से हटा कर आत्मा पर लगा दो। प्रशम, संवेग, अनुकंपा, अस्तिकाय गुणों से युक्त होता है, फिर देखना अध्यवसाय भाव छूट जायेंगे। अंतरंग निर्मलता का विकास होगा। ये ही तुझे शुद्धोपयोग की तरफ ले जायेगा। वहाँ शुभोपयोग स्वयं ही छूट जायेगा।

196

जब तक मोह दशा है, अरहंत अवस्था प्रकट नहीं होती। पहले निर्ग्रन्थ अवस्था प्रगट होती है, 12वें गुणस्थान में गया जीव कभी नीचे नहीं आता। मोह सबसे बड़ा शत्रु नष्ट हो गया, निर्ग्रन्थ दशा प्रगट होती है, 12वाँ गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त में अरहंत दशा प्रगट हो जाती है।

हम सब जो पुरुषार्थ कर रहे हैं, मुनि बनने के लिए नहीं, निर्ग्रन्थ अवस्था के लिए। तूने द्रव्य हिंसा का त्याग तो बहुत बार किया, लेकिन परमात्मा नहीं बन सका। जब तक भावहिंसा का पूर्ण त्याग नहीं होता, परमात्मा नहीं बन सकता। मूल गुणों में प्रधान गुण एक ही है, उसका नाम है अहिंसा।

197

यदि अपने को आरम्भ से ही, निश्चय से ही शुद्ध मानकर बैठ जायेगा तो मोक्ष पुरुषार्थ कौन करेगा? मोक्ष पुरुषार्थ तो वो ही करेगा न, जो अपने को वर्तमान में अशुद्ध देख रहा है, फिर रत्नत्रय का मार्ग, वीतरागता का मार्ग, मुनि का तेरह विध चारित्र कौन अंगीकार करेगा। यह सबसे बड़ी भूल होगी।

जब संयमाचरण नहीं, तो सम्यक्त्वाचरण भी नहीं है।

व्यवहारनय का व्याख्यान जरूरी है, चारित्र के बिना मोक्ष है ही नहीं। समझना होगा।

198

आत्मतत्त्व के लिए चारों अनुयोग हैं, चारों अनुयोग आत्म नाम के तत्त्व का हो, व्याख्यान करते हैं, षट् द्रव्य त्रिकाली है, उसका कथन करने वाले चारों अनुयोग हैं।

एक निज आत्मद्रव्य को तूने यदि समझा लिया तो तेरे पास चारों अनुयोग हैं, अनादि से इस आत्मा ने विभाव में रमण किया है, उस कारण इसे शरीर, इन्द्रिय, गति आदि प्राप्त हुई है, इस पुद्गलपिण्ड के निमित्त से जीव संसार में भ्रमण कर रहा है और दुःखी हो रहा है।

199

सारे जगत में सर्वशक्तिमान वस्तु है वह शून्य है, जो 'ओंकार' बिन्दु है, उसी की सिद्धि करता है, वह बिन्दु है – सिद्ध आत्मा। सम्पूर्ण विभाव भावों से शून्य, सम्पूर्ण कषाय भावों से शून्य सम्पूर्ण कर्मों से शून्य जो बिन्दु की रक्षा करेगा, वही बिन्दु बन पायेगा।

जो वक्ता, श्रोता अनेकान्त से शून्य है, वह कभी भी जिनशासन को समझ ही नहीं सकता। जीव निश्चय से पुद्गल द्रव्य से अन्य है, भिन्न है। आत्मा परमार्थ से समस्त अन्य भावों से रहित चैतन्य शक्ति मात्र है, यह आत्मा स्व-पर संवेदी है। सुख-आनंद आत्मा का गुणधर्म है, आनंद गुण त्रैकालिक है, निगोदिया से लेकर सिद्ध परमेश्वर तक।

(200)

इन्द्रिय सुख को यदि दुःख मानोगे तो स्वर्ग-नरक में अन्तर क्या रहेगा। असाता वेदनीय का उदय दुःखभूत है, साता वेदनीय का उदय सुखभूत है, यदि इन्द्रिय सुख को सुख नहीं मानते तो साता-असाता की परिभाषा क्या होगी? इन्द्रिय सुख में ही साता-असाता होता है। इन्द्रिय सुख का वेदन कौन कर रहा है आत्मा। संक्लेश परिणामों से व्यक्ति का अकाल मरण हो जाता है, इन्द्रिय सुखों को शांति से भोगने वाला संक्लेशित नहीं होता, सुखी होता है इन्द्रिय सुख - सुख तो है और वह ले भी आत्मा रही है। इन्द्रिय सुख की लेकिन एक विशेषता है, इसमें प्राणी लाभ होने पर भी तड़पता है, वस्तु के न मिलने पर भी तड़पता है, इसका सुख आकुलता सहित है तथा पराधीनता लिए हुए है, पराधीनता में सपने में भी सुख नहीं है।

(201)

आत्मा सुख स्वभावी है, आत्मा दुःख स्वभावी नहीं है। आत्मा को इन्द्रिय सुख जहाँ-जहाँ मिलता, वह लेती है। दुःख मिलने पर परेशान हो जाती है। गतियों में आत्मा को जो मिलता है वह इन्द्रिय सुख और इन्द्रिय दुःख ही तो है आत्मा हर गति में, हर समय में सुख को ही खोजती है, सुख में ही विचरण करना चाहती है, इन्द्रिय सुख सत्य सुख, पूर्ण सुख, अविनाशी सुख की प्राप्ति नहीं कर पाता, इसलिए वह अतृप्त है।

202

वस्तु अच्छी नहीं है, वस्तु बुरी नहीं है, वस्त तो वस्तु है, लेकिन आपकी दृष्टि में अच्छी-बुरी है, जो जीव कष्टों के काल में समता रखता हो, वह भावों कर्मों को निमंत्रण नहीं देता और बाह्य कर्मों की निर्जरा करता है, जो संक्लेशित होता है, वह बद्ध कर्मों की निर्जरा भी नहीं करता और अभिनव कर्मों को निमंत्रण देता है। अहो ! जरा से धैर्य और ज्ञान के अभाव में व्यर्थ में कर्म बंधते जाते हैं, कर फिर भी कुछ नहीं पाता, होनहार होकर रहती है, जब तक यह धारा व्यवहार में नहीं आयेगी, तू व्यवहार धर्मात्मा भी नहीं हुआ है।

203

आ. विद्यानंद 'श्लोकवार्तिक' में लिखते हैं अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व यानि 7 कर्म प्रकृति से युक्त परिणाम जो जीव के हैं, वे संक्लेश भाव हैं, संक्लेशी आत्मा भगवत् स्वरूप का आनंद कैसे ले पायेगी ?

हे ज्ञानी ! आपको सर्वज्ञ की आवश्यकता नहीं, आत्मा के परिणामों को सुनने की आवश्यकता है और तू सुन सकता है, तू जान सकता है, तेरी परिणति कैसी चल रही है, संक्लेशी आत्मान्वेषी नहीं हो सकता।

आत्मान्वेषी संक्लेशी नहीं हो सकता। इन्द्रिय सुख भी संक्लेशता है, हास्य भी कषाय है।

(204)

श्रावक के 12 व्रतों का पालन जिस दिन शुरू हो जाता है, उसी दिन समाधि व्रत प्रारंभ हो जाता है। व्रती बनने के लिए व्रती मत बनना। व्रतातीत होने के लिए व्रती बनना। संयमातीत जो होगा, वो संसारातीत होगा। लेकिन जब तक संयम से युक्त नहीं होगा, तब तक समाधि नहीं हो सकती। पण्डित मरण महाव्रती का ही होता है। देशव्रती का बाल-पण्डित होता है। भावलिंगी निर्ग्रन्थ दशा में निर्ग्रन्थ समाधि हो जाये तो 2, 3 अथवा 7 भावों में नियम से सिद्ध बनेगा। इसलिए सारे विकल्प छोड़ दो और अपना आत्मचिन्तन बढ़ाओ।

(205)

कर्मचक्र के चक्र से निज को, आत्मचक्र को भिन्न करना है तो अब सब विकल्प छोड़ दो। समाधि तो साधु के चरणों में ही संभव है। गृहस्थों के बीच में समाधि नहीं होती। समाधि ही समयसार है। 'अप्पा अप्पम्मिरओ' आत्मा को आत्मा में लगा दो, ये ही परम समाधि है। ये ही परम ध्यान है, उपाधि छोड़ देना।

वही 7 तत्त्व, 9 पदार्थ, 6 द्रव्य इनसे हटकर क्या प्रवचन होगा? द्रव्य-गुण-पर्याय के आगे क्या प्रवचन होगा?

विषय, कषाय, भोग, बंध की कथा कोई नहीं सिखाता, अपने आप सीखे होते हैं, पूर्व के संस्कार हैं, त्यागियों को गृहस्थ से दूर रहना चाहिए। जरा सी खटाई टंकी भर दूध को फाड़ देती है।

206

जो चिन्मय चैतन्य आत्मा को कर्म से भिन्न कर ले, उसका नाम ज्ञान है, पहले तेरे ज्ञान में कर्म भिन्न दिखना चाहिए, फिर कर्म भिन्न तेरी तपस्या से होंगे। कर्मबंध अवस्था में भी निज ध्रुव आत्मा को भिन्न समझ लेना, यह ज्ञान का कार्य है, ज्ञान जैसे ही कषायरूप परिणत हुआ, तो वह ज्ञान ही 'अज्ञान' संज्ञा को प्राप्त हो गया। संयम, असंयम, संज्ञा को प्राप्त हो गया। कषाय के आते ही, आस्रव भाव पर दृष्टि है तो आत्मभाव आता ही नहीं।

कषाय का एक कण मात्र भी योगी के संयम की वस्तु का कारण है।

207

कर्मास्रव के कार्य हम कितने कर रहे हैं, ये हमारे ज्ञान का विषय है, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँचों प्रत्यय बंध के हेतु हैं, पाँचों में एक प्रत्यय भी बंध का आलम्बन है। किसी भी कारण को छोटा मत समझना इसलिए जो आस्रवभाव व आत्मभाव - इन दोनों में विशेष अंतर नहीं करता, वह अज्ञानी है। जो आस्रव के कारण हैं, जीव उनको ही आत्मभाव मान बैठा है, गुस्से को स्वभाव कहता है, कमाने को कर्त्तव्य कहता है, परिग्रह को धर्म मानता है।

भाई, तेरे नाना कर्मों के प्रशंसक भी मिल जायेंगे।

208

चारित्र मोहनीय कर्म आज समझ में नहीं आ रहा है, जब उदय में आता है, तब समझ में आता है, संयम धारण करके भी संयमी जीवन नहीं जी पा रहे।

हो क्या गया ? निधत्ति-निकाचितरूप चारित्र मोहनीय का आस्रव किया था। आज उदय में आ रहा है। तत्त्वबोध होने पर भी तत्त्व में प्रवृत्ति नहीं जा रही है। अंतरंग कषाय दिखे न दिखे, तुझे अन्दर ही अन्दर झुलसा रही है, जो वर्तमान में धर्म की क्रिया में संतुष्ट हो रहे हैं, उन्हें सोचना पड़ेगा कि अभी धर्म प्रारंभ नहीं हुआ। पर की आलोचना करना छोड़ो और इस शरीर से ममत्व छोड़ो। यह धर्म पुरुषार्थ प्रारम्भ करो।

209

सम्पूर्ण पापों का मूल उसका नाम शरीर है, तेरे उपयोग की धारा कहाँ है, उस पर ध्यान दो। पवित्र आत्मा कुशील सेवी के साथ नहीं रहती। कुधातु स्वरूप ये शरीर है, इसके संसर्ग में आकर आत्मा पिटती है। भगवत् स्वरूप आत्मा कर्मों के घन से पिट रही है, जो ध्रुव है, उसका यह शरीर स्थान नहीं है, अनियत (देह) के पीछे नियत (आत्मा) को ठगा जा रहा है। क्या यह अच्छी बात है ? आज पंचम काल में जहाँ न तीर्थंकर दिखते, न देव आते, न विद्याधर दिखते, न ऋद्धिधारी, अवधिज्ञानी मुनि दिखते फिर भी अर्हन्त की मुद्रा को धारण किये हैं, यह पंचम काल का चमत्कार है। इसलिए धर्म से जोड़ने का काम करो, तोड़ने का नहीं।

(210)

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्ध होता है, प्रथम गुण-स्थान से भद्र मिथ्यात्व को प्राप्त करके पंचपरमेष्ठी के नजदीक आयेगा। तत्त्वप्रतीति, तत्त्व निर्णय होगा। सत्यार्थ से प्रवेश होगा, जब मिथ्यात्व का विगलन करेगा, तो बाहर आचरण में आयेगा। जो करणलब्धि है, उसे आप क्या मानते हो ? करण यानि परिणाम जिसे हम विशुद्धि कह रहे हैं, अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण परिणाम तो मिथ्यादृष्टि करता है।

पण्डित टोडरमलजी 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ में लिखते हैं - "काललब्धि कोई वस्तु नहीं है, जिस समय कार्य होय, वही काललब्धि होई।"

(211)

क्रियाओं को करने से धर्मध्यान नहीं होता। तेरी आत्मा का अपकार-उपकार तेरे भावों के आधीन है, जिसने अपने दोषों की निंदा, गर्हा नहीं की, प्रतिक्रमण नहीं किया, प्रत्याख्यान नहीं किया, उसका प्रायश्चित्त कोई कार्यकारी नहीं है, भूत के दोष का प्रतिक्रमण है, भविष्य के दोष का प्रत्याख्यान है, जिसके मन में छल-कपट भाव होगा वो प्रायश्चित्त ले ही नहीं सकता। प्रायश्चित्त अंतरंग की शुद्धि के लिए लिया जाता है, चित्त की विशुद्धि के अभाव में सल्लेखना कहाँ ?

(212)

विशुद्धि से शुद्धस्थान की प्राप्ति होती है। अध्यात्म में भी मेरे आत्मा का स्वभाव नहीं है, आत्मा के पास ले जाये, उस विद्या का नाम अध्यात्म है, आत्मा का स्वभाव तो ध्रुव ज्ञायक भाव ही है।

कषाय की मंदता, परिणामों की भद्रता (निर्मलता) यह विशुद्धि की परिभाषा है। आह्लाद गुरुभक्ति का जो अन्दर से आ रहा है। वह आत्मा की विशुद्धि है, जो अन्दर की शान्तानुभूति है। संसार में प्रत्येक जीव स्वसंवेदी भी है, परसंवेदी भी है।

वस्तु जैसी है, वैसा निर्णय लेना 'सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्'। मोह और योग की प्रवृत्ति का नाम गुणस्थान है। बस निहारो कि मेरा मोह और योग किस ओर जा रहा है, कुलिंगी में या सुलिंगी में, पर्याय में या परम में।

(213)

आत्मा का स्वभाव तो परभावों से भिन्न है, परमयोगी को अपना लक्ष्य अपनी ध्रुव भगवान आत्मा दिखती है, वह त्रैकालिक मेरे पास है, तू कहाँ भटक रहा है, इसलिए अपने अन्दर के भगवान को निहारो। 'आत्मस्वभावं परभावभिन्नं' किंचित् भी रागदशा है, वहाँ शुद्धात्मा की प्राप्ति की सम्भावना नहीं है, जहाँ राग होगा, वहाँ नियम से द्वेष भी होगा। परद्रव्यों के राग में तूने आत्मप्रतीति नहीं करी, परिपूर्ण स्वतंत्रता का वेदन हो जाए ये ही समयसार है।

(214)

एकत्व में राग जाता नहीं, नानात्व से राग हटता नहीं। कर्म संबंध के कारण आत्मा रागादिक भाव को प्राप्त हो रही है। रागादिक भाव के कारण कर्म आत्मा में बंध रहे हैं।

कर्म हट जायें, तो रागादिक भाव किसमें होंगे, और रागादिक भाव हट जायें तो कर्म बंध किसमें होंगे? भावकर्म नहीं करेगा तो कर्म का आस्रव नहीं होगा। संवेदना ही जीव का धर्म है। चाहे निगोदिया हो चाहे सिद्ध हो। जगत का प्रत्येक जीव संवेदस्वभावी है, संवेदन यह आत्मा के ज्ञानगुण का ही धर्म है, जो भी प्रत्यक्ष-परोक्ष ज्ञान है, वह संवेद है, स्वसंवेद धर्म स्वाधीन धर्म है, संवेदना का विनाश नहीं होता।

(215)

मैं अनंत, चैतन्य, ज्ञानघन, निजस्वरूप से भिन्न नहीं हूँ, मैं अपने चतुष्टय को कभी नहीं छोड़ूँगा। आत्मा अचल स्वभावी है। आत्मा ज्ञान-दर्शन गुण से युक्त है, आत्म स्वभाव का विनाश नहीं होगा। विभाव दशा अवश्य है फिर भी स्वभाव का नाश नहीं। आत्मा में चलाचल किस बात का? ध्रुव अपरिणामी है आत्मा।

अध्यात्म ज्ञानी तो निजात्म ज्ञान में लवलीन अप्रमत्तदशा में लीन वीतरागी मुनि हैं, चैतन्यधर्म की अपेक्षा से प्रत्येक जीव ज्ञानी है, तू जिस किसी भी पर्याय में जायेगा, ज्ञानी ही रहेगा क्योंकि गुण अचल है।

(216)

जो स्व-पर प्रकाशी भगवान आत्मा है, ज्ञानगुण से मण्डित है, वही धारा ध्यान केन्द्र है, यदि मैं अपने ज्ञानगुण को लाकर पुद्गल पर केन्द्रित करूँ तो चैतन्यगुण को मैंने गौण करके मस्तिष्क पर इकट्ठा कर लिया। तूने अपनी चिद्शक्ति को ललाट पर ग्रहण किया है। पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत, ये मंत्राधर हैं, लेकिन यह सब व्यवहार ध्यान है, जिनबिम्ब या पंचपरमेष्ठी का ध्यान भी व्यवहार ध्यान है, परम ध्यान तो निज ज्ञान को परज्ञेय में ले ही नहीं जायेगा। निज ज्ञान को निज ज्ञाता में ले जाना ये परम ज्ञान है, अव्यक्त चिद्शक्ति को उद्घाटित करने का कोई आलम्बन है तो निज ध्याता का निज ध्यान में लगाना ही है, जहाँ पर आलम्बन को स्थान नहीं है।

(217)

समयसार में निमग्न योगी निज समय को निज समय में लगाता है, वो ही परमयोगी है। आ. शुभचन्द्र 'ज्ञानार्णव' में स्वयं कहते हैं जो आत्म ध्याता है, उसे क्रियाओं में उलझने की आवश्यकता नहीं है, प्रथम अवस्था में चित्त को एकाग्र करने के लिए क्रियाओं का आलम्बन है। वर्तमान में जितने ध्यानकेन्द्र हैं, सब शरीर के केन्द्र हैं, अशरीरी की ओर उनका विचार ही नहीं है, ये निरंजन भगवान आत्मा का ध्यान है, रूपातीत ध्यान से पहले भगवान को जानो।

(218)

इन्द्रियों से राग करने से, आत्मा नरक चली जायेगी। जिसे हमें नष्ट करना चाहिए, कहीं न कहीं हम उसी से जुड़े हैं, कर्म स्वाभिमान भी मानकषाय ही है।

पुण्य का कार्य किया पर सोच वह आत्मा के लिए किया या संसार के लिए, देह के लिए किया। परिवर्तन व्यवहार का तो हो रहा है, भीतर का भी परिवर्तन करो।

धर्म का स्वरूप क्या है ? और लोगों के धर्म में मान्यता क्या है, दोनों में बहुत अन्तर दिखता है, धर्म जिस दिन समझ आ जायेगा, तू परम शान्त हो जायेगा।

दशधर्म आत्मा में त्रैकालिक होते हैं, ये हटे कब, तू ही इनसे हटा है।

(219)

अकषायभाव को धर्म मानो, तब धर्म में जी पाओगे। कषाय अधर्म ही है, धर्मायतनों के निमित्त से कषाय आ रही है, वह अधर्म ही है, सम्यक्त्व का पहला गुण आज्ञ-सम्यक्त्व है। जैसा जिनदेव ने कहा है, वह परिपूर्ण सत्य है, बाद में जानते रहना, श्रद्धान पहले है, सम्यग्दर्शन रहित चारित्र चारित्र नहीं है, अपन को इस पर्याय में अरहंत की पर्याय का संस्कार डाल कर चलना है अपन को अनंत संसारी नहीं बनना है, पंचमकाल में जितना संयम है, उसे निर्दोष पालना तथा सम्यक्त्व में दोष नहीं लगने देना है।

निश्चयधर्म व्यवहारपूर्वक ही प्राप्त होता है।

(220)

हे नाथ ! वे स्व-पर के बैरी हैं, जो एकान्त के आग्रह में रिक्त है, अपने को स्व-पर का मित्र बनकर जाना है, शत्रु बनकर नहीं।

"'समयसार' कह रहा है व्याप्य-व्यापक का संबंध निश्चय से ज्ञान-दर्शन आत्मा का है, पुण्य-पाप का कोई कर्त्ता है तो पुद्गल-जीव का सहयोग ही है, शुद्धात्मा पुण्य-पाप का कर्त्ता नहीं है, सारा लोक आठ अंगुल में लस्त-पस्त हो गया। स्पर्शन और रसना के कारण सब भटक रहे हैं। चींटी (रसना) से लेकर हाथी (स्पर्शन) तक भटक रहे हैं।

(221)

मैं अंग नहीं, मैं संग नहीं, मैं चिदानंद रूप हूँ, मैं इसके अलावा कुछ सुनना भी नहीं चाहता हूँ, सारे जगत के सुख इस सुख के आगे नजर आते नहीं हैं।

जब शुद्ध चिद्रूप को समझेगा, तब न श्री दिखेगी, न स्त्री दिखेगी, न मकान, न दुकान, कुछ नहीं दिखेगा। जो आत्मस्वरूप से भिन्न है, वे सब उन्मत्त हैं, पागल हैं, तेरा परद्रव्य को निज द्रव्य मानने का भूत कब हटेगा? जब व्यवहार से मेरा शरीर ही मेरा नहीं, कब चला जाये? तो भिन्न द्रव्य मेरा कैसे है? विमल, निर्मल, अखण्ड, ध्रुव भगवान आत्मा को चाहता है तो 8 कर्म रूपी परिग्रह है के त्याग करने का पुरुषार्थ कीजिए। ऐसा नहीं चलेगा कि काललब्धि आयेगी, सब हो जायेगा-यह अज्ञानी की भाषा है।

222

'कोई क्या कहेगा' - के पीछे, आत्मा का कितना विनाश हो रहा है, इसका विचार नहीं करता। किसी वस्तु को 'आश्चर्य' से देखना, ये आत्मा का दोष है। 8 दोषों में 'आश्चर्य' नाम का दोष है। 'अष्टसहस्त्री' में लिखते हैं, आ. वक्ता नहीं, अध्येता श्रेष्ठ है (गहन अध्ययन वाला) मूर्तिक धर्म पुद्गल का है, आत्मा न मूर्तिक है, न अमूर्तिक, वह तो चैतन्यभूत है, चैतन्य अर्थात् ज्ञान-दर्शन। इसलिए सारी आत्मा ज्ञानी है।

ज्ञानी ! जो कहा जाये, वह स्वभाव नहीं है, जिसका कहना बंद हो जाये, वही स्वभाव है। मिश्री का गुण कहा जाये मीठा मीठा का क्या गुण नहीं कहा जाये, बस यह स्वभाव।

223

जो यह गुणस्थान है, वे मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं, पर सम्बन्ध से युक्त जो जीव है, उसे अपनी अशुद्ध धातु शुद्ध करना है। पर सम्बन्ध से, स्वभाव का विपर्यास नहीं होता। तेरा न जन्म है न मरण है, न सूतक है, न पातक है।

कर्म/148 प्रकृतियों के मध्य रहते हुए भी मैं एक भी कर्मरूप नहीं हूँ, भोगदशा, रोगदशा, व्याधिदशा, बालदशा, वृद्धदशा - ये पुद्गलजन्य हैं, इसका चिंतन करो, न मैं बाल हूँ, न वृद्ध हूँ, न युवा हूँ, ये सारी दशाएँ पुद्गल की हैं, बाटल में मेरा दूध है, आप कांच को नहीं दूध को देखते हैं, इसी तरह देह में रहती आत्मा को देखना देह को नहीं।

(224)

परमार्थ दृष्टि से देखो तो इन पाँचों इन्द्रियों में आत्मधर्म कहाँ है ? पाँचों ने अपना-अपना रस चखा और तुझे कर्म रस देकर चले गये, पाँचों ने आत्मविषय बनाया कहाँ है, आत्मा अपने अन्दर तड़प रही है।

आप घर में होंगे तो पर के मोह के साधन ही बनोगे और क्या बनोगे ? अज्ञानियों की दशा तो देखो, भक्ति से राग कर लेते हैं, भक्ति तो मोक्ष के लिए करनी चाहिए थी, ये बंध के लिए कर रहे हैं। किसी कार्य की पूर्ति के लिए कर रहे हैं।

जिस सत्य के कहने से दूसरे को दुःख पहुँचे, वह सत्य मार्ग सत्य नहीं है। जिनबिम्ब की भक्ति परम्परा से मोक्ष का कारण है, परन्तु जिनबिम्ब का राग संसार का ही कारण है।

(225)

रत्नत्रय के माध्यम से इस आत्मा को मांजो ताकि विषय भोगों की लगाट निकल जाये। यह प्रयत्न निरन्तर करना होगा। साम्यभाव के लिए ही स्वाध्याय होता है, विषमताएँ सामने आ जायें, वहाँ कहना 'आत्मस्वभावं परभावभिन्नम्' चैतन्य शक्ति को समस्त पदार्थों से भिन्न होकर देखें, प्राणी आस्रवों में लीन होकर कर्मों का बंध करता है, जिसे रागादि भाव का कर्तृत्व भाव है, वह जीव कभी वीतराग भाव को प्राप्त नहीं होता। अज्ञानी जीव कर्मबंध दशा को ही अपना स्वभाव मान बैठा है।

226

हे ज्ञानी ! आत्मनिंदा तो तभी हो चुकी है जब पाप करने का भाव आता है। चित्त की प्रसन्नता तो भाव की निर्दोषता से होता है, संदोषता से नहीं।

संयमी जीवन तथा असंयमी जीवन दोनों पर चिन्तवन करो सुख किसमें हैं ?

लोचन शुद्ध नहीं, स्पष्ट नहीं, पदार्थ स्पष्ट नजर नहीं आते। ज्ञान शुद्ध नहीं, भाव शुद्ध नहीं, कोई भी वस्तु शुभ नजर नहीं आयेगी। ज्ञानियो ! जब निज घर में ही मधुरता नहीं, तब परघर में मधुरता कैसी ?

227

ज्ञानी ! यह जिनशासन है, यह रागियों का नहीं, वीतरागियों का शासन है, यह निर्माण का नहीं निर्वाण का साधन है। यह स्वाहा का नहीं, स्वात्मकल्याण का मार्ग है, यह ममत्व का नहीं समत्वभाव का मार्ग है।

श्वान वमन करके स्वयं ही उसको चाटता है, ज्ञानी संकल्प पूर्वक सब-कुछ छोड़ दिया है, पुनः उसमें लिप्त हो, सोचो तुम क्या हो ?

वीतरागी मुनि न किसी को श्राप देते, न किसी को वरदान देते, नित्य कर्मक्षय के लिए आत्मा में लीन रहते अथवा करुणा भाव से जिनेन्द्र के वचनों का पान कराते हैं।

(228)

इसी शरीर से तू भगवान बन जा, चाहे नारकी बन जा। अलग से कोई शरीर लाना नहीं पड़ता, अलग से कोई परिणाम लाने नहीं पड़ते, बस इतना ध्यान रखना है कि हाथ में तेरे क्या है ?

नमक है या बूरा ? जिनवाणी कहती है कि यदि तू धर्म का पालन करेगा, तो धर्म तेरा पालन करेगा। मुनि के पीछे रोटियाँ घूमती हैं, धनवान घूमते हैं क्योंकि वो धर्म पालन करते हैं तो धर्म उनका पालन करता है।

यह शरीर मल-मूत्र, रक्त का पिण्ड है, फिर भी धर्म के अनुष्ठान का कारण है।

(229)

थोड़े से दुःख नहीं सहता – अनंत दुःख सदा करता।
सच नहीं बोलता – झूठ बोला करता।
ईमानदारी पसंद नहीं – मायाचारी किया करता।
क्रोधवश जलता रहता – क्षमा कर नहीं पाता।
आकुल-व्याकुल रहता – शान्ति से क्रिया नहीं करता।
संतोष धन नहीं चाहिए – तृष्णावश मारा-मारा फिरता।
जो अपना नहीं – उसे अपना मानता।
जिसमें सुख गुण नहीं – उसमें सुख ढूंढ़ा करता।
निज के अवगुण न देख पाया – पर के अवगुण गाया करता।

230

ज्ञानी बनना सरल है, उसको पचाना कठिन है। रत्नत्रय को धारण कर आत्मसिद्धि का लक्ष्य करना ही श्रेष्ठ है।

ख्याति, लाभ, पूजा का त्याग किये बिना, न श्रमण बनना, न श्रावक। जब तक भीतर का बोध नहीं, तबतक आत्मा का शोध नहीं।

यशःकीर्ति की सुगंध, आत्मबोध में, आत्मशोध में बाधक है, हमारे तीर्थंकर आत्मशोध के लिए पर्वतों पर चले जाते थे।

जो जगत से अपरिचित होकर साधना करता है, वह विश्व परिचित स्वतः हो जाता है, वह भगवान बन जाता है।

ज्ञानी! वीतराग भाव में लीन होकर अपनी आत्मा का कल्याण करना ही श्रेष्ठ है। जगत् के सभी प्रपंच आत्मा को कष्ट देने वाले हैं, अतः निज आत्मा में लीन होकर मोक्षमार्ग प्रशस्त करें। जो पाप और आरम्भ में रत हैं, कषाययुक्त हैं, परिग्रह में आसक्त हैं, लोक व्यवहार में बहुत निमग्न है। वह चाहे श्रमण हो या श्रावक, सम्यक्त्व से रहित हैं।

231

भैया एक काम अवश्य करो, एकान्त में बैठकर जिनवर को याद कर, कम से कम सत्य को देखना तो आरम्भ करो। भो ज्ञानी, तेरे परिणामों में जो कषाय चल रही है, उसको दूर करने के लिए भगवान नहीं आयेंगे और इसके लिए न ही तुझे भगवान के पास जाने की जरूरत नहीं, तुम्हें अपने पुरुषार्थ से ही दूर करना होगा।

(232)

आठ प्रकार के कर्म महापरिग्रह हैं, इन आठ प्रकार के परिग्रह से आत्मा की रक्षा करने के लिए मुनिराज चौबीस प्रकार के परिग्रह का त्याग करते हैं, संयम लेने का उद्देश्य आठ कर्मों से छूटना है। यदि अंतरंग-बहिरंग परिग्रह छोड़ने के बाद भी इन आठ कर्मों की तरफ दृष्टि नहीं है, तो उसकी साधना, देहचर्या मात्र है, सबसे ज्यादा पुरुषार्थ अविरत सम्यग्दृष्टि को करना है, उसे देशव्रत के लिए, महाव्रत के लिए पुरुषार्थ करना है।

यदि जीव के मन में कर्म-कालिमा को भेदने का उद्देश्य है, तब तो वह व्रती है, अन्यथा सूखा व्रती है।

(233)

कार्य कारण नहीं होता। जो कार्य को करने में सहकारी होता है, वह कारण होता है, अनीति, अनाचार, अभक्ष्य और द्रव्य मिथ्यात्व का त्याग किये बिना व्यवहार सम्यक्त्व भी नहीं होगा। व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, चारित्र से ही संवर होता है, इस पर्याय में हमें मात्र वीतराग वाणी पर दृष्टि रखना है और कहीं नहीं भटकना है। जितने एकान्त भरे हैं, सब मिथ्यादृष्टि हैं, किसी से राग मत करो, द्वेष मत करो, बैर मत करो, बात मत करो, स्थिर हो जाओ। ध्यान की सिद्धि चाहते हो तो।

234

हे ज्ञानी! तू तो निज ज्ञाता मात्र को ज्ञेय बनाकर जान लेता, तो जगत में किसी को जानने की आवश्यकता नहीं थी। जाननहार को नहीं जाना, परज्ञेयों को जानने में ही तूने सारा पुरुषार्थ, सारा जीवन लगा दिया।

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व दोनों सत्ता को समझना होगा। समझ कर मिथ्यात्व हेय है। सम्यक्त्व उपादेय कहना है राग है बहिरंग में कैसे विकास हो अंतरंग में। तू जो बहिरंग है, उसमें लगा है, इसलिए तेरे पास अंतरंग नहीं है। अंतरंग नहीं तो अन्तरात्मा नहीं है, अंतरात्मा नहीं, इसलिए परमात्मा नहीं है।

235

148 कर्म प्रकृतियाँ को छोड़ने का उपाय अंतरंग-बहिरंग तप है, अंतरंग-बहिरंग चारित्र पालने से जो प्रगट होगा, वह अंतरंग का समयसार है। 'समयसार' ग्रंथ आत्मा के स्वरूप का व्याख्यान है प्राप्ति का उपाय 'मूलाचार', 'नियमसार', 'प्रवचनसार' है, श्रुत से भी यदि भगवान आत्मा को जानने लगोगे, तो वह भी तुम्हें आनंद देगा। यदि मनुष्य जन्म में, जैनदर्शन पाकर, आत्मा के स्वरूप को, द्रव्यस्वरूप को न जान पाये तो इस मनुष्य पर्याय का कोई अर्थ नहीं, कोई सार्थकता नहीं हुई।

236

जो निजी द्रव्य को निजद्रव्य, पर द्रव्य को परद्रव्य स्वीकारते वह ज्ञानी। इसके विपरीत अज्ञानी है, जीव और पुद्गल (देह) दो द्रव्य है, जिसमें क्रियावर्ती शक्ति है, जीव अपनी क्रियावर्ती शक्ति और पुद्गल अपनी क्रियावर्ती शक्ति से गमन करता है, न आत्मा शरीर को चलाता है और न शरीर आत्मा को चलाता है। हे जीव, तेरी क्रियावर्ती शक्ति स्वतंत्र है, पुद्गल भी स्वतंत्र है फिर भी एक-दूसरे से परतंत्र है, कर्म के सहयोग से आत्मा में नाना रूपत्व हैं, आत्मा से कर्म मिट्टी अलग हो जाए, तो आत्मा सिद्ध रूप है, इसका लोक में गमन कर्म संयोग से है।

237

तत्त्व दृष्टि तो तटस्थ दृष्टि है। एकांत में बहने वाला कभी तत्त्व को नहीं समझ सकता। मध्यस्थ जीव भी तत्त्व को समझ सकता है, सत्य को जान लेना सरल है, पर स्वीकारना महान कठिन है। किसी भी पक्ष में बैठे होंगे तो समाधि संभव नहीं है, मोक्ष तो दूर की बात है। आचार्यों का जो चिंतन है, उसके अनुसार तू अपना चिन्तन बना, दूसरे के चिन्तन को स्वीकार मत कर। संयम के पालन में संहनन का विषय है श्रद्धा के पालन में संहनन की आवश्यकता नहीं है।

(238)

हे मुमुक्षु! 'मूर्च्छा परिग्रह' है तो क्या वस्तु को रखे रहेंगे। कहेंगे मूर्च्छा नहीं है, तू मायाचारी कर रहा है। यदि मूर्च्छा नहीं है तो संचय किस बात का। राग नहीं है तो संग्रह किस बात का। कारण का कारण भी त्यागने योग्य है।

नारी अब्रह्म नहीं है, परन्तु नर के लिए अब्रह्म सेवन का साधन है इसलिए वह भी अब्रह्म भाव है, पेन हाथ में लिए है, बिना राग के नहीं। घर में परिवार के साथ है, दुकान में व्यापार के साथ है, बिना राग के नहीं, बिना कषाय के नहीं। इन्द्रिय सुखों में संक्लेशता होती ही होती है। इसलिए इन्द्रिय सुखों को छोड़ना ही पड़ेगा।

(239)

आत्मा को कर्मातीत करना है तो संसार के सारे सम्बन्धों को अस्वीकार करना होगा। धर्म का राग जब बंध का कारण है तो संसार राग बंध का कारण नहीं है? कर्म के बिना संसार किसी का चलता नहीं है, आत्मा के प्रदेशों में कर्म का संश्लेष सम्बन्ध है।

जब अंतरंग की विशुद्धि का जागरण होता है तो बाहर के सारे वैभव फीके हो जाते हैं।

ऐसे खोटे काल में परिणाम - सब कुछ छोड़ने को तैयार हो जाये, वे भाव वंदनीय हैं, ऐसे भाव बने रहें, ये ही भावलिंग है, ऐसे भाव न जायें - चाहे भव चला जाये।

(240)

कर्म के अनुसार चलना ही पड़ेगा, इस भ्रम को निकाल देना। हम अपने निज पुरुषार्थ से कर्मों को भी परिवर्तित कर सकते हैं (राजा श्रेणिक) अन्यथा मोक्षमार्ग बंद हो जाएगा। हम कर्म को एकांत से मानते हैं आत्मा भाव और आस्रव भाव में जो भेद करके निहारता है, साम्यभाव में रहता है, उतने काल जीव ज्ञानी है और जितने काल क्रम आस्रव पर सुखी-दु:खी होता है, उतने काल जीव अज्ञानी है, इस लोक में आस्रव को जानते हुए भी सारे प्राणी आस्रव में लीन हैं, सात प्रवृत्तियों का जिसने क्षयोपशम तथा क्षय किया वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है, वीतरागचरित्र के अभिनाभावी जो है, वह निश्चय से सम्यक्चारित्र है।

(241)

यदि निर्बन्ध होना है तो आज से पर के कर्तव्य को विराम दे दो। आप सोचते हैं कि आपके बिना आपका कार्य, दुकान, घर नहीं चलेगा। यह रागियों की भाषा है ज्ञान मात्र से संबंध का निरोध हो जाता है, पोथियों के ज्ञान से नहीं, गुप्ति, समिति को प्राप्त करके आस्रव की अशुचिता को जिसने जान लिया है उस ज्ञान से - एक बात ध्यान में रखना ये आस्रव - 1. अशुचिमय है , 2. विपरीत है, 3. दुख का मूल कारण है आस्रव किससे हो रहा है ऐसा जानकर उससे बचना।

(242)

जान लिया जिन्होंने आस्रव की अशुचिता को इसके विपरीतपने को, ऐसा जीव निवृत्त हो जाता है आस्रव से। आज पल-पल की क्रिया में ध्यान रखना आस्रव किससे हो रहा है। ऐसा जानकर उससे बचना। उठते-बैठते, खाते-पीते चलते-फिरते हर क्रिया में अपना विवेक लगाना, कोई हिंसा तो नहीं हो रही, अपने परिणामों की गहराई से परीक्षा करना, किस परिणाम से पाप बंध हो रहा है, आस्रव के कारणों को हटाना। बाहरी प्रपंच आत्मा का स्वभाव नहीं है कषाय, मिथ्यात्व, प्रमाद, योग, आस्रव, बंध के कारण हैं।

(243)

पुण्य आता है, जाता है, पाप आता है, जाता है, वह तेरे नहीं है पुण्य-पाप से रहित आत्मा है, परमात्मा है। जिन क्रियाओं को तू धर्म कह रहा है वह धर्म नहीं है, धर्म के साधन हैं मंदिर भी, मूर्ति भी, सब धर्म के साधन हैं धर्म तो आत्मा का स्वभाव है रत्नत्रय धर्म है।

जो इन्द्रिय का स्वाद लेते-लेते ग्रंथ का स्वाद लेना चाहते हैं, वह भ्रमित ही रहेगा- कठिन 'करना' नहीं कठिन- 'कुछ नहीं करना' है, बिना किए व्यक्ति रह नहीं सकता। आज से अभ्यास करो खाली बैठने का, खाली बैठकर खाली रखने का।

(244)

सारा जगत कहता है मन को वश में करो। आचार्य उमास्वामी कह रहे हैं 'काय वाङ्मनः कर्मयोगः' पहले काय योग, वचन योग, फिर मन योग। सामायिक में पहले काय स्थिर, फिर मौन, फिर मन को स्थिर करो।

ज्ञान की दो धाराओं का चिंतन करना होगा – ज्ञान शक्ति, वैराग्य शक्ति। वैराग्य शक्ति से युक्त तो ज्ञान धारा है, वही आत्मा का हित करा सकती है, भोगों के कषायभावों के आते ही, उसे ज्ञेय बना लेना और उसे हेय कर देना, ऐसा ज्ञान मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत है, जो ज्ञान मोह से दूषित है, राग से दूषित है, मिथ्या से दूषित है, ऐसा ज्ञान अज्ञान है जो ज्ञान वैराग्य से संपन्न हैं, भेदविज्ञान की ओर ले जाने वाला है, जिस ज्ञान से चारित्र में प्रसन्नता आ रही है, जिस ज्ञान से मिथ्यात्व मुरझा रहा है संयम मुस्कुरा रहा है, ऐसा ज्ञान-ज्ञान है।

(245)

पूरे जीवन प्राणी देह को संभालता है, उसकी खुशी पूरी करता है, उसी के लिए जीता और मरता है, पूरा जीवन उसको सुखी बनाने में समाप्त हो जाता, क्या वो देह है यदि है तो देह के समाप्त होने पर, वह भी खत्म हो गया – नहीं ? वह चेतन है, अमर है मरता नहीं।

246

जब तक भोग नहीं रुकेंगे तब तक भव रुकने वाला नहीं है। भव रोकना है तो भावों को रोको। पुण्य से स्वर्ग जाना मुश्किल नहीं, सम्यक् सहित नरक जाना विशेषता रखता है। निज के स्वार्थ में की गई मायाचारी प्रभु के द्वार पर नष्ट हो जाएगी, प्रभु के द्वार पर की गई मायाचारी कहाँ पर धोओगे। आत्मा का ज्ञान ग्रन्थ रूप नहीं है मन में कषाय की गांठ का अभाव होना, ये ही आत्मा का ज्ञान है आत्म विशुद्धि ही भावश्रुत है। गृहस्थ के लिए शुद्धोपयोग नही हैं, शुद्धोपयोग की भावना बंध सकती है। ध्यान और अनुप्रेक्षा में अंतर है।

247

'ध्यान' का अर्थ जपमाला नहीं है चित्त की एकाग्रता, चित्त के निरोध को स्वीकारा है बिना सम्यक्त्वाचरण चरित्र के सम्यग्दर्शन होता नहीं है। 25 दोषों रहित समिति का पालन कर रहा है - पहले व्यवहार में देखिए। वह भोगते हुए उसकी श्रद्धा-ज्ञान में होगा, नियम से यह मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य ये सम्यक्त्व के लक्षण उसमें नियम से होने चाहिए। दया क्रिया है अनुकंपा परिणति। दया क्रिया मिथ्यादृष्टि के भी होती है बहिरंग अच्छाइयों को देखकर कभी मिथ्यात्व की प्रशंसा मत करना अन्यथा सम्यक्त्व तेरा डूब जाएगा।

248

आत्मा अपने निज ज्ञान से जिन-जिन द्रव्यों को जान रही है, वह अनुभूति ले रही है। इन्द्रिय और मन को गौण करके हम देखेंगे, तो प्रत्यक्ष अनुभूति है, चाहे स्व का वेदन करे, चाहे पर का वेदन करे, अनुभूति प्रत्यक्ष है, स्व का वेदन होगा, तो स्व अनुभूति है, पर का वेदन होगा तो पर अनुभूति है क्योंकि ज्ञान का लक्षण स्व-पर प्रकाशी है। अनुभूति प्रत्यक्ष ही होती है। आत्मा इन्द्रियों को जान रही है, इन्दियाँ तो जड़ है, जाननहारा तो चेतन भगवान आत्मा है, आंखें नहीं देख रही हैं, आत्मा आंखों से देख रही है, भोगों के भोगने से बंध होता है, भोगों की भावना से भी बंध होता है।

249

आगम की भाषा में जब तक संक्लेशता की हानि नहीं होगी, तब तक निर्मल आत्मानुभूति नहीं होगी। तब तक शुद्ध शुद्धात्मानुभूति नहीं होगी। कषाय की मंदता से विशुद्धि प्रारंभ होती है यानि प्रथम गुणस्थान से तभी चतुर्थ गुणस्थान बनेगा।

जब भद्र मिथ्यादृष्टि के तत्त्वज्ञान, तत्त्वनिर्णय, तत्त्वप्रतीति होगी, तब सम्यग्दर्शन होगा, फिर सम्यग्ज्ञान होगा (युगपत) सम्यग्दर्शन ज्ञान होने पर विशुद्धि बढ़ेगी और सम्यक्चारित्र होगा।

(250)

जिसका पुण्य क्षीण हो जाए ,उसके विचार भी नष्ट हो जाते हैं समयसार या श्रावकाचार हो तभी समझ आएगा, जब तेरा पुण्य होगा। पुण्य विलीन हो गया तो कितना भी समझाओ, समझ नहीं आता, 18000 रानियों के नाथ, अर्धचक्री स्त्री को हर कर ले आए, पुण्य क्षीण हो गया, कितना भी समझाया, समझ नहीं आया। संसार के राग में, ज्ञान का विवेक क्यूँ खो रहा है, कषाय की तीव्रता में कोई पांडित्य समझ में नहीं आता। दुनियां में अरबों प्राणी हैं, कितने प्राणी को सत्य जिनवाणी सुनने का पुण्य मिला है।

(251)

अरे ! कर्म विपाक के अनुसार जीवन चलेगा तो संयम, तप, त्याग का क्या होगा ? कर्म का उदय तो होता रहता है पर हमारे पुरुषार्थ का भी एक बड़ा योग है, पुरुषार्थ से जो कर्म का टलना है उसी का नाम संयम है कोई कर्म को पकड़े हैं कोई काललब्धि को पकड़े हैं। अरे भाई, उस पुरुषार्थ को पकड़ो, जिससे मुक्ति प्राप्त होती है, कर्म के अनुसार ही चलना पड़े तो चक्रवर्ती कभी मुनि नहीं बनेगा और कोई मुक्ति को प्राप्त नहीं होगा। ये ठीक है कि कर्म की तीव्रता में जीव का पुरुषार्थ नहीं चलता, लेकिन कर्म के मंदोदय में जीव अपने पुरुषार्थ से कर्म के विपरीत कार्य कर सकता है क्योंकि जीव के पुरुषार्थ सत्ता स्वतंत्र है।

252

आस्त्रव नहीं रुक रहा तो बंध तो होगा ही। जैसा आस्त्रव होगा वैसा बंध वैसा उसका उदय होगा। बंध से डर लगता है तो आत्मभाव, आस्त्रवभाव पर एकाग्र दृष्टि करो। सामने खड़े निमित्तों को देख क्या निर्मल भाव रहे ? उनसे अप्रभावित रहा ? नहीं, तेरे निज चैतन्य में राग-द्वेष के भाव उत्पन्न हो रहे हैं, अंतरंग निमित्त है, वह वास्तव में कौनसी वस्तु है संसार के लिए तो राग-द्वेष है, सिद्ध बनने के लिए शुद्ध भाव है जो अंतरंग निमित्त है वास्तव में वह उपादान की योग्यता ही है जो बहिरंग निमित्त है वह बाहरी सहकारी कारण है।

253

अति हंसना भी पाप का उदय है, जितना प्रशस्त पुरुष होगा वह सहज होगा। विपरीतता का पोषण करके हम अनंत पर्याय भटक चुके हैं, अब नहीं करना। समयसार पढ़ रहा है तो सबसे पहले अपनी लोभ पर्याय पर दृष्टि डाल। कषाय पर्याय अज्ञान भाव है, कषाय विभाव है कषाय विकार है। अपने स्वरूप का होना, उसका नाम है स्वभाव। स्वभाव किसी के द्वारा दिया नहीं जाता, किसी से लिया नहीं जाता, स्वभाव तो होता है जैसे अग्नि की उष्णता, पानी की शीतलता।

254

आकिंचन्य को धर्म कहनेवाला कोई है तो मात्र दिगम्बर आम्नाय श्रमण संस्कृति है, श्रावक की चर्या श्रावक को शोभा देती है और मुनि की चर्या मुनि को शोभा देती है, भजन संगीत से मुनि को दूर रहना चाहिए। अनंत भव तो निकाल दिये, दूसरों के दुःख-सुख सुनते-सुनते। लोक चाह से दूर रहना होगा। वर्ग, गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, संयम, लब्धिस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान का जो वर्णन किया है, व्यवहारनय से वह जीव स्वरूप है, यदि इसे नहीं मानोगे तो सम्पूर्ण मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ समाप्त हो जायेगा और प्राणी निश्चयाभासी हो जायेगा।

255

जिस जीव को तत्त्व के प्रति संतुष्टि नहीं है, उसके अन्दर प्रतीति हो ही नहीं सकती। जहाँ प्रतीति नहीं, वहाँ सम्यक् श्रद्धानुभूति भी नहीं है, आज कोई भी जीव आगम में वर्तमान के विज्ञान को 'माना कि, ताना कि' लगाता है वह न लगाये। आगम में संभावना की कोई जगह नहीं है, वहाँ निर्णय करके बोलते हैं, जो मिश्र में अमिश्र को देखे वह सम्यग्दृष्टि है, हंस पानी में दूध को अलग देखता है, तो अलग करता है।

256

जो कर्म है, वह कर्म है पूर्व कर्म उदय में आया, वर्तमान कर्मों को फल दे रहा है उसके बीच में जीवद्रव्य है, पूर्व कर्म उदय में है वर्तमान नोकर्म भोग रहा है, इन दोनों के बीच में तू है कर्म विपाक। आना पराधीन है पर कर्म विपाक पर हर्ष-विषाद करना नहीं करना स्वाधीन है, जो कर्मोदय का काल मेरे सामने चल रहा है, इसमें स्वात्म दुखी-सुखी होकर सहन करूँ तो नवीन बंध करूँ, यदि ज्ञान से, समझकर विवेक से सहन करूँ तो निर्बन्ध हो रहा हूँ। कर्म का उदय भोगना ही पड़ेगा ये निश्चित नहीं है, थाली भोजन की आई पुण्य से, उसे खाना अनिवार्य नहीं कह दिया आज मेरा त्याग है।

257

तंत्र-मंत्र से कभी सिद्धि नहीं होगी। लेकिन हमारे यहाँ मंत्र का निषेध नहीं है। परिणामों की परिणति से पुण्य-पाप आस्रव होता है शुभोपयोग, अशुभोपयोग, शुद्धोपयोग में आत्मा की सहज दशा नहीं है, ये भी आत्मा की सोपाधिक दशाएँ हैं, आत्मा की सहज दशा तो उपयोगातीत है। मोक्ष भी तेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है, आत्मा का स्वभाव तो केवल ज्ञान-दर्शन है, बोलना सोपाधिक पुद्गल का धर्म है, बिना संयम के सल्लेखना होती नहीं है।

(258)

बाहरी प्रपंचों, व्यवस्थाओं में चंचलता बढ़ती है, वह त्यागी के अंदर किंचित् भी शोभा नहीं देती। जिसके कर्ता, कर्म प्रवृत्ति की निवृत्ति हो जाती है, उसका अनादि का मिथ्यात्व गया। आत्मभाव व आश्रम भाव में भेद देखने लग जाए तो अनादि का अज्ञान गया। क्रोध-अज्ञान, मान, माया, लोभ-अज्ञान, इन अज्ञानों को जो छोड़ेगा, वह ज्ञानी है मात्र ग्रंथ का ज्ञानी नहीं बनना। प्राणी जब तक आस्रव भाव का अभाव नहीं कर रहा है, वह अज्ञानी है जितना अंतरंग कालुष है वह जीव के द्वारा स्वयं ही उत्पादित किया जा रहा है।

(259)

प्राणी का निज स्वतंत्रता में लक्ष्य नहीं है, सब कर्म की विचित्रता है - ऐसा कहकर संतुष्ट हो जाते हैं।

जैन कुल में जन्म लेकर कर्म को अपना कर्ता मान बैठा है, जैसे ईश्वरवादी ने ईश्वर को अपना कर्ता मान लिया है। ये बात एकाकी है, प्रतिदिन दिन में चार बार भोजन करते हैं, पानी पाँच बार पीते हैं चाय, ठंडा, काफी, शरबत, कोका कोला - ये भी दिन में कई बार ले लेते हैं। पर्यूषण पर्व में एक बार केवल भोजन किया, एक दिन नहीं, 10 दिन तक किया, पानी पिया ही नहीं, क्या उस समय आपका क्षुधा वेदनीय कर्म नष्ट हो गया था ? ऐसा मत कहो कर्म का उदय है हमें करना पड़ता है भूख लगने पर भी, उपवास करते हो तो कर्म का कार्य कहाँ गया।

(260)

चौथे गुणस्थान में जो संवर है, उसमें परिपूर्ण मोक्षमार्ग मान बैठे और संतुष्ट हो गए, वह उपचार मोक्षमार्ग है। छठा गुणस्थानवर्ती जीव ही मोक्षमार्गी है, अविरत सम्यग्दृष्टि जीव निर्जरा स्थान पर अवश्य है, लेकिन इस निर्जरा से मोक्ष नहीं है, इस निर्जरा से मोक्षमार्ग आरंभ है, पूज्यपादजी कहते हैं, जो सम्यग्दृष्टि होता है, वह भोगों को रोग के उपचार की भाँति सेवन करता है, मस्ती से भोगता हो, वह अविरत सम्यग्दृष्टि नहीं है सिद्ध भगवान कर्मों से मुक्त है लेकिन गुणों से मुक्त नहीं हैं ऋजु परिणामी मिथ्यादृष्टि भी पसंद है वक्र परिणामी सम्यग्दृष्टि होता ही नहीं।

(261)

सोपाधिक दशा को जब तक स्वीकार नहीं करोगे, तब तक समयसार का भेदविज्ञान जगेगा नहीं (शरीर में मैं हूँ पर शरीर से भिन्न हूँ) उसके बिना ज्ञानी नहीं। जो सोपाधिक वस्तु है सब अशुद्ध है। याद रखना अंतरंग का राग यदि घट रहा है तो बहिरंग पदार्थों का त्याग नियम से होगा। पुण्य के, पाप के फलों को आता-जाता देख लेना, पर उन्हें कभी भी अपना मत मानना, ना दुखी होना, ना सुखी हो ना, तो तुम ज्ञानी हो, वरना अज्ञानी हो, ज्ञान निरुपाधिक है, क्रोध सोपाधिक है, ज्ञान को लाया नहीं जाता, क्रोध को लाया जाता है, क्रोध आता-जाता है, कषाय सोपाधिक भाव है क्रोधी ज्ञानी नहीं होता, ज्ञानी क्रोधी नहीं होता।

(262)

जितना पुरुषार्थ गर्भाधान के काल में माँ को नहीं करना पड़ता, उससे कोटि पुरुषार्थ अंदर के शिशु के गर्भ के संरक्षण में करना पड़ता है किसान बीज एक दिन में बो देता है उसकी रक्षा में कितने दिन लग जाते हैं। पुरुषार्थ द्रव्यभूत चरणानुयोग से पालन में नहीं करना पड़ता, उससे कोटि-कोटि गुना पुरुषार्थ अंदर के चरणानुयोग में करना पड़ता है। देहजन्य चारित्र को संभालने के लिए परिणाम कितने संभालने पड़ेंगे। अंदर संभालिए - उपशमभाव, भद्र परिणाम, प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य आदि।

(263)

अपने ही परिणामों को अपने ही ज्ञान से अपना ही ज्ञेय बना करके, अपने ही ज्ञाता बनकर अपने को ही समझाने बैठ जाओ, इसका नाम ज्ञानी है परिणाम विषयों में, कषाय में जा रहे थे तटस्थ होकर देखो, विचार करो, इनसे मेरी गति क्या होगी ? अमुक जीव की ऐसी प्रवृत्ति से, ऐसी दुर्गति हुई थी संभालों अपने आपको ब्रेक लगा दो। आत्म कल्याण का विषय श्रुतज्ञान का विषय, श्रुत ज्ञान का विषय है देह की तपस्या की अपेक्षा ध्यान से कर्म की निर्जरा अधिक होती है। एकाग्रता का नाम ध्यान है चित्त के निरोध का नाम ध्यान है साँतवाँ नरक आर्त्तध्यान से नहीं रौद्र ध्यान से मिलता है।

264

आश्चर्य ! देखो, राग-द्वेष छूटेगा, तब भगवान बनेगा। जो इतना प्रबल शत्रु हो कि मेरी भगवत् शक्ति को छीन रहा हो, ऐसे शत्रु को हम कितने दुलार से, समभाव से पुचकार कर अपने साथ रखते हैं। ससुराल गये आप, आपको सम्मान का राग था, आपका सम्मान उतना नहीं हुआ, द्वेष आ गया। आपने भावकर्म को जन्म दे दिया और भावकर्म द्रव्यकर्म को जन्म दे दिया और जैसे ही द्रव्यकर्म का बंध हुआ, संसार की संतति में वृद्धि हो गई है, राग-द्वेष तुझे पकड़ता नहीं है, तू राग-द्वेष को करता है।

265

विषय-कषाय राग है, उस राग के लिए तुम कितने राग खडे कर रहे हो, जिसमें किंचित् भी कर्तृत्वभाव होगा, तो राग भी होगा, उसे तू टाल नहीं पाएगा। पंचम काल का श्रावक 8वें स्वर्ग तक ही जा सकता है। परिग्रह (धन) तो लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से मिला द्रव्य है, बिना भावश्रुत के किसी को भी शुक्लध्यान नहीं होता।

विद्या का फल है विनय और विनय का फल है मोक्ष 'विणओ मोक्खद्वार' विनय मोक्ष का द्वार है। आ. वट्टकेर स्वामी के यह वचन हैं 'मूलाचार' में, प्रपंचों तथा ग्रंथों से मोक्ष नहीं मोक्ष शान्त स्वभाव में।

(266)

हे योगी तू जितेंद्रिय है, स्पर्श आदि इन्द्रियों का भोग हो रहा है। हे भोगी ! द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय दोनों संतान को तुम्हें संभालना होगा यहाँ यह नहीं चलता भाव विशुद्ध है -द्रव्य चलने दो।

भावों की जिसकी विशुद्धि है, द्रव्य शुद्धि उसकी नियम से होगी। द्रव्य नष्ट हो जाए, दिव्य दृष्टि का व्याख्यान नष्ट न हो पाए। सोच में शुचिता आ गई तो परम ब्रह्म को एक दिन प्राप्त कर लेगा। पंचपरमेष्ठी का ध्यान तब छोड़ना, जब तू निज ज्ञायक स्वभाव में चला जाए।

(267)

परमेष्ठी को छोड़ बैठा, पाप छोड़ने नहीं पाया, नरक चला जाएगा। गहन तत्त्व को जानने वाला भी, व्रतों से डगमगा जाए, स्थलित हो जाए तो सारा ज्ञान थोथा है। नियम लेने में हिचकिचाहट हो रही, सारा ज्ञान थोथा है तत्त्व की गहराई को जानता तो उसकी गहराई में डूब जाता और संसार को भूल जाता, निज ही निज भाता फिर गृहस्थ में कैसे रह पाता ? समझ भिन्न विषय है ज्ञान भिन्न विषय है सब ऊपर का ज्ञान चल रहा है, ज्ञान की धारा निज चैतन्य की मृदुभूमि में पड़ जाए तो वैराग्य, वीतरागता की फसल प्रारंभ हो जाए।

(268)

जो 84 लाख योनियाँ, ये जीवद्रव्य का विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है और सिद्ध पर्याय जीवद्रव्य की स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय हैं।

आचार्य वीरसेन स्वामी ने धवला जी की पहली पुस्तक में लिखा है – विभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय भी उपादेय है क्योंकि विभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय की सत्ता में ही मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ होता है।

(269)

गलती हो रही है ? कहीं कोई निमित्त साध्य ही मान रहा है, कोई उपादान साध्य ही मान रहा है, कोई पुरुषार्थ साध्य ही मान रहा है।

आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने तीनों को मिथ्यादृष्टि घोषित किया क्यों 'एकांत नया मिथ्या' जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्रत्यांशक्ति का व्याख्यान नहीं करते, वे तत्त्व की निर्मल व्याख्या कभी नहीं कर पाएंगे।

(270)

द्रव्य दृष्टि बराबर होने पर भी जब तक पर्याय में नहीं आएगा, तब तक तद्रूप परिणति नहीं बनेगी। जीव द्रव्य निगोदिया में भी द्रव्य दृष्टि से भगवान हैं, लेकिन जब तक पर्याय दृष्टि में नहीं आएगा, तब तक सिद्ध की अनुभूति को प्राप्त नहीं हो सकेगा। यही तत्त्व का मूल है।

(271)

पर के दु:ख में दुखी मत होना, दया करना, सहायता करना, सेवा करना और अपने सुख को देखकर सुखी मत होना, वह धर्मात्मा है।

एक व्यक्ति को कैंसर हुआ, उसके घर में पुत्र-पत्नी सब रोने लगे। वह व्यक्ति बोला, मुझे एक कमरा दे दो, उसमें कोई नहीं आये, मंदिर में कोई त्यागी आए तो मेरे कमरे पर ले आना। एक दिन उनके कमरे पर त्यागी आये उनकी हालत देखकर व्याकुल होकर रोने लगे। वह व्यक्ति बोला आप यहाँ से चले जाएं, मैंने तो आपको तत्त्वचर्चा के लिए, समयसार सुनने के लिए बुलाया था - सच्ची घटना

(272)

एक कुत्ता खड़ा है, एक मनुष्य खड़ा है, ये दोनों जीव द्रव्य हैं न, लेकिन दोनों में अंतर झलक रहा है, एक के अंदर भद्रता है, दूसरे में क्रूरता है दिख रही है, यह अंतर क्यों है, जीवद्रव्य की पर्याय की प्रत्याशक्ति पर ध्यान देना होगा। कुत्ता मनुष्य की अनुभूति नहीं कर सकता, मनुष्य कुत्ते की अनुभूति नहीं कर सकता।

जो जीव जिस पर्याय में होता है, उस पर्याय की प्रत्याशक्ति के कारण, उस जीव के परिणाम व प्रवृत्ति वैसी होती है, ध्यान प्राप्य का नहीं है, अप्राप्य का होता है, प्राप्य की तो अनुभूति होती है।

(273)

शरीर का उत्पाद–व्यय और आत्मा का उत्पाद–व्यय युगपद चल रहा है, फिर भी भिन्न–भिन्न है, निहारिये मैं जीव द्रव्य हूँ। शरीर शरीर है, ज्ञानी इस शरीर में परिणामन हो रहा है कभी बालक था, कभी किशोर, कभी जवान। शरीर का परिणमन भिन्न है, अंतरंग में भावों में परिणमन चल रहा है, मेरा गुण ज्ञान ज्ञान है, तेरे परिणामों का परिणमन तेरे हाथ में है, पर तेरी पर्याय का परिणामन तेरे हाथ में नहीं है, शरीर में परिणमन, तेरे हाथ में नहीं। शुभ से अशुभ, अशुभ से शुभभावों पर हमारा पुरुषार्थ चलता है। आचार्य जयसेन समझा रहे है न सचित परिग्रह, न अचित्त परिग्रह, न मिश्र परिग्रह कुछ काम नहीं आएगा। राग ही कर पाएगा, बस बंद होकर पाएगा, वर्तमान में पूर्व पुण्य दिख रहा है, यहाँ से जाएगा तो सब छोड़कर ही जाएगा। भगवंत आत्मा हाथों में कुछ नहीं ली जाती पर पुण्य–पाप की वर्गणायें ले जाएंगे। आज जो मेरे दिख रहे हैं, भविष्य में यह मेरे हो या न हो, लेकिन उनसे पापास्त्रव तो हो रहा है, उसका भोग तो तुझे ही करना होगा, जैसे पाप साथ जाता है, वैसे पुण्य भी साथ जाता है।

(274)

एक संसारी संसार के कार्य करता है। एक संसारी समाज के धर्म के कार्य करता हैं। एक पाप कामाता है। एक पुण्य कमाता है। लेकिन दोनों ही संसार भ्रमण करते हैं दोनों ही अज्ञानी है दोनों ही रागी हैं।

275

व्यवहार नय से की गई नाभिराय के पुत्र आदिनाथ भगवान की भक्ति भी निश्चय की ओर ले जाती है। अरिहंत की भक्ति करना, शरीर पकड़कर मत बैठ जाना, प्रतिमा पकड़कर मत बैठ जाना, प्रति भगवान की पूजा करना – यह भी समयसार है निज स्वभाव में लीनता अद्वैत भाव है। जिसे जाना नहीं, उसे जानने का नाम समयसार है, परंपरा से तीर्थंकर की पूजा होती है, वह परंपरा कौन सी है, जिससे भगवान बनते हैं, उसका नाम शुद्ध आत्मा की वंदना।

276

बड़े बाबा, छोटे बाबा भेद कर डाले। भेद पर ही दृष्टि जाती है अभेद पर क्यों नहीं जाती? सम्यग्दृष्टि भगवान की पूजा करने अशुभ से बचने जाता है, अमुक भगवान का मंदिर है यह नहीं देखता। प्रथम अवस्था में व्यवहार स्तुति करनी होगी। सत्यता देखो – पात्र तप रहा है कि दूध तप रहा है पात्र पात्र रूप तप रहा है, दूध दूध रूप तप रहा है मुनि को शरीर तपाना पड़ता है फिर कषाय को क्षीण करना पड़ता है वो ही आत्मा परमात्मा बनती है बर्तन बिना साग बनता नहीं है।

277

जीवद्रव्य की मनुष्यपर्याय ही ऐसी है, जिससे आप पाँचवीं गति का पुरुषार्थ कर सकते हैं और प्राप्त भी कर सकते हैं।

(278)

ज्ञान तो आत्मा का ध्रुव त्रैकालिक गुण है, वह आत्मा से भिन्न कभी होता नहीं और बाहर से ज्ञान आता नहीं। ज्ञान का उपयोग उपादेय वस्तु में जा रहा है तो विवेक है ज्ञान का उपयोग हेय वस्तु में जा रहा है तो अविवेक है - दोनों के बीच में जो है उसका नाम ज्ञाता है अज्ञानियों ने द्रव्य को पर्याय से भिन्न समझ लिया, पर्याय अशुद्ध, द्रव्य शुद्ध है यह कथन आगम विरुद्ध है क्योंकि जैसी पर्याय होगी वैसा द्रव्य होगा। द्रव्यरहित पर्याय, पर्याय रहित द्रव्य होता नहीं यह ही सत् है।

(279)

बिना कारण कार्य होता नहीं। परमात्मा तभी बनोगे जब परमात्मा का ध्यान भी समाप्त हो जायेगा, लेकिन परमात्मा का ध्यान 6वें गुणस्थान तक करना है। फिर आत्मा का ध्यान होता है। मंदिर जब तक आना, तब तक मुनि न बन जाओ। जब भी तू सिद्ध बनेगा, सिद्धों की आराधना से बनेगा, आत्मा की आराधना करने से पहले सिद्धों की आराधना करनी होगी। जो जो बहिरात्मा भव्य जीव है, वे कारण है अंतरात्मा के लिए। जो जो अन्तरात्मा है, वे कारण हैं परमात्मा के लिए।

(280)

जेल में, जंजीरों में बंधा व्यक्ति आजाद हो सकता है। रिश्ते, संबंधों में बंधा व्यक्ति आजाद नहीं हो सकता। घर परिवार छोड़ एकांत में वास कर आत्म में परिणमन करने वाला योद्धा आज नजर नहीं आता वो सम्यकदृष्टि ही होता है।

281

मोह से भावित हुई आत्मा, परभावों में लिप्त हो रही है, पर भाव्य-भावक ने मेरे भाव्य को विकृत कर दिया।

बुद्धि में आता है - सम्पत्ति को भी अपना कहता है, विपत्ति को अपना कहता है, मित्र को तो अपना कहता है। शत्रु भी अपना कहता है।

हे संसारी, तुम भगवानात्मा-भगवानात्मा चिल्ला-चिल्ला रहा हो। जबकि तुम्हारा आत्मा, इसमें मूल है। ध्यानाग्नि में रखोगे तो कर्मों का मल निकलेगा। पूरा हटेगा तब शुद्ध बन जाओगे, ये ही रास्ता है।

ज्ञानी, गोरस की अंतिम पर्याय घृत है - कैसे बना ? संसारी आत्मा की अंतिम पर्याय सिद्ध है।

282

मोह पद के परिवर्तन में 16 सूत्र बनाना। राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन-वचन-काय, 5 इन्द्रिय। इन 16 सूत्रों पर से दृष्टि हटानी पड़ेगी। जब तक इनसे भिन्न नहीं, तब तक भगवत् स्वरूप प्रकट नहीं।

इन 16 सूत्रों से आत्मा की रक्षा कर। एक आस्रव विषय-कषायजन्य होता है, वह कष्ट देता है, एक आस्रव परमेष्ठी की आराधनाजन्य है, वह कष्ट हटाता है, जब तक तेरा संसार है, अशुभ दशा का कांटा निकालने शुभ दशा के कांटे की आवश्यकता है।

(283)

सम्यक् दृष्टि पाप भीरु है, आचार्य पूज्यपादजी कह रहे हैं, इष्टोपदेश में व्रती बनकर स्वर्ग जाना श्रेष्ठ है। अव्रती बनकर नरक जाने की अपेक्षा। भाई कषायों को मंद करो, तथा अपने सम्यक्त्व की रक्षा करो। बाकी अंथ, पंथ, संत आदि के राग से मुक्त हो जाओ। जहाँ पर शरण का किंचित् भी भाव है। वह शरण भाव ही है, परमार्थ दृष्टि से शरण से रहित रहना ही शरण है, किसी का आश्रय लेना मेरी शरण कैसी ? ध्रुव शरण कोई है तो कोई है तो वह ध्रुव आत्मा ही है, जो मुझे कभी नहीं छोड़ेगी। व्यवहार से पंचपरमेष्ठी गुरु मेरी शरण है।

(284)

भूख का वेदन तूने किया नहीं, क्योंकि भूख सताने से पहले खा लेता हो। इसी तरह स्वानुभूति का अनुभव किया नहीं, क्योंकि पहले से ही दूसरी अनुभूति में लगे हो - रागानुभूति, विषयानुभूति, मोहनीयाभूति आदि-आदि।

यदि इस जीव ने एक बार भावलिंग धारण कर समाधि मरण कर लिया तो दो-तीन ज्यादा से ज्यादा 8 भव से मोक्ष पहुँच जाता है। हे ज्ञानी ! मनुष्य पर्याय का आनंद मत लूटो, चरित्र का आनंद लूटो। श्रावक भी समाधि की भावना करे तो उसका संसार भी सीमित होता है, यह पुण्य-पाप की शरण जो तू लेता है, वह शरणभूत है ही नहीं।

(285)

स्वयं के हृदय पटेल में झाँको कि मैं 24 घंटे में ज्ञानी कितना होता हूँ और अज्ञानी कितना होता हूँ। एक नोट के पीछे तूने अपनी आत्मा को माया की चादर में ढंक डाला। धन के पीछे तन-मन-धर्म सब बेच डाला। अपनी लोभ की पर्याय को देख जरा। भव को सुधारने मत बैठो, भाव को सुधारने बैठो, तेरे वर्तमान का पुरुषार्थ तेरे वर्तमान की भाव पर्याय में चलता है भाव पर्याय को संभाल लिया तो भविष्य की भव पर्याय नियम से सम्भलेगी।

(286)

जिस ज्ञान में सहज आनंद की प्राप्ति हो, सहज तत्त्व की प्राप्ति हो, अंदर ही अंदर प्रमुद्रिता भाव हो, वह ज्ञान भिन्न है वह 'ज्ञान' है, आत्मा भाव वाला ज्ञान आस्रवभाव वाले ज्ञान से अत्यंत भिन्न है, आत्मज्ञान से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है, आत्मज्ञानी संसार के प्रपंच की सिद्धि नहीं कर सकता, बहुत बड़ा धनी नहीं बन सकता, बहुत बड़ा पंडित नहीं हो सकता। उसे बाहर के लोगों से प्रयोजन नहीं प्रयोजन ही नहीं होगा।

संयम का प्रत्यक्ष फल यशकीर्ति नामकर्म का उदय है। आचार्य कहते हैं हे ज्ञानी! कभी-कभी अपनी आलोचना, निंदा अच्छे से, सत्य से कर लिया करो। जब पाप की तीव्रता होती है तो स्वयं ज्ञान ही अज्ञानी बना देता है।

(287)

श्रीमद् योगीन्द्रदेव कृत – 'ज्ञानां कुंशम्' सद् ज्ञान देशना 26-8-2017 दशलक्षण पर्व आरंभ। परंपरा श्रमणों द्वारा जिनवाणी हमें प्राप्त हुई है, आचार्य कुंदकुंद, पुष्पदंत, भूतबली, पूज्यपाद, वारिसेन, समन्तभद्र, योगेंदु, उमास्वामी, विद्यानंद, शुभचंद्र आदि आदि से प्रभावित होती हुई वर्तमान शांति सागर से लगभग 500 मुनिराजों द्वारा प्रभावनामय हो रही है। आज हम योगीन्द्रदेव महर्षि द्वारा लिखित 'ज्ञानां कुश' नामक ध्यान और योग ग्रंथ को समझने जा रहे हैं।

(288)

योग ही ध्यान है और ध्यान ही योग है। योग से तात्पर्य चंद्र नाडी, सूर्य नाडी, चित्तश्वांस को ग्रहण और विसर्जन मत समझ लेना। बुद्धि पूर्वक जो क्लेश करते हैं, संक्लेश करते हैं, वे बुद्धि पूर्वक अपने को दुर्गति का भाजन बनाते हैं, अशुभ से बचने का जो पुरुषार्थ कर रहा है, वह साधु है, शुभ से बचने का जो पुरुषार्थ कर रहा है, वह योगी है। निमित्त के अभाव में नैमित्तिक शांत रहें, यह कोई साधना नहीं है, निमित्त के आने पर नैमित्तिक प्रभावित न हो, कषायित न हो, इसका नाम चारित्र है, साधना है। धन भरने वाले को मत देखो, धर्म भरने वाले को देखो और देखते रहो।

(289)

पृच्छना नाम का जो स्वाध्याय है, उसका तात्पर्य यह है कि अपने ज्ञान को गुरु की मुहर लग जाना। चरणानुयोग का अभाव करके, समयसार की व्याख्या समयसार के साथ छल है, जो ज्ञानी निजज्ञान को निज ज्ञेय बनाकर निजानंद में लीन हो रहा है उसे 'ज्ञानी' कहा है, ये अभेद ज्ञानी है यह अद्वैत ज्ञानी है। बुद्धि और बुद्धि भाव से परे जो परम शुद्ध अवस्था है, वही आत्मा का स्वभाव है, साक्षी यानी निरपेक्ष होकर निहारो अपने भावों को। मेरे निज में मेरा निज आत्मा ज्ञेय बने, शेष ज्ञेयों का अभाव जिसमें है, वही शुद्ध ज्ञान है ये ही भाव श्रुत है वही शुद्धोपयोग है वही आत्मरुचि और प्रतीति है।

(290)

आस्रव भाव किस किससे हो रहा है? कषायों के उद्रेक को रोक पाना, मन-वचन-काया को संभाल पाना, निज स्वभाव में रह पाना, यह तेरे अंतरग पुरुषार्थ का कार्य है। यह सामान्य तपस्या नहीं है। ऐसे योगी को 'मूलाचार' में भगवान कहा है, उपसर्ग आए तो मौन रहना, आगम की आज्ञा है, पर की कक्षाएँ लगाना भी 'स्व' की हानि है, ज्ञानी अभ्यास करो, घर में रहकर घरवालों को भी भिन्न मानो। ये संयोग भाव से मिले नहीं। स्वभाव से मिले नहीं। मिले तो रहो, मिलकर मत रहना। आत्म स्वभावं पर भिन्नं, इसको अपने अंदर रखना, जो भी द्वादशांग में कथन है, वह देह और देही का भिन्नत्व भाव बताना ही है, आस्रव भाव कहने से काम नहीं चलेगा।

(291)

मैं मुनि इसलिए बनना चाहता हूँ कि मैं भगवान बन जाऊँ। जब तक भाग्य रहेगा, तब तक जीव संसारी है, सिद्ध अवस्था में पुण्य-पाप दोनों का अभाव है, जीव भव्य तब तक है, जब तक उसे मोक्ष नहीं हुआ, फिर न भव्य है, न अभव्य। जो है सो है। भगवान कर्मों से नहीं, कर्म निर्जरा से बने हैं, जब तक तू 5 पापों का नाश नहीं करेगा, मोक्षमार्ग तुझसे बहुत दूर है, पूर्व का पुण्य और वर्तमान का निश्चित पुरुषार्थ, दोनों से ही भगवान बनता है, पुण्य से ही पुण्य का क्षीण होता है।

(292)

आचार्य जयसेन कह रहे हैं, जिस काल में स्व-संवेदन ज्ञान है, उसी काल में रागादि की निवृत्ति होती है, वैराग्य हो रहा है, भेदविज्ञान हो रहा है और इंद्रिय विषयों में लीन हो रहा है, यह एक साथ नहीं। अहंकारानुभूति सबसे खोटी है, जो शांत बैठा है और मन से खुश हो रहा है कि मेरा किन-किन स्थान पर कितना-कितना सम्मान हुआ है, अशुभ लेश्या में जी रहा है। कृष्ण लेश्या और शुक्ल लेश्या इनका पर स्थान गमन नहीं होता। स्व स्थान ही में ही गमन होता है। यदि तूने आज कुछ नहीं किया, अपने कल्याण के लिए तो निज आत्मा की दुर्गति का कारण तू ही होगा। कार्यभूत होने वाला कोई निमित्त है तो आत्मा के तेरे परिणाम ही हैं।

293

शब्दानुभूति आत्मानुभूति नहीं है, जीव विषयानुभूति में लीन होकर शुद्धात्मानुभूति की खोज कर रहा है, स्तुति, वंदना न कर पाओ, तो निंदा करके बंध मत कर लेना। तटस्थ रहना। जो आस्रव वर्तमान में पुण्यरूप दिख रहा है, वह भूत का पुण्य कर्म था, वर्तमान में उदय है एक समय की पर्याय भी भूत ही है, जो जो उदय आता है, भूत का ही आता है, अंतर्मुहूर्त में अबाधाकाल हुए बिना कर्म उदय में आता नहीं। कम से कम एक अन्तर्मुहूर्त चाहिए, एक-एक क्षण के परिणाम शब्द उड़ते रहते हैं।

294

स्वयं के परिणाम कभी प्रशस्त होते हैं, कभी खोटे होते हैं, अपने जीवन की धाराओं में कितने-कितने भाव ऊपर नीचे हो रहे हैं, उनका चिंतन करो, यदि तू कुछ कर सकता है तो अपनी पर्याय के परिणामों को शुद्ध कर सकता है। यदि तेरे आचरण में कोई गंदगी आए तो प्रतिक्रमण, प्रायश्चित करके ठीक कर लेना। आचरण मत छोड़ना ज्ञान ही निरास्रव भाव है, शेष सभी आस्रव भाव हैं, भगवान आत्मा को शब्द मात्र से न जाने, अशब्दभूत होकर निहारे। आचार्य कुंदकुंद कह रहे हैं, आस्रव की निवृत्ति ही आत्मभाव है, अद्वैत की धारा जब कथन में आती है, तब शांति छा जाती है।

(295)

निज के भावों को सुधारा नहीं, तो दुनिया में किसके भावों को सुधारने जाएगा। मध्यस्थ होकर रहना सीखो। यदि तुझे आज जिनवाणी सुनने को मिल रही है तो यह तेरा पूर्व पुण्य है, जब द्रव्य संयम धारण करने से लोग तुझे नमस्ते से नमोस्तु कहने लगें तो भावसंयम की क्या महिमा होगी? सोच! आज तू वर्तमान की पर्याय का पुण्य नहीं भोग रहा, यह भूत की पर्याय का पुण्य वर्तमान की पर्याय में भोग रहा है, सब देख रहे हैं। सतत स्वाध्याय की आवश्यकता है, यदि आत्मानुभूति लेना चाहते हो। स्वाध्याय नहीं तो शब्दानुभूति भी नहीं मिलेगी।

(296)

जितने प्रपंच है, अशुभ-शुभभाव हैं, ये सब द्वैत में है, अद्वैत में परम सत्ता है, अद्वैत का व्याख्यान द्वैत से होता है, अद्वैतवाच्य से भी नहीं है, शुद्ध अद्वैत की धारा है, शुद्ध केवलज्ञान। जहाँ ज्ञान में मिश्रपना नहीं हैं। 24 घंटे में 1 सैकेण्ड के 100 खंड कर लो, इतने प्रमाण भी अद्वैत का स्पर्श होता है तो शरीर का बल बढ़ जाता है, आत्मबल बढ़ता है, थकान नहीं आती। जिसकी अद्वैत पर दृष्टि नहीं है, उसको द्वैत में ही आनंद आता है, जहाँ प्रमत्त दशा है (6 गुणस्थान) वहाँ शुद्धोपयोग की दशा नहीं है, तीन शुक्लध्यानों में भी आस्रव का अभाव नहीं है, अबुद्धिपूर्वक। आत्मभाव आस्रव भाव में जब तक भेद नहीं है, तब तक कषाय भाव है।

297

पुण्य-पाप के फल में मत हरखो-बिलखो भाई! ये शाश्वत नहीं है, पुण्य कब तक साथ देगा, तेरा शरीर परिवार कब तक साथ देगा? जो परभावों से निवृत्त होता है, वह ज्ञानी है, जो चैतन्य है वह जड़ के प्रति उदारता स्वरूप दृष्टि से देखने पर द्रव्यास्रव तथा कर्म और आत्मा का बंध होने पर, एक दूसरे से मिले होने पर भी एक दूसरे से भिन्न है, आत्मा और कर्म मिले हुए हैं, इसी का नाम संसार पर्याय है, जो जो बद्ध हैं, वे सब अशुद्ध हैं, शुद्ध में बंध नहीं होता।

298

आत्मा को कर्मों से बद्ध निहारते हुए, कर्मों के स्वभाव का विचार करिए। किसी भी अवस्था में आत्मा कर्मरूप नहीं है, कर्म आत्मा रूप नहीं है, इसलिए आत्मा भाव आस्रव भाव में अत्यन्ताभाव है, अब भावकर्म की ओर चलिए। जो भावकर्म है, उनका भी शुद्ध आत्मा में अत्यन्ताभाव है, भावकर्म पर सापेक्ष है, शुद्ध स्वभाव नहीं है, द्रव्य कर्म भी पर सापेक्ष धर्म-कर्म का आत्मा से अभाव हो जाए तो भावकर्म कभी नहीं आएंगे। भावकर्म भी उसी आत्मा में आते हैं, जिस आत्मा में द्रव्यकर्म का बंध है। आपकी आत्मा में, जो भावकर्म हो रहा है, वह जड़कर्मों के संयोग के बिना नहीं हो रहा। ये कार्य-कारण व्यवस्था है, निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

(299)

कर्म विपाक रुकता नहीं है। मंदिर के दर्शन से कोई रोक सकता है, लेकिन आत्मदर्शन से कोई रोक नहीं सकता, मेरा जो मंदिर है आत्मचैत्य है, आस्त्रव आकुलता उत्पन्न कराता है, चाहे पुण्य आस्त्रव हो, चाहे पापास्त्रव हो। आत्मदृष्टि अर्थात द्रव्यदृष्टि आत्मा भाव। पर्यायदृष्टि अर्थात परदृष्टि भाव, आस्त्रव भाव। जब तक बाह्य दशा का उदय नहीं, निरास्त्रवभाव होता नहीं। निरास्त्रवभाव 18 हजार शील की पूर्णता से होता है, क्रम से 14वें गुणस्थान में निरास्त्रव भाव पूर्ण होता है, प्रथम पापास्त्रव भाव को रोकने का पुरुषार्थ करो।

(300)

परमेष्ठी के राग को राग कह दिया तो अन्यादि के राग को वैराग्य कैसे कहें? वीतरागी होना है तो चित्त को वित्त से हटाना पड़ेगा। यदि वित्त पर चित्र टिका है, तो कोई भी वीतरागता नहीं, चाहे कितना भी समयसार पढ़ लो। आपके घर में जो राग-द्वेष चल रहा है, वित्त पर चित्त है, वित्त और वासना - इन दो की गर्मी उतर जाए तो वीतरागता आ जाए। आस्त्रव भाव, जिससे हो रहा है, उसका त्याग नहीं करेगा, तो उससे भिन्न कैसे होगा? परिणामों में भद्रता, ऋजुता लाने के लिए किसी के पास जाने की आवश्यकता नहीं है।

(301)

ज्ञानी ! स्वयं के विकृत परिणामों की दशा में जो चंचलता चल रही है, उसे भी ज्ञेय बनाओ और छोड़ने का पुरुषार्थ करो। हे मुमुक्षु शब्द और इंद्रियों ये प्रतिक्षण पर की ओर ही जाती हैं और निज का विवेक खो बैठती हैं। आचार्य कह रहे हैं यदि तुझे निज के ब्रह्म की आँख को खोलना है तो बाहर की आँख को बंद कर लो। योग की सिद्धि ही आत्म-सिद्धि है। हे मित्र! जैसे तू धन पर आंखें रखे है, वैसे तू सिद्धों पर आँख रख ले, तो सिद्ध हो जाए। संसार द्रव्य कमाने में तुम एकाकी हो जाते हो, आत्मद्रव्य कमाने में तुम क्यों नहीं है, एकाकी एकान्ती होते?

(302)

श्रावक अध्यात्म को समझेगा, तो वैराग्य को प्राप्त करेगा। वैरागी अध्यात्म का अभ्यास करेगा तो वीतरागता को प्राप्त करेगा, निर्ग्रन्थता को प्राप्त करेगा। वीतरागी-निर्ग्रन्थ ही अरिहंत बनते हैं। श्रावक और श्रमण दोनों को श्रुत का अभ्यास करना चाहिए, समझ में न आए तब भी। हे मुमुक्षु! अरहंत से भी उत्कृष्ट स्थान है, जिनवाणी का क्यों ? अरहंत विराजते हैं, कमलासन पर, जिनवाणी विराजते अरहंत के मुख कमल में। ज्ञानियो! बीजाक्षरों का प्रभाव देखो पाषाण भी भगवान बन जाता है, सोचो जब पत्थर भगवान बन सकता है, तो तेरी अशुद्ध आत्मा जिनवाणी के शब्दों से भगवान क्यों नहीं बन सकती।

(303)

कालल‌ब्धि कार्य नहीं करती, कालल‌ब्धि कार्यरूप परिणत नहीं होती। मेरा मोक्षमार्ग न कालल‌ब्धि के हाथ में है, न आकाश, धर्म, अधर्म के हाथ में है मेरा मोक्षमार्ग देव, गुरु, शास्त्र के हाथ में भी नहीं है, मेरा मोक्षमार्ग तो मेरे ज्ञान और परिणाम के साथ में हैं। केवली के ज्ञान से जगत का परिणामन नहीं होता, यह मिथ्यादृष्टि की महान भूल है राजा श्रेणिक सातवें नरक से, पहले नरक कैसे गए? पुरुषार्थ से।

तत्त्व के प्रति श्रद्धा का होना, कषायों की मन्दता का होना, चेहरे पर प्रसन्नता का होना – ये बिना निकटता के संभव नहीं है, झरने की शीतलता उसके निकट आने पर ही संभव है।

(304)

तेरा कामादि से युक्त चित्त ही कर्मबंध का कारण है, जब यह ध्रुव आत्मा परभावों से भिन्न निज स्वभाव को समझ लेती है, वे ही काम के द्रव्य काम के नहीं दिखते, वे ही परिणाम अकामभूत हो जाते हैं, जो परिणाम रागी संज्ञा को प्राप्त कर आते थे, वे ही परिणाम वैराग्य हो गए। ध्यान दो, भगवान आत्मा अलग से नहीं आती, आत्मा ही भगवान आत्मा होती है, जगत के दर्शनों में परमात्मा तो परमात्मा रहता है भक्त–भक्त रहता है लेकिन धन्य है यह श्रमण संस्कृति कि इसमें भक्त ही भगवान बनता है।

305

अखंड ज्ञान क्या है ? जहाँ कुछ भी चिंतन नहीं, जाप न हो, स्थिर हो गया। आत्मा को आत्मा में स्थिर कर लो। यही परम ध्यान, अखंड ज्ञान है आत्माश्रित सिर्फ 48 मिनट उत्कृष्ट ध्यान लग जाए, अखंड में चला जाए कैवल्य ज्योति प्रकट हो जाएगी। यहाँ नय-प्रमाण का विकल्प नहीं है, सूने में स्वयं से चर्चा होती है, सूने में जाओगे, शून्य हो जाओगे, यही अखंड ज्ञान की धारा है, जो आत्मतत्त्व को समझेगा, वो ही ज्ञाता केवल ज्ञाता पर स्थिर हो सकेगा। नवरस नहीं, साहित्य तथा विषयों के जहाँ रस नहीं वहाँ स्वानुभूति का रस होगा।

306

आत्मा का स्वभाव स्वत:सिद्ध परभावों से भिन्न है अत: मिट्टी से युक्त स्वर्ण में शुद्ध स्वर्ण देखिए। योगेश्वर निजध्यान में मेरा आत्मा मात्र त्रैकालिक द्रव्य शुद्ध निहारते-निहारते रहते हैं, ऐसा चिन्तन रहता है पर्याय से ध्यान हटाकर परम पर लगा देना तो पर्याय नहीं मिलेगी, परम पद को पाएगा। बाह्य को नए जानकर निज आत्मद्रव्य को पहचान लेना ही ज्ञान है तेरा क्षयोपशम ज्ञान है, जिस ओर चाहे उस ओर ले जा सकता है पानी धोता भी है और कीचड़ भी करता है ध्यान में ज्ञान गुण है।

307

निर्ममत्व स्वरूपोऽहम्, ममत्वभावरहितोऽहम्। निर्ममत्व, निर्मोही मेरी आत्मा की दशा है। शत्रु से भी मोह, मित्र से भी मोह। एक मेरा शत्रु है, एक मेरा मित्र है। पूरे जगत से राग करके तू जगत के राग को प्राप्त तो हो सकता है, पर जगत् के लिए तू कुछ कर नहीं सकता है, 'पर' की दया करके, निर्बंध दशा को प्राप्त कर लेता तो चिद्रूप दशा को प्राप्त कर अनन्त काल तक अनंत सुख से कभी बाहर ही नहीं आता।

दया को छोड़ मत देना, लेकिन मोक्ष तभी होगा, जब दया जगत से हट कर निज पर होगी। मोक्ष पथिक परिवार का, जगत का सोच नहीं करता। अंदर का राग आपको सत्यार्थ तत्त्व को कहने भी नहीं देता, मोह सबसे प्रबल कर्म, उससे मोक्षमार्गी समझौता कभी नहीं करता।

ये राग-द्वेष, आत्मा की ही विभाव परिणति है, उसका निमित्त साधन द्रव्य कर्म है तथा बाह्य पदार्थ हैं, आत्मा के विभाव परिणामों के कारण कर्म वर्गणायें आती हैं, बिना द्रव्यकर्म के आत्मा में रागादि भाव नहीं आते।

308

द्रव्य से-निश्चय से शुद्ध हो - पर्याय से, पर्याय में जब तक तुम उस शुद्धता का अनुभव नहीं करोगे, सिद्ध की अनुभूति नहीं पाओगे।

309

जिस मोह के मद से उन्मत्त हो रहा था, उसे ही ज्ञानी पुरुष निर्मोह कर लेते हैं और वो ही मोही आत्मा परमात्म तत्त्व की ओर गमन करने लगती है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से मिले होने पर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते, ये उपादान दृष्टि है। लेकिन एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के संयोग से प्रभावित होते हैं। यह निमित्त दृष्टि है यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो संसार का अभाव हो जाएगा। प्रत्येक कर्म का नोकर्म होता है, भैंस का दूध अधिक पीओगे तो बार-बार निद्रा सताती है, उपादान शक्ति वस्तु में स्वयं की है। निमित्त शक्ति पर की होने पर भी उपादान शक्ति से ही निमित्त शक्ति कार्य कर पाएगी। जिसका आयु कर्म शेष है, उसको ही औषधियाँ प्रभावित कर पाएँगी।

310

देखने दिखाने की भावना है जब तक, अखंड ज्ञान नहीं है तू ही वक्ता होगा, तू ही श्रोता होगा, वचनों का विसर्जन होगा, तब सच्चा प्रवचनकार बनेगा। बिना कुशलता के जब आप पाप भी नहीं होता, तो बिना कुशलता के पाप को कैसे छेद पाओगे। भगवान आत्मा के ज्ञान को तूने अब तक कैसे पाप में लगा रखा है, कितनी पर्याय लगा दी इसमें। बंध में भी कुछ ला कुशलता थी, बंध को छेदने में भी कुशलता दिखानी होगी।

(311)

आत्मा का ज्ञान-भिन्न विषय है, आत्मा का बोधभूत (निर्णयभूत) आत्मज्ञान विभिन्न विषय है आस्रव भाव आत्मा ने विभाव भाव से किया, आस्रव भाव आत्मा ने कर्म सापेक्षता किया, आस्रव भाव आत्मा का किंचित् भी स्वभाव नहीं है, जो-जो मोह के साधन, वे सब कारणभूत पाप हैं, जो-जो मोह भाव है वह सब कारणभूत पाप है। तेरा धन, तेरा तन, तेरा मन यह भी आत्मा नहीं-कारणभूत पाप है। चित्त आत्मा का कर्म सापेक्ष स्वभाव है, चित्त चैतन्य नहीं है। एकमात्र ध्रुव अखंड आत्मा ही चैतन्य है, चित्तवृत्ति का निरोध-संयम की साधना में सहकारी है।

(312)

द्रव्य श्रुत की आराधना तो करना लेकिन द्रव्य श्रुत से श्रुत ज्ञानी हो जाए - ऐसा कोई नियम नहीं। 'ज्ञान' आत्मा का धर्म है, शास्त्रों का धर्म नहीं है, श्रद्धान और भक्ति में कभी कभी सत्य जान नहीं पाते। श्रद्धा-भक्ति का विषय अलग है, वस्तुव्यवस्था का विषय अलग है, रत्नत्रय से मंडित-शरीर की पूजा है, यदि आपका तत्त्व श्रद्धान स्पष्ट नहीं, पूर्ण नहीं, तो कहीं न कहीं आप मिथ्यात्व को स्पर्श कर रहे हो। सच्चा सम्यग्दृष्टि वह है, जो मिथ्यादृष्टि तथा मिथ्यात्व दोनों पर अशुभ भाव नहीं लाता। जो जैसा जिसका स्वरूप है, वह उसे वैसा ही देखता। मिथ्यात्व को उपादेय नहीं मानता उपेक्षा भाव रखता।

(313)

क्षायिक ज्ञान से मोक्ष नहीं होता, क्षायिक चारित्र से मोक्ष नहीं होता है, क्षायिक ज्ञान 13वें गुणस्थान में प्रगट होता है, क्षायिक चारित्र 14वें गुणस्थान में प्रगट होता है, सम्यग्दृष्टि वही होगा, जो सूक्ष्म से सूक्ष्म मिथ्यात्व से दूर होगा। देव-शास्त्र-गुरु (सच्चे) की आराधना तन-मन-धन से मिथ्याती भी करता है, घर की विषमताओं, परिवार की विशेषताओं को समयसार स्वीकार नहीं करता। मोह जितना क्षीण होगा, विषमतायें उतनी कम होंगी। शरीर की साधना के साथ अंदर की साधना ज्यादा जरूरी है, समयसार उसे ही ज्ञानी स्वीकारता है, जो अभेद रत्नत्रय से मंडित है, समयसार ग्रंथ में सप्तम गुणस्थान की प्रधानता से संपूर्ण कथन है।

(314)

आत्मभाव-आस्रव भाव यदि बुरा लग रहा है तो समयसार से बाहर अच्छा लग रहा है तो समयसार से बाहर अच्छा लगना, बुरा लगना यह समाप्त हो जाए, यह समयसार है। ज्ञान आस्रव को कैसे निवृत्त करता है, एक समय में आस्रव की निवृत्ति और ज्ञान की प्रवृत्ति होती है। विषय-कषाय में प्रवृत्ति चल रही है, ज्ञान-वैराग्य शक्ति का उद्घाटन होना चाहिए। कण-कण स्वतंत्र है, परद्रव्य निमित्तभूत है, उपादान तो तेरा ही है कार्य तो उपादान से ही होगा।

315

ज्ञानी! वस्तु पाप नहीं है, तेरी परिणति मोहरूप है, कार्माण वर्गणायें न पुण्यभूत हैं, न पाप भूत हैं, वे तो वर्गणायें हैं, जीव की परिणति शुभभूत है तो पुण्यभूत बन जाती है, अशुभ है तो पापभूत बन जाती है, जीव के परिणामों से कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणत होती हैं, जीव के परिणाम, प्रवृत्ति पंच पापरूप है।

मेरा कुछ भी नहीं है, जिस दिन मेरा कहने लग जाऊँगा, तो मिथ्यादृष्टि हो जाऊँगा। जिनवाणी त्रैकालिक है अन्यथा प्रत्येक तीर्थंकर की स्वतंत्र वाणी हो जाएगी। छह द्रव्य, सात तत्त्वों, 9 पदार्थ आदि ये त्रैकालिक हैं।

316

विषय-कषाय भगवान आत्मा पर दौड़ते हैं (अच्छादित, ढंकते) उसके सहज स्वभाव को सुखा देते हैं और स्वयं हरे-भरे रहते हैं, जैसे अमल बेल वृक्ष पर चढ़कर उसको सुखा देती है और स्वयं हरी रहती है। हे मोह! तू कैसा बाध्य घातक है, मेरे ऊपर सवार होता है और मुझे ही सूखा देता है, कैसा बध्य-घातक है, जोंक बहुत कोमल होती है, तेरे शरीर से चिपक कर तेरा ही खून चूसती है, विषय कोमल होते हैं, सुंदर होते हैं, अच्छे लगते हैं, लेकिन तेरे स्वात्म तत्त्व का ही घात करते हैं, शोषण करते हैं, इनसे कब तक अपने आपको चुसवाते रहोगे।

317

ये आत्मा दु:खी हो रही है, यह आत्मा के कारण नहीं, कर्मास्रव के कारण हैं, आत्मा तो सुखस्वभावी है, दुख परभाव की महिमा है, चैतन्य अनुभव में लीन हुआ, क्रोधादिक सर्वास्रवों का क्षय करता हूँ। आस्रवभाव को आत्मभाव से खींच कर रखना है, यह पुरुषार्थ साध्य है, सम्यदृष्टि भी अपने को आस्रव भाव से बचा ले - ऐसा कोई नियम नहीं।

ज्ञानी वाला ज्ञान जानकारी भूत है, जानकारी वाले ज्ञान से, निर्वाण नहीं होगा। भेद-विज्ञान से होगा। ज्ञानी! सत्यार्थ वैराग्य ही 'ज्ञान' है बाकी ज्ञान - 'जानकारी' है।

318

तीर्थंकर तीन ज्ञान के धारी जन्म से, फिर भी ज्ञानी नहीं। ये जानकारी वाले ज्ञान, आत्म ज्ञान वैराग्य भूत ज्ञान होता है यह जब हुआ, तब उन्हें वैराग्य हो गया। उससे पहले क्या वह अज्ञानी है? वैराग्य के अभाव में हुआ ज्ञान रागभूत होने के कारण अज्ञान ही है, क्या तीर्थंकर गृहस्थ अवस्था में अज्ञानी है तो फिर तुम्हारी क्या स्थिति होगी? जानने वाला ज्ञान भिन्न है, वैराग्यभूत ज्ञान भिन्न है, एक जीव शील में चल रहा है, वह ज्ञानी है, एक जीव चारों अनुयोग को जानता है, लेकिन कुशील से युक्त है, वह अज्ञानी है।

(319)

भाई, जितना बाह्य आचरण को संभालते हो उतना ही अंतरंग को संभाल कर रखना। आज अशुभ भावों को दबाने वाले बहुत कम हैं और तुम्हारें को जिनवाणी के छींटे लगाने वाले नहीं मिलेंगे। एक माँ 9 महीने पेट में बालक को संभाल लेती है, लेकिन एक अंतर्मूहुर्त कषाय को नही संभाल पाती है। काय, योग को तू संभाल लेगा, जब मन योग को संभाल लेगा, तब त्यागी बनेगा। योग ही संसार छेद का कारण है, जिस साधक की दृष्टि शुद्धात्म पर टिकी हुई है, उसका बाह्य आचरण स्वतः पवित्र होगा, बाह्य त्याग होगा (नियम से), बिना बाह्य त्याग के अंतरंग आचरण शुद्ध होता नहीं है।

(320)

'ध्यानं हीनं पश्यन्ति जन्मांघन भास्कर' चित्त का एकाग्र हो जाना ध्यान है)। जब यह जीव कर्म सापेक्ष ज्ञान से युक्त होता है, तब अशुद्ध है। भगवान आत्मा का ज्ञान का रमण ज्ञान (आत्मा) में करा दो, तो कैवल्य ज्ञान प्रगट हो जाएगा। शुद्धात्मा क्या है ? मेरी आत्मा में मलिनता कर्मों की है, हम मूल निरपेक्ष देखें, कर्म रहित देखो, तो आत्मा शुद्ध है। वीतराग मुनि अपने चित्त से अपने निर्मल शुद्धात्म चेतन का आश्रय लिए हुए हैं, दिखने में बाहर से शरीर से युक्त है, कर्म से युक्त मुनिराज विराजता है, लेकिन वह योगी शरीर को नहीं झांक रहा, हमको नहीं देख रहा। भाव कर्म को भी नहीं देख रहा, देख रहा है भगवान आत्मा को धन्य है यह दशा।

(321)

आत्मानुभूति का पुरुषार्थ मत कीजिए। आत्मानुभूति का पुरुषार्थ तुझे कषायी बना रहा है, तू विषय-कषाय को विराम दे दे, तो स्वयं आत्म अनुभूति हो जाएगी। स्वानुभूति कहते-कहते आधी पर्याय निकल गई, कषायों की तरफ ध्यान ही नहीं दिया, यदि उसे हटा देता तो तुझे नहीं चिल्लाना पड़ता, स्वानुभूति, आत्मानुभूति।

सम्यग्दृष्टि वीतराग चरित्र से युक्त परम योगी निजानंद व्याख्यान करने कहीं नहीं जाते। वह अंदर ही अंदर उसका वेदन करते हैं, आनंद लेते हैं, जिनके पास स्वानुभूति होती है, वह मौन है बोलते ही नहीं।

(322)

यह आस्रव जीव के साथ निबद्ध है, अध्रुव है, अनित्य है तथा अशरण है, दुख रूप है, जिनका फल दुख है ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुषों से निवृत्ति करता है। राग-द्वेष आस्रव भाव के भेद हैं। रागभाव, द्वेषभाव अपना स्वभाव नहीं है, यह कल सापेक्ष है। पुण्य आने पर हर्ष, पाप आने पर विषाद, यह अज्ञानी की प्रथम पहचान है, पुण्य-पाप से अधिक हम कषाय से ज्यादा बंध को प्राप्त हो रहे हैं।

पुण्य पाप का विपाक तुझे भ्रमित किए हैं। पुण्य-पाप तेरे नहीं तो उसका फल तेरा कैसे हैं ? ये ही तत्त्व की सबसे बड़ी भूल है।

(323)

'तत्स्वभाव, स्तत्वं' जो वस्तु का स्वभाव है, वह तत्व है, आवरण कितने डाल दीजिए, तत्त्व का विनाश नहीं होता। मेघ सूर्य को एक माह तक भी ढंक सकता है, लेकिन सूर्य के तेज का विनाश नहीं कर सकता, वह त्रैकालिक है। भव्य आत्मा में कैवल्य को यह कर्म रोक नहीं सकता। समय कितना भी ले ले मोक्ष अवश्य होगा। अपने विमुक्त्व शक्ति का मान करो कंगाल बना क्यों बैठा है? 47 परम शक्ति है तेरे पास। विमुक्त शक्ति के साथ प्रभुत्व शक्ति भी दी है तेरे पास।

(324)

निज शक्ति को क्यों नहीं पहचान पा रहा है, कठिन कोई साधना है तो बाहरी द्रव्य के साथ अंदर का राग छोड़ना कठिन है, शरीर में कोई कमी नहीं है, सम्यग्दृष्टि जीव मस्तिष्क से सारी संसारी विभूति हटाकर एकमात्र परमात्मा और निज आत्मा पर ध्यान देता है, आंखें खोलकर होने वाला धर्म तो पूरे जीवन किया। आंखें बंद करके धर्म करना सीखो। मनुष्य पर्याय मिली है इसमें ही एक बार देखन-हारे को देख लो। शिव स्वरूप की प्राप्ति भक्ति भाव से नहीं, यह तभी संभव है जब अद्वैत भक्ति में लीन हो जाएगा।

(325)

भावातीत होना है तो भाव संयम से ही हो पाएंगा, द्रव्य संयम से नहीं। हाँ द्रव्य संयम इसमें सहकारी जरूर है।

सिद्ध बनने के लिए कोई भी काम नहीं करना पड़ता। जब तक कुछ करते रहोगे, सिद्ध बनने वाले नहीं जब तक पुण्य-पाप पर दृष्टि है, स्वर्ग नरक की यात्रा चलती रहेगी ।

एक कीड़ा फूल में सुगंध सूंघ रहा है, एक कीड़ा मल में दुर्गंध सूंघ रहा है, दोनों जहाँ हैं, आनंद लूट रहे हैं।

जो जहाँ निवास करता है, वही रति को प्राप्त हो जाता है, जिसको जहाँ राग है, वह सुंदर है, जिसको जहाँ द्वेष है, वह असुंदर है।

(326)

अपने परिणामों को ज्ञेय बनाना, पर्याय को ज्ञेय मत बनाना। जो पर्याय को ज्ञेय बनाएगा, उसे रोना ही पड़ेगा। मैं पापी हूँ या पुण्यात्मा, किसी से मत पूछना, निज परिणामों से पूछना - शुभ है या अशुभ। ऊपर जा रहे हैं या नीचे - जवाब स्वयं मिल जाएगा। हर प्राणी स्वयं का ज्ञाता-दृष्टा है, एक ही आत्मा-बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा तीनों होती हैं।

आत्मा का क्रमिक विकास होता है, तब परमात्मा होता है, जैनदर्शन ही ऐसा दर्शन है, जो कहता है, आत्मा का विकास परमात्मा है, भगवान कोई भिन्न शक्ति नहीं है, मेरे आत्मा का उत्थान ही भगवान है।

(327)

एक जीव भोग-भोग कर बंध कर रहा है, दूसरा लोगों को देखकर ही बंध कर रहा है, एक पाप नहीं कर रहा है। पाप की भावना कर रहा है। अच्छी सोच उसी की बनती है, जिसका भविष्य सुंदर होने वाला है, अच्छा चिंतन करने के लिए भी पुण्य चाहिए। प्रशस्त परिणाम पाप की सत्ता में नहीं आते। बहुत लोग अच्छा सोचने का मन करते हैं, लेकिन मन में अच्छा आता नहीं।

मन में आता है, गलत कर रहा हूँ, फिर भी गलत को रोक नहीं रहा।

जैनदर्शन भी शक्ति देता है, अपने पापों को स्वीकार करने के अपने पापों को प्रकट करने की जिसका नाम प्रतिक्रमण है।

(328)

जन्म के लिए जो जन्मे, वह मिथ्यादृष्टि है, जन्मरहित होने के लिए जो जन्मे है, वह सम्यग्दृष्टि है। यह जन्म इसलिए मिला है यह उत्तम स्थिति इसलिए मिली है कि ऐसा पुरुषार्थ कर लो, जिससे जन्म-मरण का अभाव जाए। मृत्यु की पीड़ा को निहारना कितनी तड़पन है, आत्मप्रदेश जब खिंचते हैं, निकलते हैं, शरीर से बाहर तीव्र वेदना होती है। हे ज्ञानी! अपने राग में तूने कितनों का नाश किया। वर्तमान कब भूत हो जाएगा, निश्चित नहीं है, वर्तमान को पवित्र कर लो और वर्धमान बन जाओ।

(329)

जैन आगम कहता है – असत् का जन्म नहीं होता। सत् का विनाश नहीं होता, वस्तु का अभाव नहीं होता, वस्तु का परिणमन होता है। ज्ञानियो! आत्मा को, परमात्मा को तुम भगवान कहकर भटक रहे हो, पहले उसे वस्तु मानिए। जो भगवान हैं, वह भी वस्तु है, मैं हूँ वह भी वस्तु है, आप हो वह भी वस्तु है, आत्मरक्षा का अर्थ देह रक्षा कहना गलत है, आत्मा द्रव्य को कर्म परमाणुओं से बचा कर रखना यह आत्मरक्षा है।

प्रशस्त परिणाम रखना, अन्यथा आपके अहिंसाव्रत का पालन भावात्मक रूप से हो नहीं पाएगा। अपराधियों की चर्चा लोक में है, पापियों की चर्चा लोक में नहीं है।

बहिरंग साधना के साथ, अंतरंग साधना अनिवार्य है, वरना उसका महत्त्व समाप्त हो जाएगा। ज्ञानियों, नजदीक वालों से संभल कर रहना राग–द्वेष उन्हीं से होता है।

(330)

दोनों नय भूतार्थ हैं, एक व्यवहार दृष्टि भूतार्थ है, एक निश्चयदृष्टि से भूतार्थ है, अभेद से भेद को नहीं, भेद से अभेद की ओर जाना है निश्चय अभेद का कथन करता है व्यवहार भेद का कथन करता है दोनों सु नय हैं, एकाक्षीपन कभी शुभ नहीं होता। ज्ञाता के कितने प्रकार के अभिप्राय हो सकते हैं, उतने प्रकार के नय हैं। मूल रूप से दो नय हैं।

(331)

ज्ञानियों, पहले चरित्र भ्रष्ट नहीं होता, पहले चित्त भ्रष्ट होता है, जिसका विचार उत्कृष्ट होगा, उसका आचार उत्कृष्ट होगा। जिसके चित्त में अहिंसा नहीं, उसके चरित्र में अहिंसा कैसे आएगी। पाप प्रवृत्ति तो भाई बहुत कम होती है, पाप परिणति तो कोटि-कोटि होती है। पाप प्रवृत्ति की चर्चा तो सारा विश्व करता है, पाप परिणति की चर्चा केवल जैनदर्शन करता है।

शरीर से जो पाप होते हैं, वह दिखते हैं, मन से जो पाप होते हैं, वह दिखते नहीं हैं, जैनदर्शन उसकी बात करता है।

(332)

जो निश्चय और व्यवहारस्वरूप वाले रत्नत्रय को नहीं जानता, वह जो करता है वह सब मिथ्यारूप है। परिणामों की दशा पर्याय से भी ज्यादा नाजुक है, पर्याय के विलीन होने में समय लगता है, परिणामों के ऊपर-नीचे होने में समय नहीं लगता। हीन से हीन परिणाम एक समय में भगवत्ता की ओर ले जाए।

पर्याय को संभालने का कार्य जो तू कर रहा है, उसे बंद कर क्योंकि उसे संभाल कर नहीं रख पाओगे।

पर्याय संभालते भी रहे तो कुछ भी मिलने वाला नहीं है। यदि परिणाम संभाल लिये तो एक दिन भगवान बन जाओगे।

333

आचार्य कुंदकुंद कहते हैं व्रत, संयम, शील आदि यदि इनकी प्रवृत्ति सम्यक्त्व सहित है तो सिद्धत्व की ओर ले जाएगी यदि सम्यक्त्व रहित है तो 1 दिन निगोद की ओर ले जाएगी।

ख्याति, पूजा की चाहत साधु के जीवन की सबसे बड़ी बुराई है।

अरबपति, खरबपति हो जाए, श्रेष्ठ पुरुषों, ज्ञानी पुरुषों की संगति नहीं तो कोई सुख नहीं, कोई पुण्य नहीं।

पुण्यानुबंधी पुण्य का भोक्ता जीव ही प्रातः उठकर अभिषेक करने का, जिनवाणी सुनने का परिणाम करेगा।

जिसके अशुभ आयु का बंध हो चुका है वह दूसरों की निंदा, आलोचना करेगा।

334

आचार्य समंतभद्र स्वामी 'आरंभ साधन के अभाव में द्रव्य आता नहीं, जहाँ निर्ग्रंथ दशा का अध्ययन प्रारंभ वहीं निस्संग दशा का पहले अध्ययन होता है। निस्संग दशा नहीं है, तब तक निर्ग्रंथ दशा नहीं आ सकती। निस्संगता यानी परिग्रह से रहित अवस्था। निर्ग्रंथ मुद्रा को अनेक बार धारण किया पर निर्ग्रंथ नहीं बना। द्रव्यलिंग के अभाव में भाव लिंग नहीं हो सकता। 20 भव से अधिक निर्ग्रंथ मुनि बन नहीं सकता।

335

सच्चा भक्त भगवान की सेवा, सेवा करने के लिए नहीं करता। भगवान के पास जाकर पहचान जाऊँ कि भगवत्ता की प्राप्ति कैसे होती है।

भगवान बनने के लिए, भगवान के घर पर जाता है और जाना भी चाहिए।

प्रभु-सत्ता स्वीकार है, एक प्रभु की सत्ता स्वीकार नहीं है, जिन शासन प्रजातंत्र है, जहाँ प्रत्येक को सम्राट, भगवान बनने का अवसर है, प्रत्येक आत्मा पुरुषार्थ करके आत्मा बन सकती है, निगोदिया भी सिद्धशिला पर बैठने की सामर्थ्य रखता है।

336

'भाग्य' अपना काम करता है लेकिन 'भाग्य' को बनाने वाला 'भाग्य' नहीं है, भाग्य को बनाने वाला पुरुषार्थ है, भाग्य वर्तमान के पुरुषार्थ से बनता है, भाग्य और पुरुषार्थ एक-दूसरे के सहकारी हैं, धैर्य यदि आपके पास है तो सब कुछ आपके पास है, धीरता चली गई सब कुछ चला गया।

बहिरात्मा ही अंतरात्मा और अंतरात्मा ही परमात्मा बनेगा, पुण्य जो तुम लाए हो, उसमें कषाय, विषय, भौतिकता के ओले ना पड़ जाए। सर्वाधिक पुरुषार्थ करना होता है परिणामों को संभालने में। परिणामों को जिसने संभाल लिया वही अंतरात्मा को प्राप्त होता है।

(337)

जो जीव संयमाचरण के अभाव में निर्वाणश्री का वरण करना चाहता है, संसार के दुःखों से मुक्त होना चाहता है, वह जीव पाषाण की नौका में बैठकर संसार पार करना चाहता है।

पाँच पापों में लिप्त आत्मा के लिए संसार पार करने की कल्पना भी मत करना।

मुझे किसी ने न गिराया है, न उठाया है, दूसरे के द्वारा खिलाया जहर भी पराधीन नहीं है, वह भी मेरे स्वयं के कर्माधीन है, जिस जीव की दूसरों को सुख अथवा दुःख देने की दृष्टि है, उसने अभी जैन दृष्टि को समझा ही नहीं।

(338)

राग से भरकर परिवार का पालन अच्छे से कर लेना, यह महत्त्व की बात नहीं है यह तो चिड़िया, कबूतर भी करना जानते हैं।

वैराग्य से भरकर, परमात्मा हो लेना यह महत्वपूर्ण बात है और यही उत्तम नर की पहचान है

विषयों के मल से दूषित इस आत्म घट को धोने के लिए बार-बार जिनवाणी चाहिए। सम्यग्दृष्टि जीव अपने परिणामों का अपने परिणामों से ही शोधन करके निज आत्मा को भगवान बना लेता है और यह विष शोधन की क्रिया है।

339

शांतता का आनंद यदि कहीं है तो अध्यात्म विद्या में हैं। सारी विद्यायें जहाँ शांत हो जाती हैं, सारी विद्याओं (विधि) का जब अंत हो जाता है, वहाँ से अध्यात्म विद्या का आरंभ होता है।

ध्यान रखना इंद्रिय सुख की प्राप्ति तो लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होगी। परंतु आत्मा की अनुभूति का आनंद किसी कर्म के क्षयोपशम से नहीं मिलता। वह तो आत्मा का, आत्मा के द्वारा ही प्रकट होता है, इस पारिणामिक भाव को किसी कर्म की अपेक्षा नहीं है, यह आत्मा का अपना निज सहज भाव है जैसे पानी का अपना स्वाद।

कर्म का किंचित् भी अपेक्षित भाव जिसमें नहीं है, आत्मा का ध्रुव स्वभाव है कोटि-कोटि भव लग जाते हैं, उसको प्राप्त होने में।

340

खाना-पीना छोड़ दिया, इंद्रिय का जो राग था, उसे नहीं छोड़ा। वासना में उपासना नहीं होती और उपासना में वासना नहीं होती। हे ज्ञानी! मुक्ति वधू का ध्यान कर लेता तो पुद्गल में फंसना पड़ता। कर्म निर्जरा, शरीर साधना से अधिक नहीं अंदर के भावों से अधिक होती है पंचम काल में साधना, तत्त्व बोध-तत्त्व साधना-स्वाध्याय है भेदविज्ञान की टांकी, स्वानुभूति की छेनी से संपूर्ण परभावों को हटाकर निजस्वभाव में जाना है।

(341)

धर्म की सम्यक् व्याख्या तभी कर सकेंगे, जब आपको आत्मा की त्रैकालिक सत्ता पर श्रद्धा होगी, जिसको यह श्रद्धा नहीं, वह कभी भी वस्तुस्वभाव का व्याख्यान कर नहीं पाएगा। जिसको मात्र स्वयं के जीने का राग है, वह नास्तिक है, वह केवल जीना ही जानता है, पुण्य-पाप के व्याख्यान की उसे क्या आवश्यकता? अरे मूढ़ जीना ही जीवन नहीं है मरने के बाद भी जीवन है।

जिसे आत्मसत्ता का श्रद्धान नहीं है, उसे पुण्य-पाप, अहिंसा-हिंसा में क्या प्रयोजन ?

जैनदर्शन में किसी की पूजा नहीं है, वहाँ 'बन्दे तद् गुण लब्धये' वहाँ तो आचार की पवित्रता के घोल से घुले हुए विचार हैं वह पूज्य हैं।

(342)

जैसे निःशंकता तुझे पापों में है ऐसी जिनशासन के प्रति हो जाए तो तू जिनेंद्र ही बन जाए। निःशंक न होते, तो खोटे कर्म नहीं कर पाते। यही जीव अज्ञानवश हुआ क्रोध को, राग-मोह को अध्यवसाय भावों को, प्राप्त होता है फिर क्या होगा? संसार में, संसार के दुःख में परिभ्रमण करता रहता है। जिस समय इस जीव को अपना और आस्रवों का भिन्न लक्षण मालूम हो जाता है उसी समय उसके बंध नहीं होता है जगत के प्रति जो कर्त्तृत्व बुद्धि है, उसका विसर्जन कर दो।

343

जिनवाणी सुने बिना, निज नाथ का अवलोकन होता नहीं है, यदि जिनवाणी सुरक्षित नहीं है तो जिनशासन भी सुरक्षित नहीं है। जिस आत्मा ने अपनी आंखों को फेरना बंद कर दिया, उस आत्मा का संसार में फिरना भी बंद हो गया है। जब भी मोक्ष मिलेगा – ज्ञान और ध्यान से मिलेगा। मन जितना शांत होगा, ध्यान उतना ज्यादा लगेगा, फिर निर्वाण भी शीघ्र होगा। मन को वश करने के लिए ज्ञान-अंकुश का प्रयोग बताया है, धन्य है, वह जो अपने ज्ञान से अपने चित्त का रोध कर रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। यह स्वाधीन दशा है भैया, चंचलता में सुख है, लेकिन वह सुखाभास है तथा आकुलता युक्त है।

344

मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग 28 इंद्रिय विषय से आस्रव हो रहा है, ऐसा श्रद्धान करो तथा इनको छोड़ने का उद्यम करो। तब आस्रव भाव से आत्मभाव पर प्रवृत्ति होगी। मनमानी जिनवाणी को मत मानना। ज्ञान का प्रयोजन क्या है, आस्रव भाव से बचना है। असंयम से बचे बिना, आत्मभाव को प्राप्त नहीं कर पाओगे। स्वभाव और विभाव को जाने बिना, स्वभाव को पाओगे कैसे ? सूक्ष्म मिथ्यात्व से पहले स्थूल मिथ्यात्व तथा असंयम से निपट लो।

345

ज्ञानियो ! योग ग्रंथ को समझते हुए, जब तक साम्यभाव, सामायिक, सरलता, सहजता का प्रवेश नहीं होगा, योग में स्थिर नहीं होगा। पंचम काल में जो भी जन्म लेता है, मिथ्यात्व के साथ जन्म लेता है, परंतु 8 वर्ष अंतर्मूहूर्त के होने पर वही जीव सम्यक्त्व की योग्यता को प्राप्त कर लेता है, वही बालक मुनि-आचार्य बंध कर जैनत्व की प्रभावना करता है, पुद्गल का भ्रमण जो लोक में है, वह काल कृत है और आत्मा का जो संसार में भ्रमण है, वह कर्म कृत है, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदारिक ये 4 परिणाम आत्मा के कर्म सापेक्ष हैं, जो पारिणामिक भाव है, वह कर्म निरपेक्ष है संसार अवस्था में अशुद्ध पारिणामिक भाव से युक्त है।

346

अशुद्धात्मा को शुद्ध कैसे किया जाए ? आत्मा की अशुद्धि जो है, वह आत्मा की अशुद्धि नहीं है। पर-सापेक्षता के कारण आत्मा में अशुद्धि है, जैसे सफेद वस्त्र पर कीचड़ लग गई है, बताओ कपड़े की अशुद्धि है या कीचड़ लगने से अशुद्धि आ गई है, जो अशुद्धि परनिमित्त से आ गई है, उसे हटाया जा सकता है और कपड़े को शुद्ध अवस्था में लाया जा सकता है, ऐसे ही भगवान आत्मा संसार में मलिन है कर्म सापेक्ष से। कारण का कारण ये दिगम्बरत्व की गहन सोच है। मुमुक्षु को न माला से प्रयोजन है न मंच से प्रयोजन है, मुमुक्षु निश्चय की दृष्टि को सुनते-सुनते व्यवहार से शून्य मत हो जाना।

347

धन्य है उस योगी की दशा को, जो मन को, कर्मों को घोट रहे हैं, जो संसार से दूर एकांत में बैठकर अपनी आत्मा में रमण कर रहे हैं।

अपनी रक्षा के लिए अपने स्वार्थ के लिए, अपने स्वार्थ के लिए, दूसरे का घात मत करना।

अंतरंग में जब विशुद्धि आती है तो न समय दिखता है, न स्थिति, न निमित्त, भीतर का भगवान स्वयं जाग जाता है।

जो आत्मा के तीन भेद – बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा को नहीं जानता, मानता उसका तीव्र तप भी संसार का ही कारण है।

348

हे प्राणी! अपना भला चाहता है तो अपनी देह को, अपने द्रव्य को सुपात्रों के दान में लगा देना। समयग्दर्शन सहित, धर्म ध्यान में रत परिग्रह रहित, तीन शल्यों से रहित विशेष पात्र कहे गए हैं।

सारे विश्व को एकत्व की दृष्टि देने वाला और प्राणी मात्र के प्रति समदृष्टि रखने वाला कोई दर्शन है तो वह है जैनदर्शन। जैनदर्शन ही ऐसा है, जहाँ अहिंसा दो प्रकार की बताई है एक का नाम द्रव्यहिंसा, दूसरे का नाम भावहिंसा। किसी के प्राणों की रक्षा करना द्रव्यहिंसा है, स्वयं के परिणामों को कलुषित नहीं होने देना – भाव हिंसा है।

(349)

सम्यग्दृष्टि जीव भोगों को भोगता है, अनिच्छा पूर्वक, जैसे रोगी दवाई खाता है, सम्यग्दृष्टि जीव भोगों को भोगता हुआ उसकी वाँछा नहीं करता और पुण्य करता हुआ भी उसकी वाँछा नहीं करता।

वस्तुस्वरूप संबंधी जो भाव है, वह सब मोक्ष गति में ले जाने के कारणभूत तथा प्रशस्त पुण्यबंध के कारणभूत होते हैं, वह श्रावक पुण्यात्मा है जिसके अंतरंग में पंच-परमेष्ठी का वास है और वह मुनि महान है, जो रत्नत्रय के पालन में लीन है।

(350)

चार गतियों में गमन का कारण और दुःख का हेतु है, वस्तुस्वरूप को विपरीत जानना वस्तु के स्वरूप को जानता तो है लेकिन विपरीत (उल्टा)।

वस्तु के स्वभाव में कोई विपरीतपना नहीं होता, परंतु मानने वाले की दृष्टि विपरीत है वो ही मिथ्यादृष्टि है।

जिसको मृत्यु से भय है वह सम्यक्त्व का पालन कर नहीं पाएगा। दुनिया से प्रभावित होने की आवश्यकता नहीं, तुम्हारे पास कमी किस बात की है, तुम्हारा ज्ञान तो सम्यक्त्व है, दुनिया के पास देव होते हैं, तुम्हारे पास देवाधिदेव हैं।

कर्त्तृत्वबुद्धि सबसे बड़ा मिथ्यात्व है, अनादि मिथ्यात्व है। स्वयं को देखो।

(351)

प्रत्येक जीव को जो कष्ट हो रहा है, बिलख रहा है वह स्वकर्माधीन है या पर कर्माधीन हैं।

यदि स्वकर्माधीन है तो कोई क्या कर सकता है? आज अपने परिणाम खराब करके, वर्तमान सुख को भी खो रहा है और भविष्य के लिए दुःख बो रहा है।

हम 'पर' की चिंता, चिन्तवन तो कर पाएंगे, लेकिन उसे दूर नहीं कर पाएंगे, भगवान-आत्मा, परमपरिणामिक स्वभाव से युक्त है, परम आनंदित है ज्ञानस्वभाव में जो आनंद है वह आनंद जगत के किसी पर भाव में नहीं है ज्ञान का एकाग्रता का नाम ध्यान है चित्त की विशुद्धि का साधन अध्ययन है।

ज्ञानियो! आत्मशुद्धि के अतिरिक्त, जितने क्रियाकलाप हैं, वह सब बहिर भाव हैं, सुख रूप नहीं हैं।

(352)

भोगभूमि में न मुनिराज मिलेंगे ना देशव्रती श्रावक मिलेंगे। मात्र 15 कर्मभूमियों में ही नमोस्तु शब्द सुनाई देगा। इस कोटे काल में भी, इतना पुण्य है तुम्हारा कि निर्ग्रन्थ मुनि का पड़गाहन मिल रहा है। गुरु की सेवा, भगवान की भक्ति में उसे ही रुचि, खुशी होती है, जिनको स्वर्ग जाना होता है।

क्षमा कायरों का धर्म नहीं है, मधुरता भोजन में नहीं होती, मधुरता वाणी में होती है हितकारी बोलो, सीमित बोलो।

353

मन की शक्ति जो है यह पौद्गलिक शक्ति है। यदि पवित्र समायिक चल रही है, निर्दोष साधना चल रही है तो योगी जमीन से आकाश में उठता महसूस करता है।

साधु की वंदना तो बहुत बार की है कभी योगी की वंदना भी करना। जिन्होंने योग-उपयोग को संकुचित कर लिया है एकांत में जिनकी साधना है भीतर भेद-विज्ञान की मथानी चल रही है।

जिसके पाप का वजन बढ़ जाएगा वह अपने आप 7वें नरक चला जाएगा।

354

निर्दोष संयम ही साधु का यश है, संयम मार्ग में कोई महान दोस अवशेष है तो उसका नाम ख्याति है। साधु सामायिक करे, श्रावक साधु की सेवा करें। मोक्षमार्गी हुए बिना, सच्चा साधु होता नहीं।

आचार्य कुंदकुंद कहते हैं जो मुनि विभाव के उत्पन्न होने में, स्वाभाविक आत्मगुणों की भावना करता है उसका ही निर्माण होता है

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं आत्मा का स्वभाव, समस्त प्रभावों से भिन्न है, भेद-विज्ञान से समस्त विभिन्न विकल्पों को त्यागो तथा अपनी स्वात्मा में श्रद्धान करो।

(355)

यह अज्ञ प्राणी निज ध्रुव आत्मा की सम्यक् सत्ता न समझता हुआ, दुख भोगते-भोगते इतना लीन हो गया कि दुःख-सुख में अंतर ही भूल गया। दुखानुभूति को सुखानुभूति मान रहा है सुखानुभूति में दुखानुभूति मान रहा है।

हे ज्ञानी! ध्यान से सुन 'परेड प्रवीचाता' स्वर्ग में जो उत्कृष्ट देव हैं वे विषय सुख से, इंद्रिय सुख से शून्य होते हैं, सोलहवे स्वर्ग से ऊपर कोई विषयसुख नहीं होता। इच्छाओं की पूर्ति के पश्चात् संताप देकर चला जाए, वो सुख कैसा? जिसकी प्राप्ति में आकुलता तथा क्लेश हो वह सुख कैसा?

(356)

हे प्राणी! तूने संसार में परिवर्तन किया, नाना योनियों में भ्रमण किया, उसका हेतु क्या था, वीतराग अहिंसा धर्म को न समझने के कारण, सम्यक् विचार का अभाव, इसलिए भ्रमण किया।

जब संबंध को, संबंधियों को अपना स्वीकार लेता है सारे अनर्थ वहाँ से शुरू होते हैं, काषायिक भाव को स्वयं की वस्तु मान लेता है, सारे कष्ट वहाँ से आरंभ होते हैं।

द्वादशांग का सार यदि कोई है तो पहले अपने आपकी स्वतंत्रता की पहचान लेना। किस-किस के क्लेशों को देखेगा।

(357)

लोग गलत कहते हैं, शरीर को संभालना तो हाथ में है, मन संभालना हाथ में नहीं।

मन संभालना तेरे हाथ में है, जैसे – परिणाम तू करना चाहे, वैसा नहीं कर सकता। वर्तमान पर्याय को तू जैसा करना चाहे, वैसा नही कर सकता। वर्तमान परिणामों को तू जैसा चाहे वैसा कर सकता है, भविष्य की पर्याय, वर्तमान परिणामों पर आधारित है।

मूर्ख, वर्तमान की पर्याय सजाने में समय नष्ट मत कर, वर्तमान में परिणामों को सुधार कर, भविष्य की पर्याय को सुंदर बनाने का प्रयास कर।

जैसा वर्तमान का भाव कर्म होगा, वैसा अगली पर्याय के लिए नामकर्म का बंध होगा।

(358)

पिच्छी कमण्डलु को ही एक मुनि स्वीकारता है, उसका राग भी बंध का कारण है, जिन्होंने इंद्रियों को जीत लिया है, जो ज्ञान स्वभाव में लीन है, जो ज्ञानस्वभावी आत्मा को जानते हैं, वो ही निश्चय से साधु हैं, वो ही कल के जिन हैं, त्यागी की चर्या से उसका स्वभाव पता चल जाता है।

मृत्यु से पहले, शरीर में क्या था ? वह विज्ञान ज्ञान धन जो है, उसी का नाम आत्मा है, आत्मा अखंड अभेद एक है, जिस दिन अभेद को समझ लेंगे, सारा विश्व एक हो जाएगा।

359

विषयों से विरक्त योगी कर्मों से छूटता है, विषयों में आसक्त व्यक्ति कर्मों से नहीं छूटता है।

हे योगी! निर्माण मार्ग जो है, वह निर्वाण मार्ग से बहुत दूर है जब तक कर्मों का निर्माण करता रहेगा, तब तक निर्वाण संभव नहीं है।

धर्म के मार्ग पर जाकर भी, धर्म के भाव कितने हैं, निर्ग्रंथ दीक्षा को प्राप्त होकर यदि जगत के प्रपंच करता है तो समझो राजा भीख मांग रहा है।

हे निर्ग्रन्थ तेरे आगे तो चक्रवर्ती तथा सौधर्म भी सिर टेकता है।

हे ज्ञानियों! परिवार श्रेष्ठ है या संसार पार होना श्रेष्ठ है।

360

आचार्य कुंदकुंद 'समयसार' में कह रहे हैं जो रागी है वह कर्मों को बांधता है, जो विरक्त है वह कर्मों से छूटता है।

ऐसा मत करना चेला, चेली आदि में राग करके, 10 को छोड़ा, हजारों का परिवार बना लिया।

जब तक बाह्य पदार्थों से, निमित्तों से स्वयं को अलग नहीं करोगे, तब तक स्वात्मा में लीन नहीं हो पाओगे, जिनवाणी का आनंद भी नहीं ले पाओगे। अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान अध्ययन को छोड़कर जो इन्द्रिय सुखों को भोगता है, वह निश्चय से बहिरात्मा है।

(361)

कर्मसिद्धांत से बड़ा ईमानदार जगत में कोई नहीं है। इसलिए ज्ञानी! मत करो छल निज के साथ। पर के साथ छल कभी होता नहीं है, पर के साथ छल उसके अशुभ कर्म का उदय होगा तो घटित होगा।

सत्य से जो पर के साथ चल कर रहा है, वह निज के साथ ही छल कर रहा है।

यदि आत्मस्वरूप का लक्ष्य है तो दोष को दोष स्वीकार करके पश्चाताप कर लेना।

देह, स्त्री, पुत्र, मित्र वैभव, यश यह सब राग-द्वेष परिणाम हैं, जो जो इंद्रिय सुख है, वह सब आत्मा को तीव्र दुख देते हैं ऐसा चिंतवन जो नहीं करता, वह संसार भ्रमण करता रहता है।

(362)

हृदय पवित्र हो तो, उसका चेहरा बोलता है उपदेश देने के लिए जो दे, वह उपदेश ही नहीं है। जीवों पर करुणा के लिए जो उपदेश है वह वास्तव में उपदेश है।

अग्नि के कुंड में गिर जाना लेकिन मिथ्यात्व के हीरे-मोती मत उठाना।

आपके भाव जैसे होते हैं शरीर में वैसा स्राव प्रारंभ हो जाता है इस माँ के अंतस् में क्रूरता है उस मां के आंचल में दुग्ध नहीं आता है।

363

जिसने पूर्व भव में तपस्या की है। अनंतानंत जीवों की रक्षा के परिणाम किए हैं वही जीव वर्तमान की पर्याय में विशुद्धि को प्राप्त होते हैं, संपत्ति का आज मिलना इतना महत्त्वशाली नहीं है लाखों मिल जाएंगे। जितना समीचीन वृत्ति का मिलना महत्त्वशाली है, जगत में संयोगों का मिलना, यश मिलना, महत्त्वपूर्ण नहीं है स्वभाव दृष्टि का मिलना सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

उपशमभाव का होना, धर्म-धर्मात्मा का मिलना, भोगों से उदासीन होना, ऐसे खोटेकाल में किसी निकट भव्य जीव का ही है।

दिखाने के लिए, जो बोलते हैं माईक लेकर बोलते हैं बन-बन कर बोलते हैं, इनसे बचना। सीधे-साधे अच्छे लोगों को मत छोड़ना।

364

संपूर्ण तत्त्वों को जानकर भी क्या लाभ? बहुत तप करके भी क्या लाभ ? सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन, ज्ञान और तप को संसार का बीज जानो। आज मंदिरों, मुनियों, शास्त्रों की कमी नहीं है, लेकिन एक-दूसरे के प्रति वात्सल्य भाव समाप्त हो गये हैं। जो धर्म की व्याख्या आई है, वह संकुचित हो गई है, विशाल धर्म के बीच मान कषाय की दीवार खड़ी हो गई है।

(365)

जब तक इस शरीर में आत्मा है, आत्मा के परिणामों को सुरक्षित रख लिया तो दुर्गति से आत्मा की रक्षा हो सकेगी। शरीर को सुरक्षित रख पाना स्वाधीन नहीं है, आत्मा के परिणामों को सुरक्षित रखना स्वाधीन है।

देह को तो तू सुरक्षित रख नही पायेगा। हाँ भावों को सुरक्षित किया जा सकता है, यह भ्रम निकाल देना कि भावों को सुरक्षित नहीं किया जाता है, यदि ऐसा होता तो विश्व में भगवान नाम की कोई सत्ता ही नहीं होती।

जो विश्व में ब्रह्म सत्ता है, प्रभुत्व सत्ता है, वह सब परिणामों की विशुद्धि की उपलब्धि है, परिणामों की विशुद्धि (सुरक्षा) पुरुषार्थ साध्य हैं पर्याय की सुरक्षा पुरुषार्थ साध्य नहीं है।

(366)

घर की आग तो पड़ोसी बुझाने आ जाएँगे। ईर्ष्या की आग भगवान भी नहीं बुझा पाएंगे। यदि हृदय बदल गया तो किसी को बदलने की जरूरत नहीं है, यदि तुम्हें राज्य करने की इच्छा है तो लोगों के हृदय में राज्य करना सीखो।

जिसका स्वयं का मन, स्वयं की वाणी, संयम की काया वश में है, वही दूसरे के मन पर राज्य कर पाएगा। भगवान महावीर स्वयं आत्मानुशासन में रहे, इस कारण उनका शासन वो नहीं भी है तो भी चल रहा है।

(367)

जैन की सर्वप्रथम आस्था तीन काल और 6 द्रव्य में होनी चाहिए। यदि है –

तो आप जीव त्रैकालिक हो। भूत में थे, वर्तमान में हो, भविष्य में रहोगे।

यदि यह आस्था नहीं है तो जैन आगम पढ़ने का कोई मतलब नहीं होता।

ये ही आस्था तुम्हें पाप से दूर करने में, पुण्य को करने में और सिद्धालय की ओर चलने में चारित्र देगी।

नहीं तो तुम चार्वाक बन जाओगे, जो वर्तमान में है, वो ही सत्य है, उसी का श्रृंगार है उसी की चिंता है, उसी में परिणमन है।

(368)

जो कर्म वर्गणा उदय में है, उनसे तू रागादि भाव को प्राप्त हो रहा है ऐसा नहीं, रागादि भाव के उत्पन्न होने की योग्यता तुझ (आत्मा) में है वह कर्म के निमित्त से हो रही है। जो बातें पुरानी हो गई हैं उन्हें निकालना नहीं। राग-द्वेष को दब जाने दो। व्यवहार चरित्र में परिपूर्ण निष्ठा से स्थिर हो जाना और निश्चयचारित्र की ओर चलना। निशंक होकर आत्म अज्ञानी बना रहा है, ज्ञानी पुरुष तटस्थ होकर बैठा है जिस ज्ञान से भगवान बनने वाला है उस ज्ञान को भोगों में, राग में लगा रहे हैं।

369

बहिरात्मा की दृष्टि, विषय दृष्टि है, विषदृष्टि है इंद्रिय – भोग भोगने में तो सुंदर लगते हैं पर विपाक के काल में वेदना देकर जाते हैं।

एक अरबपति विषयी भी दूसरे के सामने हाथ फैलाता है अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए। तत्त्व को प्राणी तभी समझ सकता है जब अंतस् में समरस भाव है मैत्री भाव मध्यस्थ भाव है।

विषय सुख को आत्मभूत मान कर बैठ जाना है बहिरात्मा जीव का लक्षण है।

खींचातानी मोक्षमार्ग नहीं है, वस्तु समभाव की प्ररूपणा को समझ लेना और रत्नत्रय को धारण कर लेना इसका नाम मोक्षमार्ग है।

370

जैसी बीज में फल बिराजा है, दूध में घृत विराजा है, ऐसे ही बहिरात्मा (संसारी आत्मा) में परमात्मा विराजा है, आपके देखने की दृष्टि होने चाहिए। सिद्धालय में विराजे विराजे वे फलभूत भगवान है, जो सभा में, मंदिर में विराजे है वह बीजभूत भगवान है।

जिसने बीज में फल नहीं जाना, वह अज्ञानी है, उसे कोई ज्ञान नहीं है, जब तक भोजन शुद्धि नहीं है, भाव शुद्धि की बात नहीं है, स्वतंत्र सत्ता परमात्मा की ही नहीं है, स्वतंत्र सत्ता प्रत्येक आत्मा की है।

371

6वें गुणस्थान तक सराग अवस्था है, सप्तम स्थान में योगी की शुद्धोपयोग अवस्था है, दर्शन-ज्ञान-चरित्र की लीनता समयसार की अपेक्षा स्वसमय है।

जो तत्त्वार्थ पर श्रद्धान है उसका नाम सम्यक्त्व है। तत्त्वार्थ पर विपरीत श्रद्धान वह मिथ्यात्व है।

'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' बहिरात्मपने का परित्याग करके, अंतरात्मापने को जो प्राप्त हुआ है, वही जीव निज पुरुषार्थ करके परमात्म पद को प्राप्त होता है।

जगत में कोई भी क्रिया, अनुष्ठान उसका लक्ष्य केवल परमात्म होना चाहिए।

पुण्यवर्धन के साथ कर्मक्षय के हेतु जो क्रियाएँ हैं, वह सम्यग्दृष्टि की होती है मिथ्यादृष्टि की मात्र संसार पुण्यबंध का कारण है।

372

अखंड ज्ञान धारा में भिन्न ज्ञेयों का अभाव हो जाना, निज ज्ञेय को ही निज में डालें। निज प्रमाता, निज प्रमाण से निज प्रमेय को निज में जाने ऐसी निज ज्ञान की अनुभूति है, यही शुद्ध जितेन्द्रिय योगी का स्वरूप है। समरासी योग में बैठा योगी संपूर्ण स्वभाव को परभावों से निज को खींच लेता है।

समयसार सुनने का लाभ तभी है, जब तू अपनी असीम इच्छाओं को सीमित करेगा। विषयों में, कषाय में अपने ज्ञान को खंड मत होने देगा।

(373)

संसार के सुख देने वाली अरिहंत की भक्ति है, वस्तु व्यवस्था व्यवस्थित है। स्वसमयी जो जीव है उनको जगत में कुछ नजर आता नहीं। प्रत्येक क्रिया करते समय स्व-परमात्मा का वेदन नहीं, वह सम्यग्दृष्टि नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव कदम दर कदम चलता अवश्य है, लेकिन लक्ष्य उसका स्थिर होता है उसका नाम सिद्धशिला है चाहे वह स्वाध्याय करें, भक्ति करें, मुनियों को आहार दे या स्वयं भोजन करें। समाधि उसी की होती है जिसकी धर्म की लौ, उम्र बढ़ने के साथ बढ़ती है, कुमरण उन्हीं का होता है, जिनकी कषायों की, विषयों की लौ उम्र बढ़ने से बढ़ती है।

आर्त्त, रौद्र ध्यान में आयु का बंध यदि हो गया, तो नरक-तिर्यंच ही जायेंगे।

(374)

जिनमंदिर में यदि एक घंटा पूजा करो तो कम से कम 2 मिनट अपनी मृत्यु का ध्यान कर लेना। अपनी समाधि का चिंतन करना। जिसका भाव अभी दीर्घ है, उसका भगवान के चरणों में आने का परिणाम ही नहीं होगा। भगवान के चरणों में मन मयूर नाचना चाहिए। अष्टद्रव्यों से पूजन का अवसर मनुष्य या देवों को ही मिलता है।

जो योगी तीन मूढ़ताओं, 3 शल्यों से, 3 दोषों से, 3 दण्डों से, 3 गारवों से रहित होता है, वो ही शिवगति की ओर अग्रसर होता है।

375

पर्याय को त्रैकालिक रखने का सौभाग्य मात्र अभव्य को ही प्राप्त है, भव्य तो पर्याय का विनाश कर मुक्त अवस्था को पाता है।

आश्चर्य ! मेरा स्वभाव त्रैकालिक था, उससे जो जीव दूर हो गया, जो विनशेगा उससे राग कर रहा है।

दूध में शक्कर खुली हुई है शक्कर शक्कर है, दुग्ध दुग्ध है दोनों घुले होने पर भी दोनों एक नहीं हैं।

जीव मोह वश कहता है कि दूध मीठा है। ज्ञानी, दूध मीठा है कि शक्कर मीठी है। माँ से बच्चा कहता है दूध फीका क्यों दिया, माँ कहती है दूध फीका ही था, तू भूल गया।

376

'अनादि संबंधे च' सूत्र कह रहा है कि तू अनादि परतंत्र है। कोई पुरुष अर्थ का अर्थी। अर्थ का अर्थी अर्थात् पैसे को चाहने वाला। जैनधर्म है जहाँ, आत्मा की बात सुनने को मिलती है, लिखना सरल है लखना कठिन है, जब काययोग, मनयोग, वचन योग तीनों ही तत्त्व मय होते हैं, तब लखा जाता है, इसमें स्वाध्याय कार्यकारी है।

प्रथम आत्मा को जानना फिर उस पर श्रद्धान करना, फिर उसी आत्मा का अनुसरण करना चाहिए। यह रत्नत्रय है।

(377)

जिन मुद्रा का धारक, वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त ज्ञानी और परम उपेक्षा वीतराग भाव का धारक – ऐसा योग मोक्षमार्ग का नेता होता है।

मुक्ति का संगम कराने वाला कोई है, वह सम्यक्त्व है, संसार में भ्रमण कराने वाला कोई है वह मिथ्यात्व है, इससे बड़ा कोई शत्रु नहीं है।

जो संसार वैभव है वह तो पुण्य का मल है, सबके दिन एक से नहीं होते और सब दिन एक से नहीं होते।

ज्ञानी ! केवल आत्मशुद्धि की आवश्यकता है, जो अहम में डूबे थे, वे अग्नि में झुलस चुके हैं और जिसके प्रति तेरा ध्यान है ही नहीं वह है 'परमात्मा'।

(378)

कड़वी तुमड़ी खाएगा, तो मृत्यु को पाएगा, उसे सुखा लेना, सूख जाए तो सरोवर में लेकर कूद जाना, तुझे पार करा देगी, ऐसे ही इस देह का उपयोग भोग में करेगा, तो तुझे दुर्गति में जाना पड़ेगा। देह को संयम से साधना से सूखा लेगा तो यह देह तुझे संसार से पार करा देगी।

कोई वस्तु हेय नहीं होती, उसका उपयोग करना सीखो। देह को एकदम से मत सूखा देना। याद रखना, शरीर ने आज तक किसी को दु:खी नहीं किया। असाता कर्म के उदय ने दुख दिया है। भैया, वैराग्य की बात करना वस्तुस्वभाव को लक्ष्य रखना देह को सुखाकर मत बैठ जाना।

(379)

आप धर्म की चर्चा में धर्म मान रहे हो और भटक रहे हो। अभी विषय-कषायों में ही भ्रमण चल रहा है।

साधना के मार्ग में स्वसंवेदन का घी नहीं लगा, तो क्रिया शून्य हैं।

जो क्रिया भाव शून्य हैं, वह प्रतिफलित नहीं होती।

ज्ञानी! तुम आज तक मरते-मरते जी रहे हो। अब से जीते-जीते जीना प्रारंभ कर दो। जिसकी आत्म ज्योति नित्य उदीयमान है - ऐसा जीव आत्मा सिद्धि को प्राप्त होगा।

ज्ञानी! साध्य की सिद्धि चाहिए तो रत्नत्रय की सिद्धि करनी पड़ेगी भाव से। एक द्रव्य श्रुतागम है पेड़ा हाथ पर रखा है सोच रहा है एक भाव श्रुतागम जो पेड़ा खा रहा है।

(380)

हे ज्ञानी! तू कहता है अभी काललब्धि नहीं आई।

तू पंचेन्द्रिय है न, संज्ञी है न, कर्मभूमिया जीव है न, जाग रहा है न, जिनवर, जिनवाणी, जिनगुरु का आज निमित्त है न। यही काललब्धि है, यह आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में कहा है।

क्या अब तेरे पुरुषार्थ का दोष नहीं है?

जब तक इस आत्मा के द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म मेरे हैं - ऐसी बुद्धि है, तब तक यह आत्मा प्रतिबद्ध (अज्ञानी) है जो सत्यार्थभूत अवस्था है, उसे ज्ञानी ही जान सकता है।

(381)

हे ज्ञानी ! शरीर नरक नहीं ले जाता, स्वर्ग नही ले जाता, सिद्ध नहीं बनाता निगोद नहीं ले जाता। हाँ स्वस्थ शरीर से निर्दोष संयम कर पाता। नौकर्म को सुरक्षित रख नहीं सकता, परभाव कर्म को सुरक्षित रखना मेरे अधिकार में है, देह को सुरक्षित नहीं कर पाओगे, पर परिणामों को सुरक्षित कर सकते हो। भावकर्म के अनुसार नोकर्मों में परिणमन होता है, भावकर्म नोकर्म को बदल देता है।

द्रव्यकर्म और नोकर्म को बदलने का कोई आलम्बन है, तो भाव कर्म है, शरीर का रक्त भी शुद्ध होता है उसका, जिसके भाव विशुद्ध होते हैं, भगवान के सर्वांग में जो रक्त होता है, मैं सफेद होता है गुस्सा करने से शरीर में जहर फैलता है।

(382)

उत्कृष्ट साधना कोई है तो वह है मौन। यदि परिणति पवित्र हो जाए तो नारकी भी तर जाता है तू तो ज्ञानी है, आयु कर्म के निषेको को भोगों की गंदगी में, दूसरों की निंदा में क्यों नष्ट कर रहा है।

गुरुओं के पास, धर्मात्माओं के पास रहने से स्वतः असंख्यात गुण-श्रेणी कर्मों की निर्जरा का लाभ मिलता है।

अब तो 60 साल के हो गए हो कनेक्शन काट दो विषय-कषायों से, रिश्ते-नाते से, मन को, समय को जिनवाणी से जोड़ दो। मुमुक्षु ! भावकर्म सम्भालो आज से, अभी से।

383

ज्ञानी, शिव सुख चाहता है तो सम्यक्त्व की भावना करो। सम्यक्त्व वह अनमोल रतन है जो ज्ञान एवं चरित्र को चमक प्रदान करता है। सिद्ध बनना है तो पहले श्रद्धान को सम्यक्त्व करना होगा। श्रद्धा के अभाव में साधना भी व्यर्थ है।

आत्मानुशासन में जीव जीने लग जाए तो उसे किसी अनुशासन की आवश्यकता नहीं है न ही उसे पश्चाताप की जरूरत है।

जो 'सम्यदृष्टि' है वास्तव में वो ही पंडित है।

जो श्रमण परिग्रह से, परिचय से दूर है वो ही शुद्धोपयोग से युक्त है।

384

भव्यों के भाग्य के नियोग से भगवान का विहार होता है, भगवान तभी बन पाएगा, जब राग का विसर्जन होगा (वर्धमान का राग, गौतम को कैवल्य से रोके रखा)

श्रमण दिन में एक बार नहीं, 3 बार प्रतिक्रमण करते हैं।

ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है, अतः ज्ञानाभ्यास निरंतर करते रहो।

श्रुत की भावना से तप संयम होता है, समता भाव से वैराग्य होता है।

'आत्मज्ञानं प्रधानं' आत्मज्ञान ही प्रधान है इन्द्रिय सुख का राग आचार-विचार दोनों को नष्ट कर देता है।

(385)

जिसे तुम देख रहे हो, वह सब पर समय है, जिसे तुम सोच रहे हो, वह सब पर समय है, वेदों में दिगंबर मुनि को उपनिषद कहा है यानी उप+निषद यानी आत्मा के समीप बैठना इसका नाम है।

रत्नत्रय धर्म में जिसका गमन होता है, रत्नत्रय धर्म में जो लीन होता है, वही समयसार है, न ग्रंथ समयसार है, न व्यक्ति समयसार है निज ध्रुव आत्मा की लीनता ही समयसार है। संसार में यदि दुख का कोई मूल है तो देह में आत्मबुद्धि का होना आत्मा को जानना है तो दुनिया को जानना बंद कर दो। भगवानात्मा को पाना है तो कर्म की मिट्टी हटा दो और कुछ मत करो।

(386)

स्वसमय कौन ? जिस समय श्रमण अपनी स्वानुभूति में लीन होता है वही उसका स्वसमय है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थान वाले ही बहिरात्मा हैं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जघन्य अंतरात्मा हैं। 5वें से 11वें गुणस्थान तक मध्यम। 12वें गुणस्थान वाले उत्तम-अंतरात्मा। 13, 14 गुणस्थान वाले परमात्मा हैं।

यह गुणस्थानों की अपेक्षा आत्मा का वर्गीकरण है।

भवनत्रिक देव जन्म से मिथ्यादृष्टि होते हैं परंतु अन्तर्मुहूर्त के बाद सम्यक्त्व होने की योग्यता रखते हैं। कल्पवासीदेव मिथ्यादृष्टि भी होते हैं। सम्यग्दृष्टि भी होते हैं।

387

हीरा देखा कभी? हीरे में चमक कहाँ से आई? जब खदान से निकलता है तो मलिन होता है, चमक उसमें भरी नहीं गई। उस हीरे में स्वतः चमक है, मलिनता हटाई गई है।

इस आत्मा में कर्मों की कालिमा जो अवस्थित है, उसको अलग कर दो। उसको तराश दो, यही भेदविज्ञान है, जब ज्ञान, ज्ञान को पहचान लेता है, वहीं से आनंद आना प्रारंभ हो जाता है।

निबंध का जो आनंद है, वह जगत में कहीं नहीं है।

388

बहुत दिन हो गए, दुनिया को देखते-देखते अब तो देखन हारे को देखना शुरू कर दो अपने को संकुचित करके, जिनवर की, गुरुओं की, मुनिवरों की ज्यादा से ज्यादा शरण लेना शुरू कर दो। अपने परिणामों को उपशमित रखो।

सत्य यह है कि राग में जीव समझ नहीं पाता, जब राग हटता है तो सत्य समझ में आने लगता है।

हे आप्त! या तो आपकी शरण हो या मेरी आत्मा मेरी शरण में तीसरी मेरी शरण कोई है ही नहीं।

आप्त और अप्पा के अलावा तीसरे की शरण में जो जाए तो बहिरात्मा।

389

आश्चर्यचकित होना, यह दोष है चमत्कार को नमस्कार नहीं करना जितना विशुद्ध परिणाम होगा, उतनी श्वांसों की गति मंद होगी।

जीवन अनंतकाल से संसार में भ्रमण कर रहा है किंतु उसे सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ, जब तक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होगा, जीव दुखी ही रहेगा।

क्लेश आए तो अशांति है और अशांति में सुख कभी होता नहीं। शिथिलता का नाम वैराग्य नहीं है विरक्ति का नाम वैराग्य है।

390

चतुर्थकाल में की मायाचारी का प्रमाणपत्र है कि पंचम काल में बैठे हो। निज के द्वारा निज की दुर्गति स्वीकार है। क्या ? निज के द्वारा निज की सुगति स्वीकार नहीं - आश्चर्य है मत करो अपना बुरा, करो अपना भला।

आज से निज की उन्नति में लग जाओ, उसकी उन्नति के लिए दिन-रात सोचो। आज तक देह की, पर्याय की उन्नति के लिए ही सोचता रहा है। हे ज्ञानी! जिनकी तुम भक्ति कर रहे हो वह 'बन चुके' भगवान हैं।

जो तेरे अंदर विद्यमान है वह कल होने वाले भगवान हैं, उसको सिद्धालय तक पहुँचाना तेरा कर्तव्य है हर पल, हर श्वांस उस को समर्पित कर दे। तेरे जीवन का ये ही सार है, ये ही समयसार है।

391

ज्ञानी! जैनदर्शन की यदि कोई श्रेष्ठ साधना है तो वह 'ध्यान' है जीवन में महत्त्वशाली कोई वस्तु है, उसका नाम 'आस्था' है ज्ञानी! सम्यक्त्व जो परिणति है, समकित जो भाव है जहाँ इनकी रक्षा नहीं वहाँ समत्वाचरण नहीं।

ज्ञान को पाए, वृद्ध अपनी समाधि के लिए, युवा अपनी सामायिक के लिए।

समभाव, हाथ में हाथ मिलाने से नहीं आता। अपना खून दूसरे को दे देने से भी नहीं आता। यह तो राग दृष्टि है।

जहाँ समभाव है, वहाँ विवेक है वहाँ त्याग है, वहाँ संयम है।

392

सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन प्राप्त करो यह चिल्ला रहे हो।

सम्यग्दर्शन से पहले चारित्र का पेट बढ़ा करो, साम्यभाव को प्राप्त करो यह कोई नहीं कर रहा।

फिल्टर का पानी, बोतल का पानी आज पिया जाता है, क्या अहिंसा का पालन हो रहा है। एक लोटा पानी से नहा भी लिया और कपड़े भी धो लिए। कैसे? कपड़े पर बैठ गए, ऊपर से लौटे से नहाना शुरू किया, नहा भी लिया, कपड़ा गीला हो गया, उठाकर निचोड़ लिया, सुखा दिया।

गरीब नहीं थे वह, पंडित थे धनवान थे। बस अहिंसा का पालन जो करना था। ज्ञानी! जितना अधिक बहाओगे, उतनी ज्यादा हिंसा होगी।

(393)

ज्ञान हुआ, श्रद्धान हुआ पर आत्मनुभूति करने का ज्ञान नहीं किया।

पदार्थों का ज्ञान किया क्यों? 'धम्मं भोग णिमत्तं।'

धर्म को भोग के निमित्त से कर रहा है कर्मक्षय के लिए नहीं कर रहा है।

भगवान के मुनिराज के चरणों में बैठा है, प्रार्थना कर रहा है मेरी ख्याति फैल जाए, धन की वर्षा हो जाए। आत्मानुभूति रहित जीव का ज्ञान और श्रद्धान गधे के सींग के समान है। आत्मा का ज्ञान करके, श्रद्धा करके, उसकी अनुभूति लेते ही तो मोक्ष हो जाता है।

(394)

जहाँ धन वृष्टि है वहाँ आत्म दृष्टि कहाँ? धर्म क्यों कर रहा है? भोग के लिए, नाम के लिए। क्षायिक सम्यक दृष्टि श्रावक यदि निर्दोष चर्या का पालन करें तो 16वें स्वर्ग तक जा सकता है 'सम्यग्दृष्टि नियते भवति ज्ञान वैराग्य शक्ति' सम्यग्दृष्टि जीव में ज्ञान और वैराग्य शक्ति नियम से होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव बाजार में सब्जी लेने जाएगा तो पालक और लौकी में लौकी को खरीदेगा।

आज धर्म-कर्म क्षय के लिए नहीं हो रहा है। धर्म आत्म कल्याण के लिए होना चाहिए। जिसे आप कर्तव्य भाव कहते हो वह पराधीनता है।

395

इन ईंट चूने में भवन तो बन जाएगा, पर आत्म भवन नहीं बनेगा। रत्नत्रय की साधना भवनों से, और भवनों में नहीं होती। वह साधना तो शुभ भावों से होती है।

ज्ञान आत्मा में, दर्शन आत्मा में, चारित्र आत्मा में है, इसलिए तीनों आत्मा ही हैं यह अभेद दृष्टि है।

जो आत्मा को भावे, आत्मा को साधे वही साध्य है, बिना व्यवहारनय के निश्चित रत्नत्रय नहीं होता।

जब तक पाँच पापों का त्याग नहीं करोगे, तब तक पाँच व्रतों को धारण नहीं करोगे, तब तक वीतराग चारित्र प्राप्त नहीं होता। उसके बिना रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं है।

396

'दोष वादे च मौनम्' दोष आने पर मौन ले लेना। तत्त्व चर्चा हो तो मुखर हो जाना। समझ ना आए, सुन रहे हो कोई बात नहीं, अगली पर्याय में समझ आ जाएगा। शरीर का धर्म सबको दिखता है मोह का नाश, शरीर के धर्म से नहीं होगा। भव का नाश परिणामों के धर्म से होगा।

शरीर का उत्तम से उत्तम धर्म स्वर्ग तक ही दे सकता है

शरीर धर्म के साथ, आत्म का धर्म ही करना होगा। व्रत, नियम, संयम के साथ सम्यक्त्व की प्राप्ति अनिवार्य है, वरना सार नहीं।

397

परभावों से रिक्त होकर साधना है तो उससे बड़ा आनंद कोई नहीं है। आचार्य कुंदकुंद कह रहे हैं दृष्टि जब तक पर दृष्टि है यानी पर्याय दृष्टि, तब तक मिथ्यादृष्टि।

एक ज्ञान वह है जो जान कर जाना जाता है। एक ज्ञान वह ज्ञान है, जो अनुभव करके जाना जाता है।

सत्यार्थ ज्ञान, अनुभव ज्ञान है जब तक पर ज्ञेय के लिए स्थान है तब तक संपूर्ण ज्ञान तो अज्ञान है यह समयसार है। जब ज्ञान में पर-ज्ञेय हो तो वह अशुद्ध ज्ञान है, मिस्र धारा है।

आत्म ज्ञान होता है, जितने ज्ञान में पर-ज्ञेय-भाव का अभाव है।

398

ज्ञानी! जो रत्नत्रय के बिना मोक्ष जाना चाहते हैं तो शुरुआत ही गड़बड़ है। नित एक भक्त पूजन करने आया, प्रतिमा दिख रही है निज में परमात्मा नहीं देख सका। धिक्कार है, तेरी व्यवहार भक्ति भी शुद्ध नहीं।

मुमुक्षु प्रतिमा में भगवान आत्मा को देखता है, निज में परमात्मा को देखता है।

आचार्य कल्पश्रुत सागर महाराज के अंतिम समय, कई विद्वान पहुँचे बोले, आप हमें कोई संदेश दीजिए उन्होंने कहा बहुत समय समाज को दिया अब निज में रहना चाहता हूँ और आप भी इस तरफ ध्यान दें।

399

संसार, शरीर, भोग इनसे उदासीनता का होना वैराग्य है, वैराग्य ही चारित्र की जननी है, वैराग्यविहीन चारित्र विधवा का शृंगार है, अनासक्ति का आनंद एक वैरागी को होता है रागी को नहीं। वैराग्य के साथ किया गया तप ही कर्म निर्जरा का साधन है।

भोजन मात्र त्याग दिया, परिग्रह से आसक्ति है, वह श्रम मात्र है निस्पृहता ही गुणगान है, उसका चारित्र विशुद्धि से युक्त होता है, निःसंगति ही साधुता है।

दीर्घ संसारी जीव को सम्यक् तत्त्व, त्रैकालिक आत्मा पर न आस्था होती, न रुचि होती, आत्मा की बात सुहाती नहीं।

400

ऐसा कौन-सा कृषक होगा, जिसे बीज में फसल नहीं दिखे, यह द्रव्यदृष्टि है इसी प्रकार से अशुद्ध आत्मा में बंध्य आत्मा के निर्ग्रंथ दशा का ज्ञान हो जाता है, यह द्रव्यदृष्टि का नाम है पुरुषार्थ उसे प्रकट करता है, जैसे किसान करता है यह चरित्र है।

माँ ने गेहूँ की रोटी देखी जब ही तो पुरुषार्थ कर रोटी बना दी। समझने वाले को समझना है, यदि उसे नहीं समझा तो कुछ नहीं समझा। उसे समझ लेना, यही तो समयसार है। आत्म ब्रह्म में की सिद्धि परभावों से संभव नहीं है।

(401)

भो ज्ञानी ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप परिणत नहीं होता, लेकिन एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को सहकारी अवश्य होता है। मिथ्यात्व से भरा ज्ञान, भगवान की वाणी को समझने में असमर्थ होता है, मुँह का बिगड़ा स्वाद, दूध को कड़वा कहता है।

संक्लेशता की आग अंदर लगी है तो तीर्थंकर भी नहीं समझा पाएंगे।

मंदिर में जाने से कल्याण नहीं होता, मन मंदिर में जाने से कल्याण होता है।

जब तक ममकार है तब तक सुख नहीं, जब तक आर्त्त- रौद्र ध्यान है, सम्यक्त्व नहीं, मुक्ति नहीं।

(402)

25 दोषों से रहित, जिसके अंतरंग में सात तत्त्वों पर आस्था है, वह व्यवहार सम्यग्दृष्टि है प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य के परिणाम जिसके अंतरंग में है, वह व्यवहार सम्यक दृष्टि है।

आत्मविशुद्धि जिसके अंदर ज्वलित हो गई है, वह निश्चय सम्यग्दृष्टि है, वह वीतरागी सम्यग्दृष्टि है।

धन्य हैं वे जीव जिन्होंने मिथ्यात्व का भेदन कर चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त किया है, वह जीव संयम के अभाव में भी देवेंद्रों से सम्माननीय हैं, उस जीव के साथ यदि समता, सामायिक, संयम जुड़ जाए तो कितनी महिमा होगी।

403

जिन शासन ज्ञान की पूजा नहीं करता, जिन शासन शुद्ध चारित्र की पूजा करता है। 'चारितं खलु धम्मो', 'धर्मस्य मूलं दया'।

एक बार जिसने मिथ्यात्व को सिर टेक दिया, उसे एक साथ एक लाख वेश्या के व्यभिचार में जो दोष लगता है, उतना पाप का बंध हो गया।

'पर्याय दृष्टि नरकेश्वर, द्रव्य दृष्टि महेश्वर।'

निश्चय से निर्मल आत्मा ही 'समय' है जैसे अग्नि विशाल वन को नष्ट कर देती है उसी प्रकार सम्यक्त्व सर्व कर्मों को नष्ट कर देता है।

धर्म और धर्म के फल में हर्ष-चित्त होना उसका नाम संवेग भाव है जो सम्यग्दृष्टि जीव को होता है।

404

जहाँ एक है आनंद है जहाँ दो है आनंद नहीं, जो बंध की कथा है वह द्वैत कथा है।

जिस देश में, जिस काल में, जिस विधान से, जो कार्य होना निश्चित है ज्ञानी।

'इन्दोवा जिणिन्दो वा' उसको इंद्र-जिनेन्द्र टाल नहीं सकते भवितव्यता की शक्ति अलंघनीय नहीं है।

कोई भी हानि हो जाए, लेकिन विवेक की हानि मत करना। मिथ्यात्व का अंधकार दूर करना, सम्यक्त्व का दीप जला लेना।

(405)

साधुता की प्राप्ति चाहिए, तो केवल अच्छाई को स्वीकार करना सीख लेना। बुराई को बुरा समझ कर लेना बुरा मत मानना।

बुरा मानते रहे बुराई करते रहे इस कारण पंचम काल में आए हो आज भी नहीं संभले, तो छठवें काल में चले जाओगे।

अपना इष्ट चाहते हो तो पर से लिपटना पर को लपेटना बंद कर दो, संसार से पार होना चाहते हो, तो मिथ्यात्व से ममकार छोड़कर सम्यक्त्व को प्राप्त करो।

आचार्य कुंदकुंद कह रहे हैं 'सुद्धं सम्म हंसण'। ज्ञानी! जब तक शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी, तब तक सुख नहीं मिलेगा।

(406)

सम्यक्त्व की आराधना करके, पर से निरपेक्ष होकर के, संयमी बनकर स्वयं में लीन होकर, एकांत में साधना करेगा तो संसार दुखों से बच जाएगा। यदि परिवार को साथ लेकर, परमात्मा बनने का प्रयास करोगे, तो कभी नहीं बन पाओगे।

जिसको मोक्ष की भूख सताती है, उसका तत्त्व निर्णय स्व-मुख की ओर हो जाता है पर-मुख की ओर नहीं जाता है। संसार में रहना कोई बुरी बात नहीं, लेकिन संसारी होना बुरी बात है, मोही होना बुरी बात है।

407

मंदिर में चढ़ाया द्रव्य निर्माल्य में हो गया, उसे उठाने का क्या मन करेगा? इसी तरह घर, परिवार का त्याग कर दिया, वह भी निर्माल्य हो गया उसे उठाने का मन करेगा?

जैन शासन अनुभूत है जहाँ दो प्रकार के जीवों का वर्णन है एक तपस्या के लिए चक्री पद छोड़ रहा है दूसरा विषय-भोग, मान-सम्मान के लिए, नियम-संयम-तपस्या को छोड़ रहा है। आचार्य कुंदकुंद प्रवचनसार में कहते हैं जिस जीव का भेद-विज्ञान जागृत हो गया है वह भव्य जीव दीक्षा का परिणाम बनाना शुरू कर देता है और वह जिन दीक्षा विदेही की प्राप्ति के लिए करता है। आज श्री के राग में श्रीजी को भुला देते है।

408

धन से धर्मात्मा की पहचान मत करना, नाम से साधु की पहचान मत करना।

निर्ग्रंथ की पहचान, आकिंचन धर्म से है दुनिया की सारी उपाधियाँ परिग्रह ही हैं, इनमें राग बढ़ गया तो समाधि भंग हो जाएगी। आडंबर में दिगंबरत्व होता नहीं है। हे प्राणी ईर्ष्या करके अपने पुण्य को क्षीण कर लोगे।

ज्ञान में विवेक जब प्रवेश कर जाता है ये ही विवेक, भेदविज्ञान अवस्था को प्राप्त होता है, यानी भेदविज्ञान अवस्था ही विवेक है।

(409)

आज ज्ञानी कहते हैं मैं संसार में रहकर के आत्मा का स्वाद ले रहा हूँ, जैसे दाल खाने वाला कहता है, मैं दाल का स्वाद ले रहा हूँ, भाई तूने तो दाल का स्वाद कभी चखा भी नहीं। मसालों से, घी से मिक्स दाल को खाकर, दाल का स्वाद कहता है।

आनंद में जीवन पुण्य के उदय में जी रहा है विषय-कषाय का स्वाद ले रहा है आत्मा का स्वाद तो चिद्स्वभाव है जो अकषायिक भाव है।

कोई कहता भगवान की भक्ति करते आत्मा का आनंद आ रहा है नहीं यह भगवान से राग का आनंद है।

अद्वैत को जिसने समझ लिया, वह द्वैत में प्रवेश नहीं करेगा। जहाँ जहाँ द्वैत हैं, वहाँ वहाँ द्वंद है, अद्वैत ही एकत्व-विभक्त सुंदर स्वरूप है।

(410)

यदि यह कह रहे हैं आत्मा कर्ता, भोक्ता नहीं, ज्ञाता-दृष्टा है तो यह भी एकांत से सत्य नहीं, कथंचित सत्य हैं यदि इसे पूर्ण सत्य मान लिया जाए तो घर नहीं जा पाओगे। घर के ज्ञाता-दृष्टा हो, कर्ता नहीं, तो घर किसके आओगे। ये जीव न कर्ता ना भोक्ता, वह ज्ञाता-दृष्टा शुद्ध निश्चयनय से है, व्यवहार से तो करता भी है और भोक्ता भी है। व्यवहार में करके भोग रहा है।

(411)

जैनदर्शन क्या ? विधानों का क्रियाकाण्ड का, पुण्य-पाप का धर्म है अहिंसा परम ब्रह्म है – 'अहिंसा परमो धर्म है।'

आज सूखा अध्यात्म आ गया है आत्मा व पुद्गल की बात कर लो, करणानुयोग वाले कहते हैं, कर्म प्रकृति की बात कर लो। जब निज की प्रकृति ठीक नहीं है तो कर्म प्रकृतियों की बात करने से तू क्या कर पाएगा ? प्रकृति की चर्चा से, प्रकृति का नाश होगा या अपनी प्रकृति को बदलने से प्रकृतिओं का नाश होगा ? ओहो, बड़ी गहरी-गहरी चर्चा हो जाती है और मालूम चला कि बेचारे गिद्ध-भोज में खड़े हुए हैं।

(412)

भो ज्ञानी ! हमारे यहाँ भेद से अभेद की ओर जाया जाता है, अभेद से भेद की ओर नहीं जाया जाता है।

सौंफ, इलायची, बादाम, मिश्री, पानी ठण्डाई नहीं है, पर इनके बिना ठण्डाई होते नहीं हैं। सबको मिलाकर पीस देंगे तो क्या हो गया ? ठंडाई। जितने भेद हैं सबको मिला देगा, यही अनेकांत दृष्टि है यही ठण्डाई है, यही पीने लायक है जहाँ आत्म रुचि नहीं। जहाँ आत्म प्रतीति नहीं, वहाँ सम्यकत्व नहीं। जीव जिस गुण को प्राप्त होता है, उसकी अनुभूति उसे पहले होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव प्रतिक्षण संवेग भाव से युक्त होता है, किंचित् मात्र भी निज के स्मरण को विस्मृत नहीं होने देता है।

(413)

भैया! यदि कहीं जिनवाणी चल रही है और तेरे मन में ईर्ष्या चल रही है तो जनवाणी सुनाई नहीं देगी।

जो छिप-छिप कर दूसरों के दोष देखते हैं, उन परिणामों से छिपकली की पर्याय मिलती है सुख कहाँ है? इस भ्रम को निकाल देना कि 'परवस्तु' में सुख है। यह सत्य है कि पुण्य का उदय, साता का उदय चल रहा है तो काली रात्रि भी आनंद दे रही है और असाता का, पाप का उदय है तो चंद्रमा की शीतल चाँदनी भी तुझे झुलसा रही है।

तीर्थंकर कुल में जन्म लेने से भी कल्याण नहीं होता, मत समझ लेना जैनकुल मे पैदा हो गए तो कल्याण हो जाएगा। कल्याण तेरा परिणामों की विशुद्धि से होगा, सम्यक्त्व-संयम की प्राप्ति से होगा।

(414)

परिवार से मुक्त हो गया, व्यापार से मुक्त हो गया, समाज से मुक्त हो गया, संक्लेशता से मुक्त नहीं हुआ समझ मोक्षमार्ग अभी शुरू नहीं हुआ।

'माधुर्य गुण प्रीति' भावों में, वचनों में, व्यवहार में मधुरता लाइए।

आचार्य कुंदकुंद कह रहे हैं, जो मन-वचन-काया की विशुद्धि पूर्वक धर्म ध्यान का अभ्यास करता है, वह परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है और कर्मों का क्षय करता है।

(415)

पंचपरावर्तन से बचना है तो पंचपरमेष्ठी को भजो तथा 5 पापों को तजो।

जगत में जितने दुखी हैं, जितने दुख मिलते हैं, सब सम्यक् के बिना मिलते हैं और जितने सुख हैं वह सारे सुख सम्यक् से ही मिलते हैं।

'सम्यक्त्वहीन ज्ञान और क्रिया संसार के कारण हैं' जितने अंश देशविरत, उतने अंश आस्रव का अभाव हुआ, जितने अंश साम्यभाव उतने अंश पुण्य का बंध एवं कर्म निर्जरा।

सिद्ध शिला पर बैठकर भी आ गया पर सिद्ध बनकर नहीं, निगोदिया बनकर।

भैया, एक बात बता, तेरे घर का आनंद, अपनापन तुझे आता है ना, क्या वही आनंद, अपनापन उस नौकर को भी आता है जो तेरे साथ तेरे घर में रहता है।

(416)

बारह भावनायें वैराग्य की जननी हैं, जो परिणाम भवनाश के हो उसका नाम भावना। भावना होती है तो तत्पदार्थ को प्राप्ति का पुरुषार्थ करता है, वह पुरुषार्थ द्रव्यलिंग है, उसका नाम चरित्र है, द्रव्यलिंग धारण करके शुद्धि-विशुद्धि पूर्वक जो निरतिचार पालन करता है, उसका नाम भावलिंग है, एक बार भावलिंग धारण कर लिया तो नियम से स्नातक बनेगा। 13वाँ गुणस्थान स्नातक का है।

(417)

जिसे तूने आज धारण किया है, उसे तो तुझे छोड़ना ही होगा। जिसे आज तक स्वीकारा नहीं और जो तेरे हैं उसे स्वीकारना होगा। कस्तूरी कहाँ है नाभि में है, खोज रहा है जंगल में। निज का भगवान तेरे अंदर है खोज रहा बाहरी तीर्थों में।

हे मुमुक्षु! बाह्य की आंख बंद कर के, भीतर की आँख खोल ले, तब तुझे पता चल जाएगा, तेरा चैतन्य भगवान कहाँ विराजा है। मुनि अंदर झांकने के लिए बना जाता है, अंदर कस्तूरी पाने के लिए बना जाता है क्या कुछ और करना होता है एक मुनि को।

(418)

मिथ्यादृष्टि जीवों का घात करते हुए भी कहेगा, मैं धर्म कर रहा हूँ।

याद रखना जो तेरा होता है, वो कहीं जाता नहीं। जो जाता है वो तेरा होता नहीं। जो है, सो है, चाहे आये, चाहे जाए।

जो मेरा है वह निज चतुष्टय धर्म है, वो मेरे से अलग होता नहीं।

जो मेरे से अलग होता है, वह मेरा धर्म होता नहीं।

निंदा में कूलना नहीं।

प्रशंसा में फूलना नहीं।

यह तत्त्वज्ञानी की पहचान है।

419

सात प्रकृतियों का क्षय-क्षयोपशम जिसका होता है, उसका नाम सम्यग्दृष्टि होता है जिसका नहीं, वह मिथ्या दृष्टि होता है। सम्यग्दृष्टि जीव स्वभाव-विभाव का भेद जानता है, भेदरूप देखता है 'पर' में अपनापन नहीं रखता। व्यवहार से उसे अपना ही कहता है मिथ्यादृष्टि स्वभाव विभाव में, निज-पर में भेद नहीं करता है।

स्वभाव दृष्टि से देह मेरा धर्म नहीं है चैतन्य को चैतन्य स्वीकारना मिश्र को मिश्र स्वीकारना यह अंतरात्मा का धर्म है। द्रव्य प्राणों का जो वियोग है वहीं जीव का बंध है, यह कहकर कोई किसी को नहीं मारता-अनर्थ मत कर देना - अनुव्रत-महाव्रत जो पालन हो रहे हैं, वह मिश्र की रक्षा के लिए है।

420

पंचम काल की सबसे बड़ी तपस्या यह है कि तुम खुली आँखों से अपने कानों से दूसरे की प्रशंसा करो, सुनो और देखो। प्राणियों भले ही कुछ उपवास कम कर लेना, दूसरे का उत्कर्ष एवं स्वयं के अपकर्ष को सहन करने की शक्ति उजागर करो। जब तक मोक्षमार्ग बहुत दूर है, ऐसी क्षमता बढ़ाओ।

जिनशासन में जन्म लेकर, अनेक प्रकार के पक्ष में, भेदों में, क्रियाओं में जी रहे हो, इससे मात्र मन कषायी ही होगा।

421

ज्ञानी ! जो धर्म को कर्तव्य मानकर करेगा, वह धर्म से दूर रहेगा।

'धर्म' को 'धर्म' मानकर करेगा, वो ही 'धर्म' करेगा, वो ही ऊँचा जायेगा। आपने दीक्षा ग्रहण करी, प्रतिमा धारण करी, समाज के लिए या अपने लिए। अज्ञानता से धारण किए गए चरित्र ने, अनेक श्रद्धावन्तों की श्रद्धा को अश्रद्धान में बदल दिया। व्यवस्था कैसी भी हो, भाव तुम्हारे साम्य होने चाहिए। ज्ञानी ! साम्यभाव ही धर्म है। आचार्य कुंदकुंद कहते हैं मोह व क्षोभ से रहित जो आत्मा का साम्य-परिणाम है वह धर्म है।

422

आत्म राजा को जानो, उसका श्रद्धान करो, फिर अनुसरण (अनुचरण) करो, तब मिलेगा मुक्ति धन। ज्ञानी ! सामायिक क्यों नहीं हो रही है ? क्योंकि जगत को जानने का विषय बना रहा है निज ज्ञान को उसकी अनुभूति में ले जाएगा, तो नरक में जाएगा।

ज्ञान को प्रयोग में ले जाने का नाम आचरण है तू तो ज्ञान को बाह्य ज्ञेयों मे ले गया है।

वर्षों तक स्वाध्याय किया, भक्ति की, मुनियों की वैयावृत्ति करी। कभी विचार किया कि अपने ज्ञान से अपने ज्ञाता को जानूँ ? तूने आत्मा के गुण से बाह्य को जाना है इसलिए स्वात्मानुभूति को नहीं जाना।

423

ज्ञानी ! शरीर तो अपने आप ही बदल जाएगा, परिणति को बदलो।

मेरी आत्मा जो बोल रही है, उसे जान लो तो बोलना बंद हो जाएगा 'मैं सिर्फ मैं हूँ।'

चिदानंद स्वरूप ही वीतराग स्वरूप है इसको प्राप्त करना आसान नहीं। बहुत बहुत कुछ करना पड़ता है।

नगर छोड़ने से केवल मोक्ष नहीं मिलता। मुनि बनने से केवल मोक्ष नहीं मिलता। निर्ग्रंथ, अंदर की ग्रंथि खुलेगी, तब मोक्ष का द्वार खुलेगा। ज्ञानी ! जब तक अनुभूति में नहीं आ रहा, तब तक सम्यक्त्व बहुत दूर है।

अनुभूति के बिना स्वाद कैसा ? स्वाद के बिना आनंद कैसा ?

424

समयसार का ज्ञानी कौन है ? जो कर्म-नोकर्म में राग नहीं करता, जिसका राग स्वानुभूति में रहता है।

इस आत्मा का यदि किसी ने अपमान किया है तो किसी अन्य जीव ने नहीं, कर्म-नोकर्म के प्रति राग की दृष्टि ने इसका महान अपमान किया है। कार्माण-वर्गणायें इस लोक में ठसाठस भरी हुई हैं, यह वर्गणाएँ किसी को बुलाती नहीं है कि आप आये। मात्र राग-द्वेष करने की आवश्यकता है वे कार्मण वर्गणाएँ तुरंत बंध को प्राप्त हो जाती हैं।

425

निज दर्शन-ज्ञान-चरित्र में स्थित होना ही 'स्व समय' है पर भावों में स्थित होना 'पर समय' है निःशंकित प्राणी 'स्व' में स्थित होता है मैं हूँ कैसा? पर-पदार्थों से अत्यंत भिन्न हूँ।

ज्ञानी! सबके बीच रहना, लेकिन निजी सत्ता को सबके साथ मिश्रित मत करना। गोपाल भी आत्मा को जानता है और जानने मात्र से काम बनने वाला नहीं है।

ज्ञानियो! वैराग्य बहुत कठिन है, व्यवस्थित राग में आनंद लूट रहे हो नाम 'वैरागी' है।

426

ज्ञानी! जहाँ सारे धर्म समाप्त होते हैं, वहाँ से जैनधर्म प्रारंभ होता है।

हे ज्ञानी! तू सोच रहा है मैं रात्रि में भोजन नहीं करता, 6 आवश्यक पालन करता, धर्मात्मा हो गया।

अभी धर्म को समझा ही कहाँ है? वस्तु का स्वभाव धर्म है, रत्नत्रय धर्म है, दया धर्म है किसी को भी तू क्या छू पायेगा?

अपने ज्ञान-वैराग्य को स्व-संवेदन का विषय बना कर चलना है तुझे।

मोक्ष के लिए 28 मूलगुणों का निर्दोष पालन ही नहीं, स्वात्मानुभूति के मोक्षमार्ग पर चलना होगा।

427

प्रत्येक जीव भगवान है सौपाधिक कषाई है वह जला रही है कषाय हट जाए, तो भगवान बन जाए।

जो आज कषायी है उनसे घृणा मत करना, ये ही भविष्य में भगवान होंगे। कल का मारीच, आज का महावीर बना जिसके व्यवहार में साम्यभाव नहीं, मृदुता नहीं, क्षमा नहीं, क्या उसे निश्चय सम्यक्त्व होगा?

धिक्कार है, 'पर' के राग में मिर्च में चरपरापन कम हैं, चेहरे पर ज्यादा है।

ज्ञानी! तू कहता, संसार में रहना है तो संसारी बनकर रहना होगा, तो समझ नरक में जाना होगा।

428

प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है तुम्हारा राग परतंत्र किए हैं।

गृहस्थ में रहकर चिंतवन करो कि एक मुनि दीक्षा लेकर पूरे जीवन क्या करते हैं क्या सोचते हैं?

बाहर से तो मुनि संसारी जीवों के बीच में रहते दिखते हैं, अंदर से कर्मों को काटा करते हैं, अंदर की साधना दिखती नहीं, वह ही कठिन है साधु बनकर मंदिर बनवाने में लग गए तो अशुभ आस्रव होगा।

व्यवहार में केवल 4 शरण हैं इसके अतिरिक्त गलती से भी किसी और की शरण मत लेना।

निश्चय से केवल एक निज शुद्धात्मा की ही शरण है।

429

जो संसार में असंसारी बनकर रहता है, वह संसार से उठकर साधना करता है वो ही एक दिन अशरीरी बन जाता है, कागजों का समयसार काम नहीं आएगा। यह द्रव्य श्रुत है, भाव श्रुत साधन मात्र है।

भावों की विशुद्धि ही काम आएगी। जगत से तो अनंत बार परिचय किया, आज निज से परिचय कर लो इसके लिए समयसार है

जगत को अपना बना लेना कठिन नहीं है यह तो राग है जगत में अपने बनकर रहना कठिन है।

समयसार ग्रंथ का राग भी समयसार नहीं दिला पाएगा। हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओगे तो कर्मों से मुक्त हो जाओगे, यह अप्रमत दशा की दशा है।

430

बंध को बंद करना है, तो प्रमाद को बंद करो। सम्यक्त्वा-चरण, संयमाचरण नहीं होगा, तो स्वरूपाचरण कैसे होगा।

तुम द्रव्य से बड़े बड़े मंदिर बनवा सकते हो परंतु शांति नहीं बनवा सकते। शांति को खरीदा नहीं जाता, वह तो स्वतः प्राप्त होती है।

सबसे कठिन, सबके बीच में रहकर पृथकत्वभाव का चिंतन करना है। निज की स्वतंत्रता का ज्ञान हो जाएगा तो दुख का एक क्षण भी नहीं आएगा, आँसू नहीं टपकायेगा।

(431)

जो–जो एकांत नय है सब मिथ्या है, झगड़ा इसलिए होता है कि अनेकांत का प्रयोग नहीं करते। देश, समाज, परिवार टूटने का कारण स्याद्वाद का बोध नहीं होना है।

गोपिका क्या करती है एक हाथ से खींचती है दूसरे को छोड़ती है तुम केवल खींच कर रखो, फिर निकालो मक्खन ? चाहे मोक्षमार्ग हो, चाहे संसार मार्ग हो, सभी जगह अनेकांत लगाना पड़ता है, आगम अविसंवादी होता है।

सम्यग्दृष्टि की दृष्टि नयदृष्टि होती है। ज्ञानी ! दो दृष्टि से रहित मत हो जाना (1) निश्चय दृष्टि, (2) व्यवहार दृष्टि।

(432)

शब्द शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है सारा जगत घूम रहा है इसके पीछे। जिनेंद्रदेव का शब्द ब्रह्म, महान शक्ति है कितनी पर्याय बदल गई, परंतु पर्यायी नहीं बदला।

रागादिक रहित अवस्था प्राप्त किए बिना, शुद्ध अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। आत्मा के मल को संयम से धोया जाता है कोई स्वयं के द्वारा बोध को प्राप्त होता है, कोई दूसरे के द्वारा प्रतिबोध को प्राप्त होता है, निर्मल मति के बिना लेखनी विशुद्ध चलती नहीं।

हे मुमुक्षु ! जामन भी खट्टा है, नींबू भी खट्टा है एक दूसरे को जमा देता है, दूसरा फाड़ देता है लेखनी में भी ये ही गुण हैं।

(433)

असत्य पर चलने वाला भी सत्य को जानता है, कषाय के तीव्र उद्रेक में असत्य छूटता नहीं है।

बिना निर्मलता के चेहरे पर प्रमुदित भाव नहीं आता, बिना प्रमुदित भाव के समाधिमरण होता नहीं। ज्ञानियो! जन्म की तैयारी करनी पड़ती है या मरण की? तुम्हारे हाथ में जन्म की तैयारी है या मरण की? सभी दर्शनों में मरण की कला यदि कोई सिखाता है तो जैनदर्शन ही सिखाता है, कोई किसी की निंदा करें, तो उससे पूछना नीच गोत्र का कारण क्या है? आत्मा के ग्रंथ को सुनने से ही परमात्मा बनने की सुध आएगी।

(434)

उत्कृष्ट तो यही है कि आत्महित करना चाहिए। सामर्थ्य है तो परहित भी करना चाहिए।

हे ज्ञानी! जब तू 80 वर्ष तक साधना करेगा, सामायिक करेगा, गंभीर तत्त्व का निर्णय करेगा, तो एक दो पल के लिए शुद्धोपयोग में जाएगा। शुभ-शुद्ध, शुभ-शुद्ध शुभ इसमें झूलते रहे।

आप समय ही नहीं देते, समय है ही नहीं आपके पास, अपनी आत्मा के लिए।

लोकाचार के लिए, कितना प्रयत्न करना पड़ता है, क्या-क्या छोड़ना पड़ता है। शिव-आर्थी के लिए कुछ नहीं, सारा संसार छोड़ना पड़ता है।

435

जीवन में आराधना का फल सल्लेखना है, यह सल्लेखना कब होगी। जब भेदाभेद की आराधना करोगे। बहिरंग तप, अंतरंग तप की आराधना के लिए किया जाता है।

चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव कषाय की तीव्रता से होता है।

शरीर सुखाने से पूर्व, कषाय सुखा देना। पुनः यदि कषाय हरी रही, तो छठा काल दूर नहीं संयम के पालन में कषाय मत पाल लेना। अभेद रत्नत्रय तो अंतरंग की साधना है आज ज्ञानी, निर्णय को निश्चय मान रहा है अफसोस।

436

हे ज्ञानी! तू तो अशरीरी भगवत् स्वरूपी ऐसे है पेपर में आपका नाम छप गया तो पर्याय-की-पर्याय पर खुश हो रहा है।

ज्ञानी! जानना पड़ेगा, भूल कहाँ-कहाँ हो रही है।

जो मेरा रूप दिखाई दे रहा है, वह जानने वाला नहीं है और जानने वाला है वह दिखाई नहीं देता, जिसे देख रहे हो वह मैं नहीं हूँ। मुझे देखने की तुझमें सामर्थ्य नहीं है, अब मैं किससे बात करूँ।

जिसका राख होना है, उसका राग सबको सता रहा है।

यह प्राणी शुभ और अशुभ दोनों अवस्था में राग को प्राप्त हो रहा है।

437

सारे जगत का नाटक दो के ऊपर चल रहा है - (1) कर्म (2) नोकर्म।

आश्चर्य तो यह है कर्मातीत के पास प्राणी कर्म की भीख माँगने आता है, तीन लोक के नाथ के चरणों में बैठकर तू संसार ही तो माँग रहा है।

सुकुल में जन्म मांगता है, देव बनना चाहता है लेकिन जन्म का अभाव नहीं चाहता, धन की वृद्धि चाहता है 'धन्य' नहीं होना चाहता।

जिनवाणी के ज्ञान का फल निर्वाण है संसार नहीं।

राग-द्वेष-मोह तथा बंध से निवृत्ति बहुत खोखली है।

438

स्व-पर भेदविज्ञान के अभाव में यह आत्मा संसार में भटक रही है। 'स्व' के लिए एक क्षण का विकल्प नहीं, सारे विकल्प पर-संबंधों के लिए हुए हैं। अहो ज्ञानी ! जैसे धूप में धन कमाने के लिए पसीना बहाना पड़ता है, ऐसे ही तप में बैठकर धर्म कमा लेता तो पसीना न बहाना पड़ता, 18 दोषों से रहित भगवान बन जाता।

मोह से आवृत्त व्यक्ति को ज्ञान होता कहाँ है ? भिन्नत्व भाव का, पृथक्त्व भाव का अभाव है हृदय में।

चारों अनुयोगों का घोट-घोट कर पी लीजिए, फिर भी शास्त्र ज्ञान आत्मज्ञान नहीं है, आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान।

439

अशुभ उदय में कहीं नहीं जाना, कुछ नहीं करना, मात्र भगवान के चरणों में आ जाना। सम्पूर्ण असाता को साता को संक्रमित करने का एक स्रोत भगवान का पादमूल है।

कोई किसी को लक्ष्मी नहीं देता, कोई किसी को उपकार नहीं करता, शुभाशुभ का उदय, पुण्य-पाप जैसा होता है, वैसा फल मिलता है। भिखारी बनकर रह लेना, लेकिन मिथ्यात्व के विकारों को स्वीकार मत करना। ध्यान रखना, सम्यग्दृष्टि कभी भिखारी हो ही नहीं सकता। याद रखना, लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से धन मिलता है।

440

तू क्या कह रहा है, कोई क्या कह रहा है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। जिन क्या कह रहे हैं फर्क उससे पड़ता है इसलिए किसी की मत मानना, अपनी भी मत मानना, जो जिन कह रहे हैं उनकी मानना। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है।

जैसे भाव आत्मा करता है, वह आत्मा उसी का कर्ता है, न मैं पर का कर्ता हूँ और न पर मेरा कर्ता है।

हे ज्ञानी! इस पर्याय को सब कुछ मत मानना, आज साता ही साता है, कल असाता नहीं होगा।

जिस दिन परम स्वतंत्रता का वेदन हो जाएगा, हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाएगा।

441

यदि ज्ञान से मोक्ष मानते हो तो तीर्थंकर हो 13वें गुणस्थान में संपूर्ण ज्ञान होता है तो उसी गुणस्थान में निर्वाण हो जाएगा। ज्ञान की पूर्णता से निर्माण नहीं होता, चारित्र की पूर्णता से निर्माण होता है। चारित्र (18000 शील) की पूर्णता होगी तभी मुक्त होगा। शुद्धात्मा की प्राप्ति की जानकारी का उपाय 'समयसार' है उसकी प्राप्ति के लिए 'मूलाचार' है उसकी स्थिरता के लिए 'करणानुयोग' है।

बाहर में क्या चल रहा है, यह दुनियाँ जानती है, अंदर में क्या चल रहा है यह केवल तू ही जानता है। जो गति बनाता है।

442

चारित्र शुभोपयोग की दशा है, शुभोपयोग से पुण्य बंध होता है, भ्रम निकाल दो।

तपसा निर्जरा च। तप से निर्जरा होती है राग रहित हो तो संवर होता है यह तप है।

वस्तु तो छूटी नहीं, राग कैसे छूट गया? वस्तु छूटे बिना राग कैसे छूट गया? यह तत्त्व का विपर्यास है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी स्वयं कह रहे हैं कि ज्ञान होना, होना मात्र नहीं है ज्ञान अनुभूति रूप होना है। जब तक बोल रहा है कि शुद्धात्मा हूँ, शुद्धात्मा हूँ, वह शुद्धात्मा नहीं है।

जो शुद्धात्मा हो जाता, वह बोलता नहीं है।

443

भव का अभिनंदन करना है कि आत्मा का अभिनंदन करना है, बड़े-बड़े अभिनंदन पत्र छप गए, पर आत्मा भटक रही है, संसार में शरीर का सम्मान हो रहा है आत्मा का अपमान हो रहा है।

लोग कहते हैं हम अहंकार नहीं करते पर स्वाभिमान को तो ठेस न लगे। भाषा बदल दी, अच्छे शब्द में बात आ गई। पूछो, कषाय चार होती हैं न, स्वाभिमान को किसमें डालेंगे? कितने काल तक परद्रव्य की अनुभूति जब तक लेता है, तब तक, उतने काल तक आत्मा अप्रतिबुद्ध ही है, अज्ञानी है।

444

द्रव्य कर्म दिखते नहीं, मानते हैं। तुम्हें अपने परिणाम समझ नहीं आते क्या? तुम्हें यह जरूर मालूम चलता है कि अंतरंग में परिणाम कैसे हैं ? वर्धमान के चरणों में पहुँचों अथवा न पहुँचो, परिणाम वर्द्धमान हो जाए तो तुम वर्धमान बन जाओ। परिणाम हीयमान हैं तो वर्द्धमान के चरण भी बचा नहीं पाएंगे, चरण पकड़ने से भगवान नहीं बनते, आचरण पकड़ने से भगवान बनते हैं।

अपने शुभाशुभ कर्मों का मैं ही कर्ता हूँ, मैं ही भोक्ता हूँ। द्रव्य कर्म नहीं दिखते लेकिन भावकर्म को देखिए।

445

'पर' तेरा कर्त्ता हो जायेगा, तो निज स्वतंत्रता का अभाव हो जायेगा। 'कर्म' आत्मा का स्वभाव नहीं है, इसलिए असद्भूत है। पर निमित्तिक होने पर भी कर्त्ता-भोक्ता पुद्गल नहीं, जीव है। ज्ञानियो! पुद्गल से, इन्द्रियों से भोगे जा सकते हैं, परन्तु पुद्गल, भोगों का भोक्ता नहीं है। द्रव्येन्द्रियाँ जड़ हैं, जीव की राग-दशा है। व्यभिचार, अनाचार सब कर लीजिए और धीरे से कह दीजिए।

ईश्वर की इच्छा है या कह देना कर्म उदय है। मेरा दोष नहीं है। मानते हैं कर्म उदय बलवान है, लेकिन वर्तमान पुरुषार्थ की अपनी सत्ता विद्यमान है।

446

संयम के लिए, व्रती बनने के लिए घर छोड़ना पड़ता है, श्रद्धावान बनने के लिए कुछ छोड़ना नहीं पड़ता है, जब तक शक्ति है, शक्ति का उपयोग करो, शक्ति नहीं है तो श्रद्धा करो। श्रद्धावान भी कर्मक्षय कर लेता है मिथ्यात्व जितना गहरा होता है उसे निकालने में भी उतना ज्यादा समय लगता है और कष्ट भी होता है।

ज्ञानी! संसार में अनादि से भ्रमण चारित्र से नहीं, दर्शन के विपर्यास से हो रहा है। देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति करना मात्र सम्यक्त्व नहीं है। घर छोड़ना आसान है मिथ्यात्व को निकालना बहुत कठिन है।

(447)

नो-कर्म (जन्म) के जनक माता-पिता हो सकते हैं, परभाव कर्म का मैं ही जनक, मैं ही जननी हूँ।

राग किसने किया ? मैंने, जनक कौन ? मैं। रागादि का चित्त में जैसे ही उत्पाद होता है वैसे जन्यकर्म का बंध प्रारंभ हो जाता है।

तेरे कर्म का जन्म तेरे भावों के अंदर के अंडे से होता है, ये विकार, विभाव ये काम, ये इच्छा कहाँ उत्पन्न हो रहे हैं, उनका योनि स्थान, जन्म स्थान कहाँ है उसका नाम चित्त है। श्रमण संस्कृति चित्त पर नियंत्रण करने की संस्कृति है, तन विकारी नहीं, विकारी तो आत्मा ही होती है तन तो विकारीपने को प्राप्त होता है।

(448)

ज्ञानी ! कर्म बंध पर्याय का नहीं, पर्यायी का होता है, हाँ कर्म बंध पर्याय में करता है, आस्रव व बंध पर्याय में नहीं, आत्मा में होगा, कर्ता व भोक्ता पर्याय नहीं है पर्यायी है, अतः ज्ञानी, परिणामों में सुधार करता है, भोजन करते नहीं सुधारा जाता, बनाते हुए सुधारा जाता है।

जो पुण्य भोग रहे हैं, जो आयु भोग रहे हो, वे पुण्य सुधार नहीं रहे, वे पुण्य बिगाड़ रहे हो।

हाँ जो वर्तमान में, तप, त्याग, संयम कर रहे हैं, भावों की विशुद्धि में लगे हैं, परिग्रह कम करते हैं। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय कर रहे हैं, वो पुण्य सुधार रहे हैं।

449

भिखारी वो है जो विकारी होते हैं, भविष्य के भगवान्! कहाँ तूने अपनी पर्याय को संयम की जगह, भोगों की नाली में लगा रखा है।

दुनिया के ऊपर दया, करुणा करता है अच्छा दिखता है, सब दिखावा है। सच्ची दया, करुणा स्वयं पर करना। मोती चुगने वाली हंसात्मा कहाँ कर्ममल के पिण्ड पर बैठी है।

हे ज्ञानी! भेदविज्ञान करो, शुद्धात्मा के क्षीर का पान करो।

भूल कहाँ हो रही है ? परज्ञयों में लिप्तता ही तेरे स्वभाव का घातक है।

450

निज भाव परभाव नहीं, परभाव निज भाव नहीं, त्याग मार्ग का अभ्यास करो, तत्त्व का अभ्यास करो।

तब भावों में निर्मलता आएगी मल पिण्ड (देह) का राग टल जाए, तो समझना भक्ति हो गई, सामायिक हो गई। उपदेश देना, लेकिन उपदेश में खोना मत, निज समाधि की भावना में खो जाना।

ध्यान रखना, निमित्त स्वयं भी हो सकता है, पर भी हो सकता है 'परस्परोपग्रहो' सूत्र वरना समाप्त हो जाएगा, यानि निमित्त–नैमित्तिक संबंध होता है इसे अच्छे से समझना।

451

भगवान के चरणों में भाव बिगड़ गए तो निधत्ति निकाचित कर्म का बंध कर लेगा। ज्येष्ठों के पास श्रेष्ठ बनकर नहीं जाया जाता, श्रेष्ठ बनने के लिए जाया जाता है। किसी को भी हीन दृष्टि से मत देखना। पाप भी तेरा द्रव्य नहीं है, पुण्य भी तेरा द्रव्य नहीं है, मिथ्यात्व के साथ जिस जीवन ने पुण्य बंध किया उसका पुण्योदय कैसे उदय में आएगा, नेता बनेगा, अभिनेता बनेगा, श्वान बना दो गाड़ियों में घूमेगा।

452

परघात नामकर्म का उदय नहीं है तो किसी के द्वारा तेरा घात नहीं होगा। बाहुबली पर भरत का चक्र परिक्रमा लगा वापस लौट गया। धनपतियों के घर में, उच्च कुल में, जन्मे हो किससे मांगा था तुमने। तेरी अपनी पुण्य की सत्ता है। जिस जीव का प्रबल पुण्य का नियोग है, उस जीव का कोई अशुभ नहीं कर सकता।

मुमुक्षु! कर्म का आवरण नहीं करता है, जहाँ चेतन भगवान आत्मा होता है। ज्ञानी जीव कर्मों के मोह के शैवाल को हटाकर भीतर के भगवान को निकाल लेता है। भो ज्ञानी! 84 हजार सीढ़ियाँ तो चढ़ जाता है, पर मात्र 14 सीढ़ियों के लिए तड़प रहा है, चढ़ना प्रारंभ करो 6 सीढ़ियों तक थोड़ी मेहनत है फिर तो सटा-सट चढ़ते चले जाओगे।

453

ज्ञानी ! वासना/वस्त्र उतर गए तो, बाहर के वस्त्र उतर जाएंगे और नियम से तर जाओगे। संसारातीत होना है, तो कर्मातीत होना है उसके लिए योग को सुधारना होगा। माँ एक बच्चे की रक्षा के लिए, कितनी संभलकर रहती है, धर्म की रक्षा के लिए कितना संभलकर रहना पड़ेगा। सच्चा वीतरागी निर्ग्रन्थ योगी ठूठ के समान स्थिर हो जाता है, जिन्हें बे-भव चाहिए, उन्हें वैभव की क्या आवश्यकता ? प्रतिकार का सामर्थ्य होने पर भी क्रोध न करें, उसका नाम है क्षमा। बाह्य व्यक्ति का उपसर्ग तेरी देह तक सीमित है, तेरा क्रोध तेरी आत्मा पर उपसर्ग है।

454

संसार के उपसर्गों ने मुझे पंचम काल में नहीं भेजा। कषाय के उपसर्गों ने मुझे पंचम काल में भेजा है। दूसरा प्राणी तेरा कुछ भी नुकसान कर सकता है, लेकिन तेरा अशुभ उपयोग दे नहीं सकता, तेरा शुभोपयोग छीन नहीं सकता। बेशक उपवास न कर पाओ, लेकिन कषाय से उपवास जरूर करना। मित्र, गुणों का वंदना, गुणों की स्तुति करना (व्यक्ति की) कभी मत भूल जाना। स्वयं के कर्म का जैसा क्षयोपशम होगा, उस जीव के अंदर वैसी योग्यता आएगी। कुछ भी नहीं करने की योग्यता प्राप्त हो जाए, उस दिन सच्चाई होगी।

455

जीवन भर मैंने श्रावक चर्चा का पालन किया, पर देहाश्रित धर्म को धर्म मानता रहा, आत्माश्रित धर्म में प्रवेश ही नहीं किया। देह ही तुम्हारा देवालय है, इसके भीतर कुभावों का पात्र मत भर देना, भीतर सुपात्र रखना, जिस पर मेरी आत्मा रूपी देह विराजमान हो जाए। नियम ले ले कि मैं भावों को तरसा दूँगा, अशुभ करने के लिए तो ज्ञानी! तू उसी दिन भगवान बन जाएगा। जो अपने निज चैतन्य स्वभाव को भाता है वही जीव निरंतर आत्मा की भावना करता है वह निश्चय सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करता है, सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करना है तो नित्य निरंजन, चैतन्य स्वरूप आत्मा की नित्य भावना करो।

456

निज को निज में संभाल करके निज को समझा लेना यही तेरी योगधारा है। पर को समझना भी योग का भंग है।

हे प्रभु! आप पर जो मेरी दृष्टि है, वह अशुभ की निर्जरा और शुभ का आस्रव कराने वाली है और मेरी निज आत्मा पर दृष्टि शुभाशुभ की निर्जरा कराकर शुद्धात्म को दिलाने वाली है। जिनदेव का अभिषेक तो पानी से होता है, पर निजदेव का अभिषेक ज्ञान के नीर से होता है। चित्त की शुद्धि जिससे हो उसका नाम है प्रायश्चित। ज्ञानी! परिणामों की धारा बड़ी विचित्र है। कोटि–कोटि बार ऊपर जाता है, नीचे जाता है, मध्य में जाता है, तब कहीं सिद्ध भगवान बनता है।

457

पुण्य तो जगत में बहुत लोगों का है, जो सुबह उठकर मद की बोतल खोल लेते हैं, रात देर क्लबों में गुजारते हैं। लेकिन तू उस पुण्य पर मुस्कुराना जो सुबह कहता है उठो मंदिर चलो। मुनिवर आये हैं उनको आहार देना है, जिनवाणी सुननी है, जिनवर के दर्शन करने हैं।

जिस जीव ने, योगी ने शुभाशुभ भावों को नष्ट कर दिया, उसने अपनी देह का नाश कर दिया और अशरीरी सिद्ध बन गया।

शुभ और अशुभ भाव आत्मा के वैभाविक भाव हैं, उनका निमित्त पाकर निजात्म प्रदेशों में परिस्पंदन होता है, परिस्पंदन ही योग है, योग आस्रव का कारण है, इससे कर्म बंध होता है। शुभाशुभ संसार का कारण है, शुभाशुभ भावों का क्षय होने पर निश्चय से कर्म नष्ट होते हैं।

अतः भाव क्षय करने का पुरुषार्थ करो विभावों का परित्याग करो, अशुभ भावों से बचो।

458

भैया, एक काम अवश्य करो एकांत में बैठकर, जिनवर को याद कर कम से कम सत्य को देखना तो आरंभ करो।

भो ज्ञानी! तेरे परिणामों में जो कषाय चल रही है, उसको दूर करने के लिए भगवान नहीं आएंगे और इसके लिए न ही तुझे भगवान के पास जाने की जरूरत, तुझे अपने ज्ञान से पुरुषार्थ से ही इसे दूर करना होगा।

459

ज्ञानी! साम्य-दृष्टि दुख-सुख एक समान जिस दिन प्राप्त हो जाएगी, उसी दिन ध्यान के योग्य हो जाओगे। जब तक द्वैत-दृष्टि है, तब तक है अद्वैत-ध्यान नहीं है। पहले सामायिक करिए फिर ध्यान हो पाएगा। जब सामायिक ही नहीं, तो ध्यान कैसा?

मेरे भीतर के प्रभु को भगाने की ताकत तो प्रभु में ही नहीं है किसी की आस्था को नष्ट नहीं किया जा सकता। जब मैं में विलीन हो जाएगा, तब अहम् प्रारंभ होगा। जब तू डुबकी लेगा तो क्या बाहर दिखेगा। बाहर देखेगा तो डुबकी कैसे लेगा। जब नीर की डुबकी शीतलता देती है तो निज में डुबकी कितनी शांति देगी।

460

रत्नत्रय उपाय है, निर्वाण उपेय है, रत्नत्रय की साधना में संलग्न और उपेय पर दृष्टि नहीं, तो तुम्हारा उपाय निष्फल है।

लक्ष्य-विहीन क्रिया अज्ञानता का द्योतक है। चींटी भी घूमती है तो उसका लक्ष्य है - भोजन। आश्चर्य! अरहंत मुद्रा को प्राप्त करके भी जीव निर्वाण दशा पर दृष्टि नहीं ले रहा। चींटी से भी गया बीता। भैया! ये मोक्षमार्ग है, मनोरंजन का मार्ग नहीं, समय के सदुपयोग का मार्ग नहीं, पुण्य की कुछ क्रियाओं को करने का मार्ग नहीं। यह मार्ग आत्ममंजन का मार्ग है।

(461)

ज्ञानी! संपूर्ण 25 कषायों से तेरे पुण्य के द्रव्य का क्षय हो रहा है। योगी उसे कहते हैं, जो अपने मस्तिष्क के हैंडल को बिना इच्छा के, बिना आवश्यक कार्य के नहीं मुड़ता है, निज में निज के हाथ रख कर बैठा हुआ है। काय योग को संभाल कर बैठा हुआ है। निज चिंतन में परमात्मा को लगाएगा तो तेरे कर्म भी मूर्छित होकर गिर सकते हैं। कर्म का क्षय होता है, कल्पना में आनंद आता है मुमुक्षुओ! जितना ध्यान करने से निर्जरा होती है उतनी निर्जरा बहिरंग तपस्या से नहीं होती है। चिंतन तभी बनता है, जब सर्वांग में संकुचित हो जाता है। कषायों को जलाकर छोड़ो, गाड़कर मत छोड़ो। जो कषायों को पी गये, समय पर नहीं बोले, वे तो गाड़कर बैठे हैं, फिर उखड़ेंगे किसी निमित्त से।

(462)

कोटि-कोटि मुनि भी एक जैसे परिणाम से ही मोक्ष जाएंगे। सभी मुनियों की शुक्ल ध्यान की धारा एक ही होगी, भिन्न भिन्न नहीं। माता जिनवाणी और जिनेंद्रदेव के सामने बड़ी मर्यादा से रहना। योग से प्रकृति-प्रदेश बंध होता है। कषाय से स्थिति-अनुभाग बंध होता है, निज का स्वाद आता निज के स्वाद में, किसी भी विकल्प में मन जाता नहीं। मित्र! जिस दिन तू सारे जगत की चाबी छोड़ देगा उस दिन वास्तव में तू मुक्त हो जाएगा।

463

हे मित्र ! पानी छानने के साथ-साथ वाणी को भी छान, मन को भी छान। हे जीव, क्या लाभ ? उपाय मात्र करता रहा, उपेय से शून्य होकर। मेरा मुख्य उपाय बुद्धि पूर्वक शुभ परिणामों में लगना, अशुभ परिणामों को छोड़ना है, जड़ कर्म के निमित्त से जीव के रागादिक परिणाम होते हैं, रागादिक के निमित्त से ये जड़ कर्म जो हैं, भाव कर्म के निमित्त बनते हैं, कर्म वर्गणाओं को द्रव्य में परिणत करते हैं, नोकर्म और भाव कर्म करते हो, तो द्रव्य कर्म भी अपना राज्य जमा लेते हैं भीतर के भाव बदलते हैं तो चेहरे का रंग भी बदलता है।

464

गरिष्ठ भोजन करने वाला, बाजार का भोजन करने वाला सम्यक् निर्णय नहीं ले पाएगा, ये आचार्य वीरसेन बोल रहे हैं। अपने जीवन में तब तक संतुष्ट मत होना, जब तक जैसा कि जिनवाणी में श्रावक का स्वरूप लिखा है, वैसे लक्षण तेरे में न आ जाए। द्रव्यकर्म दिखाई नहीं देते तो भाई, भाव कर्म तो समझ में आते हैं। भद्र परिणाम जिसके होंगे उसकी मृत्यु भी शांति से होगी। दूध उबला और खाली हुआ, ऐसे ही तुम्हारे भाव उबले, तो अंदर भरो विशुद्धि। रागादिक, विकार भाव इनके क्षय होने पर, निश्चय से कर्मों का भी क्षय होता है।

अरबों की संपत्ति का दान तो दे सकते हो, लेकिन भावों की अशुद्धपना छोड़ना कठिन है।

(465)

ज्ञानी! पर पयपान करते-करते अनंत पर्याय विलीन हो गई, निज पय का पान जिस दिन कर लेगा उस दिन परमात्मा हो जाएगा। तीर्थंकर बालक माँ के आँचल का पान नहीं करते, देव तीर्थंकर बालक के अंगूठे में अमृत की स्थापना करते हैं, जिसे पान कर वे बुद्धिमान होते हैं, भगवती आराधना ग्रन्थ में लिखा है जो जीव धर्मात्माओं के प्रति वात्सल्य शून्य है। उसके सम्यग्दर्शन में दोष है, संसार की स्थिति को छेदना है तो सम्यक् को निर्दोष पालना होगा।

(466)

वात्सल्य तभी होगा, जब माया, मिथ्या, निदान तीन शल्य से रहित परिणाम होंगे। ज्ञानी! स्वरूप दृष्टि तभी संभव है, जब परद्रव्यों से दृष्टि हट जाएगी और जगत को खुश करने की दृष्टि भी हट जाएगी। ज्ञानी! 'पराधीन स्वप्ने सुख नाँहीं' यदि ये सत्य समझ में आ जाए, तो वैराग्य हो जाए। संसार में सारे पाप कर्मोपाधि है, पर उस उपाधि को दूर करने का पुरुषार्थ तेरा निज पुरुष ही करेगा, तुझे पुरुषार्थ करना ही होगा।

हे श्रमण, हे श्रावक! योग, समाधि, ध्यान, चित्त की एकाग्रता, ज्ञान की ज्ञान में लीनता, भावों की विशुद्धि, कषाय का उपशमन, इंद्रियों का निग्रह जहाँ हमारे पास है, वही धर्म की संभावना है परिग्रह, धन की लिप्सा, भोगवृत्ति, इन्द्रियों की द्रुतगति मूर्तियाँ जहाँ विद्यमान हैं, वहाँ धर्म की, ध्यान की व्याख्या तो संभव है, सिद्धि नहीं हो सकती।

467

विश्व में आनंदमय जीवन जीना चाहते हो तो अपरिचित होकर रहना, जीना प्रारंभ कर दो। जितना परिचय बढ़ाओगे, उतना दु:ख पाओगे। दादाजी जब अकेले थे कोई चिंता नहीं थी, अब चिंता ही चिंता है, ज्ञानी कितनी भी विषमताएँ आ जाएँ, ठूठ बनकर उसे सहन करो, अभ्यास आज से शुरू कर दो। भैया, जगत की सुनोगे तो तुम जी नहीं सकोगे। अशुभ परिणाम आ रहे हैं, तो भीड़ में बैठ जाना तो बच जाओगे, एकांत में चले गए तो नष्ट हो जाओगे। हे ज्ञानी जितना ज्यादा बोलोगे, उतना ज्यादा तुझे सोचना पड़ेगा। जितनी ज्यादा चर्चा करोगे, उतना चित्त विभ्रांत होगा। जीभ को शांत कर दो, मन शांत हो जाएगा।

468

जितना सहज-सरल योग बनाकर चलोगे उतनी सहज तुम्हारे उपयोग की अवस्थाएँ होंगी। जिनका योग ही पवित्र नहीं, उनका उपयोग पवित्र नहीं हो सकता। दूसरों को समझाना सरल है स्वयं को समझाना सबसे कठिन है। गाय को अपना दूध पीना हो तो कितना कठिन है, दूसरे को पिलाना हो तो कितना आसान है। तुमको इंद्रिय, कषाय सबको संकुचित करना पड़ेगा, तभी अंतरंग में अंतरंग की अनुभूति तुम ले सकोगे। पंत से परे, आम्नाओं से परे, कामनाओं से परे जब जीव प्रारंभ हो जाएगा, तब कहीं तुझे स्वयं को आंचल का पान करने को मिल पाएगा।

(469)

मोक्ष जो होगा वह परिणाम-परिणामी स्वभाव से होगा, परवस्तु में राग से नहीं। जो वस्तु संग्रह करके रखी है, तुम्हारे परिणामों को खराब करने में निमित्त बन रही है, उसको छोड़ देना।

एक श्वास प्रमाण मात्र निज पर दृष्टि चली गई, अनुभूति निज की हो गई, निश्चित मानिए अर्धपुद्गल परावर्तन के अंदर-अंदर नियम से मोक्ष होगा। जिसको सम्यग्दर्शन हो गया, नियम से मोक्ष मिलेगा, पर बिना चारित्र धारण किए कभी नहीं मिलेगा। सम्यग्दृष्टि को नियम से मुनि बनने के भाव हर समय रहते हैं सम्यग्दृष्टि जीव चरित्र के बिना तड़पता है। तत्त्व को सुनने का मन कभी हुआ नहीं, कुतत्त्व को कभी छोड़ा नहीं।

(470)

कितनी सुंदर प्रतिष्ठा हुई है, कितनी सुंदर मूर्तियाँ हैं, यह देखने तो आया, पर यह सुंदर हुई कैसे इसे नहीं जाना। वर्धमान को केवल पूछ कर जाओगे तो मात्र पुण्य कमाओगे, एक दिन उसे खर्च कर दोगे। यदि उनसे पूछ कर जाओगे कि आप वर्धमान बने कैसे तो एक दिन उनसा बनने का पुरुषार्थ करोगे और बन जाओगे। जैनदर्शन ही मात्र एक ऐसा दर्शन है, जो भगवान को पूजने के साथ पूछता भी है, स्वयं बनता भी है।

(471)

कष्टों में खुशी मनाना चाहिए, ऋण लिया था, चुकाने में आनंद आता है, तपोधन कष्ट आने पर प्रसन्न होते हैं, पर्याय के साधु मत बनना, परिणामों के साधु बनना।

याद रखना, एक बार पलकों के ऊपर-नीचे होने में जितना समय लगता है, उतने समय में असंख्यात कर्मों का बंध कर लेता है।

निर्बंध से निर्बन्ध नहीं, बंध से निर्बन्ध होता है यदि बंध नहीं स्वीकारोगे तो निर्बन्ध कैसे होओगे ?

स्वभाव निर्बन्ध है, परंतु विभाव के कारण बंध है।

भले आप पूजा करते हो, अभिषेक करते हो, जिनवर का, इससे आप स्वयं को सम्यग्दृष्टि मानते हो, लेकिन तत्त्व पर एकांत दृष्टि है तो आप मिथ्यादृष्टि हैं।

(472)

द्रव्य श्रुत की कमी से मोक्ष में बाधा नहीं है, हाँ, भाव श्रुत की कमी से मोक्ष नहीं होता है। हे ज्ञानी तूने तो भगवान में भी भेद कर दिया, किसी को गोरा किसी को सांवला कह दिया, किसी से कुछ मांगा, किसी से कुछ। आचार्य उमास्वामी तो एक ही बात कहते 'वंदे तद्‌गुण लब्धये' पर्याय कि नहीं पर्यायी की वंदना है, ज्ञानमयी जैसा सिद्धालय में वास कर रहा है वैसा ही परम ब्रह्म इस निज में देख, कैसा ? जैसा सिद्धालय में है वही 'चिदानंद रूपं नमो वीतरागं' उन्हें नमस्कार हो।

473

योगियों को सारे पुरुषार्थ बंद कर देने चाहिए, मात्र पुरुष (आत्मा) पर ही पुरुषार्थ होना चाहिए। सुई में धागा डालते हुए, एक आंख बंद हो जाती है यदि निज में सूत्र को डालना है तो भोग की आंख बंद करके योग की आंख से तुम सूत्र पिरो पाओगे।

दो धाराओं में जीने वाला सफल नहीं हो सकता, जब तक निर्णय नहीं है तबतक क्लेश है, निर्णय करते ही क्लेश समाप्त।

474

दया, दम, त्याग, समाधि ये हमारे चार सिद्धांत हैं, अहिंसा हमारा परम धर्म है। निरपेक्ष दया है, करुणा है, अहिंसा है, व्रतों की रक्षा करनी हो तो अव्रतियों से दूर रहना। पंचपरमेष्ठी से भी अनुराग होना चाहिए राग नहीं, राग हुआ तो अमंगल हो जाएगा। जब भोगों से अरुचि होती है, तब संयम अंश प्रगट होता है हिंसा के परिणाम चल रहे थे, तो आप हिंसक ही हो। दूसरे को बदनाम करने के भाव भी हिंसा ही हैं। श्रावक समयिक करते हुए मगन हो गया, सुध-बुध नहीं तो वह भी मुनि के समान है, ऐसे ही जिनवाणी सुनते हुए। तुम्हारी चेष्टा स्वर्ग जाने कि नहीं, मोक्ष जाने की होनी चाहिए। मिथ्यादृष्टि से भी घृणा मत करना। कौन से त्यागी में, कितनी विशुद्धि है यह जानने की कोशिश करते हैं यह हमारा धर्म नहीं है।

475

जिन मुद्रा नहीं बदली जाती, ये वनवे ट्रैफिक है। यहाँ जाया ही जाता है, लौट कर आया नहीं जाता है, भावलिंगी मुनि का एक समय की पर्याय का सुख, सौधर्म इन्द्र के सुख से कोटि-कोटि ज्यादा है।

अशुभ भाव के क्षय होने पर निश्चय से कर्म का क्षय होता है, अतः ज्यादा चिंता मत करो, अशुभ भाव मत करो। आत्मा की संपूर्ण दशाओं को जानने के लिए जगत से अज्ञानी होने का आवश्यकता है। दिगंबरत्व की प्राप्ति जगत को जानने के लिए नहीं है, जगत को भूलने के लिए है, जितना अधिक जानोगे उतने ज्यादा कषायित होंगे।

476

भोगभूमियों का जीव नियम से स्वर्ग जाता है, जबकि वहाँ धर्म नहीं है, भोग ही भोग है क्योंकि दो व्यक्ति हैं, केवल देखने और बोलने के लिए। तीसरा कोई नहीं, बात ही नहीं, तो कषाय का रोग ही नहीं, परिणामों की भद्रता है। जिसका निज में उपयोग लग जाता है, वहाँ किसी के दुःख संकट पर उपयोग ही नहीं जाता। जब निज से उपयोग हट जाएगा, तब जगत दिखाई देगा, प्रदर्शन दर्शन नहीं है, आस्था, श्रद्धा से भरा जो अवलोकन है उसका नाम दर्शन है, दया के बिना आप जैन नहीं।

477

जो कल निगोदिया था, त्रस आदि पर्याय में रुंद रहा था, वह आज सिद्ध बनकर जगत के शीश पर विराजमान है।

हे ज्ञानी! कहाँ विवादों में पड़े हो, मैं अमुक हूँ, मैं अमुक हूँ, जब तक अमुक का विकल्प है, तब तक विकारी ही है।

जो अपने ज्ञान को, विवेक को रत्नत्रय में न ले जाकर, प्रपंचो में पड़ा है, वह जीव की प्रज्ञा का व्यभिचार है, आत्मद्रव्य को छोड़कर, जितने भी द्रव्य हैं, परद्रव्य हैं।

उपयोग तीन तरह का है (1) शुभ-अशुभ उपयोग, जो है वह परिणतिरूप उपयोग है (2)भावेंन्द्रिय आदि जन्य उपयोग जो 12वें गुणस्थान तक रहता है। (3) लक्षण रूप उपयोग, जीव का त्रैकालिक उपयोग है वह ध्रौव्य है।

478

बंध का कर्ता कोई है तो चित्त का विकृतपना ही कर्म बंध का कारण है, जितने विकार हैं, सब कर्म बंध के कारण हैं। श्रीपाल से पूछो तन में कुष्ट पहले हुआ कि मन में? मन में वीतरागी के प्रति अशुभ भाव हुए। चित्त बिगड़ेगा तो कर्म का बंध तुरंत नियम से होगा।

वर्तमान के परिणाम ही भविष्य की पर्याय के जनक हैं, विभाव अवस्था में ही स्वभाव को छुआ जाता है ये ही तेरा वर्तमान पुरुषार्थ होगा।

479

हे ज्ञानी! एक-एक क्षण को शुद्ध अवस्था का ध्यान कर। भाव मोक्ष तभी होगा, जब शुद्धोपयोग का भी अभाव हो जाएगा।

एक से तीसरे गुणस्थान तक घटता हुआ अशुभ उपयोग होता है, चौथे गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक बढ़ता हुआ शुभोपयोग होता है, सातवें से बारहवें गुणस्थान तक तारतम्य से शुद्धोपयोग होता है। 13-14 गुणस्थान शुद्धोपयोग का फल है, जब तक मन की धारा है, तब तक उपयोग की धारा है, 12वें गुणस्थान तक मन है। 13वें स्थान में भाव-मन का अभाव है, ज्ञान की एकाग्रता का नाम ध्यान है।

480

जब परिणति विकृत होती है, तब जीव का उपयोग विकृत होता है, जिस दिन सादृश अस्तित्व चिंतन में आ जाएगा, सारा भेदभाव समाप्त हो जाएगा।

अपने भावों की परिणति को बदलना संभव है, अतः परिणामों के मौसम को बदलने का प्रयास करो यह वर्तमान पुरुषार्थ है।

गजकुमार मुनि से पूछो। कोई बचाने नहीं पहुँचा। हे कर्म! तेरी महिमा विचित्र है कोई काम नहीं आया और कैवल्य हो गया, तब सब आ गए। शास्त्र पढ़ने वाला पाठी हो सकता है, परंतु ज्ञानी नहीं हो सकता।

481

खोटे काल में आया है, लेकिन हीन नहीं मानना। इस खोटे काल में भी समयसार सुनने को मिल रहा है, परंतु मान भी मत करना।

परद्रव्य पास होने पर, उनमें तन्मय होना बंध का कारण है। ज्ञानी ज्ञेयों को जानता है, पर उसमें जाता नहीं है जो ज्ञेयों में जाता है वह रागी है।

आचार्य कुंदकुंद कह रहे हैं। सारा जगत संसार, संपदा के पीछे, द्रव्यदृष्टि को भूल गया है, द्रव्यदृष्टि से जीव त्रैकालिक शुद्ध है।

482

ज्ञानी! शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का पुरुषार्थ कौन करेगा? अशुद्ध द्रव्य ही शुद्ध द्रव्य की प्राप्ति का प्रयास करता है, शुद्ध तो शुद्ध की प्राप्ति का प्रयास नहीं करता।

जो अशुद्ध है, अनादि से कर्मबंध है उनसे रहित होना, उस रूप होने का नाम शुद्ध है, जिनशासन ने बनाए गए भगवान पूजे नहीं जाते, निकाले गए भगवान पूजे जाते हैं।

कर्म-सहित आत्मा में मुक्त आत्मा का स्वरूप नहीं जानोगे तो मुनि बनने की आवश्यकता क्या है?

जो निष्प्रयोजन कार्य है, वह अनर्थ है, ज्ञान अनर्थ नहीं करता। आयु कर्म का क्षय क्यों निष्प्रयोजन कर रहे हो?

483

ज्ञानी ! धन से धर्म का संबंध नहीं है, यदि धन से धर्म होने लग जाए तो मुनिधर्म का अभाव हो जाएगा। ज्ञानियो ! आकिंचन, धर्म है, धन धर्म नहीं है। निश्चय और व्यवहार धर्म के लिए धन की आवश्यकता नहीं है। हाँ, क्रियाओं के लिए, दिखावे के लिए धन की आवश्यकता है।

परमानंद में लीन होने के लिए, मोक्ष की प्राप्ति के लिए धन की आवश्यकता नहीं है, जो दिख रहा है, वह साधन है सामाजिक व्यवस्था है।

आत्मव्यवस्था तो स्वतंत्र है, पर संबंध की आवश्यकता नहीं है, श्रमण संस्कृति में साधु बनने के लिए जिसे जुटाया था, उसे हटाना पड़ता है।

484

जो स्वयं को ज्ञानी कहता है, वह ज्ञानी होता नहीं। परम ज्ञानी तो केवली भगवान हैं, वे कहते नहीं है कि मैं ज्ञानी हूँ। हे मुमुक्षु, आप चारों अनुयोगों का बस अध्ययन करें। जो ज्ञान में आनंद है वह कहीं नहीं है। बहिरंग की चमक बहिरंग की है साधना उतनी है जितनी अंतरग में है।

ज्ञानी ! तपोगे नहीं, पर भावों में खोओगे नहीं, तो कैसे शुद्धात्मा बनोगे ?

आज्ञा-संभवत: पहला है तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है सरलता से समझ में न आए तो अरहंत की आज्ञा मानकर ग्रहण कर देना।

485

जीव की विभाग दशा, राग दशा है, यह राग दशा पौद्गलिक नहीं है। अनशन आत्मा का त्रैकालिक स्वभाव है। विभाव में है, देह में है, इस कारण सेवन कर रहा है। जहाँ राग दृष्टि का अभाव है, वहाँ अप्रमत दशा होगी। 7वें गुणस्थान में आहार संज्ञा नहीं होती, यह अप्रमत दशा है, यही ज्ञानी की दशा है।

'गोम्मटसार जीवकांड' अचार्य नेमीचंद छठवें गुणस्थान तक 'ज्ञानी' नहीं कहा, 'ज्ञानी' शब्द अप्रमत गुणस्थान में प्रारंभ होता है।

'ज्ञानी के छिनमांही, त्रिगुप्ति ते सहज टरे तें।'

– पं. दौलतराम जी

486

जैनदर्शन में आत्मा सदाशिवत्व की शक्ति से संपन्न है, परंतु सदाशिव नहीं है। यदि त्रैकालिक शुद्ध ही है, जगत के सभी जीव, तो फिर कोई जीव संसारी नहीं बचेगा। यदि जीव त्रैकालिक शुद्ध है तो संसार का अभाव होता है और मोक्ष का भी अभाव होता है। शुद्ध का मोक्ष नहीं होता। अशुद्ध का मोक्ष होता है।

रोगी होता है तो डॉक्टर होते हैं। रोगी नहीं तो डॉक्टर भी नहीं। जंत्र, मंत्र, तंत्र, ज्योतिष विद्याओं में संलग्न जीवन– मुनि हो, पंडित हो, गृहस्थ हो नियम से असमाधि होगी।

487

मोक्षमार्गी को बहुत अधिक ग्रंथों की आवश्यकता नहीं। एक शब्द जिनवाणी का आत्मा को छू गया और नरक पहुँच गया तो वह शब्द ही तुझे सुख देगा। वहाँ सोचेगा कि यदि मैं मनुष्य बना तो मुनि बनूँगा। जिस तन में विराजा है तेरे साथ नहीं जाएगा तो पर के राग में निज को क्यों खो रहा है।

अनादि से जो सीख रहा है उसे भूल जाना सबसे कठिन है, उसे भूल जाएगा तभी वह मिलेगा इसका नाम आत्मविद्या है।

488

वीतराग शासन में अंतरंग और बहिरंग दोनों विशुद्धि की आवश्यकता है, तब कहीं परमात्म-पद की सिद्धि होगी। हे जीव! तेरे पास तो दशाएँ हैं, एक स्वभाव दशा, एक विभाव दशा।

छह द्रव्यों में मात्र दो द्रव्य ऐसे हैं, जो द्वैत भाव से चलते हैं जीव और पुद्गल स्वभाव और विभाव को प्राप्त होते हैं। पुद्गल द्रव्य ऐसा है जो स्वभाव को प्राप्त होता है, फिर विभाग को प्राप्त होता है, फिर स्वभाव को प्राप्त होता है, इस प्रकार होता रहता है। एक बार शुद्ध हुआ पुद्गल पुनः अशुद्ध हो जाता है, लेकिन जीवद्रव्य यदि एक बार शुद्ध हुआ तो फिर अशुद्ध नहीं होता।

(489)

स्थिर चित्त ही 'ध्यान' है 'ध्यान' तभी लगेगा जब 'सत्वेषुमैत्रीं' सबसे मैत्री नहीं तो स्थिर 'ध्यान' नहीं। दिन में किसी से अशुभ बोलकर, रात्रि में अच्छे से सो नहीं पाओगे। उपयोग और योग की निर्मलता तथा स्थिरता जहाँ प्रारंभ हो जाएगी, वहाँ सिद्धत्व का वेदन हो जाएगा। जितने अनर्थ हुए हैं वे वस्तु से नहीं हुए हैं, वे व्यक्ति की निजी सोच से हुए हैं। हम दोष दूसरों को देते हैं नहीं देखते। दोष हमारा है। कुछ कषाय रोकर, कुछ हंस कर, कुछ अहंकार में, कुछ लोभ में, कुछ क्रोध में, निकली जाती हैं ये सब कषाय के निकास स्थान है भैया।

(490)

भव्य जीव ध्यान में लीन होता है। पिण्स्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत – ये ध्यान के भेद हैं, जब इन ध्यानों को हम करते हैं तो एक प्रकार से कल्पना चल रही है। कल्पना में बैठे-बैठे कल्पकाल में जो कर्म नष्ट नहीं हुए थे, वे आज नष्ट हो जाएंगे। याद रखना तुमने माँ भगवती के आंचल का पान नहीं किया तो शरीर सहित मोक्षमार्ग पर दौड़ नहीं पाओगे।

ध्यान और योग, ये तभी सिद्ध होगा, जब होगा ज्ञानोपयोग। ज्ञानोपयोग नहीं, तो ध्यान-योग भी नहीं पहले ध्येय को समझो। व्यवहार से पंचपरमेष्ठी एवं निश्चय से निजात्मा ही ध्येय है। किंचित् मात्र भी परसंबंधों से जुड़े रहोगे तो तुम्हारा ध्यान भंग होगा।

491

आत्मा में राग अवश्य है, परंतु आत्मा राग-स्वभावी नहीं है। नाम का परिग्रह रहेगा, तो मोक्ष नहीं होगा। धन, स्त्री, पुत्र आदि परिग्रह नाम के परिग्रह के कारण ही है। अंतरंग परिणति निर्मल हो तो बहिरंग परिणति भी निर्मल होती है, तू नाना प्रकार के परिग्रह में लिप्त है, नाना प्रकार के पदों में घिरा है तो कैसे कहूँ तेरा अंतरंग निर्मल है।

तत्त्व को समझने वाले बहुत कम हैं और उस पर चलने वाले विरले हैं। आचार्य कार्तिकेय स्वामी 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में कहते हैं। परनिंदा सुनने वाले करोड़ों हैं, आत्मा की बात सुनने वाले मुट्ठी भर नहीं हैं।

492

'अंतरंग शुद्ध' मेरा कह रहा हूँ कि मुझे बहिरंग शुद्धि से क्या प्रयोजन ? अल्प ज्ञानी होना कोई दोष नहीं है, विपरीत ज्ञानी होना महादोष है। महावीर से पूछो एक बार विपरीत श्रद्धान कितने कालों तक, सागरों तक भटकता रहा, भावों की शुद्धि होगी तो नियम से द्रव्य शुद्धि होगी। क्या यह संभव है कि अंतरंग निर्मल हो, शुद्ध हो और बहिरंग परिणति संसार व्यापार, परिवार हो ?

जिनके दो-दो कल्याणक बन चुके हैं, जन्म से तीन ज्ञान के धारी हैं, वह जीव अतरंग की शुद्धि के लिए बहिरंग तप कर रहा है।

(493)

तीर्थंकरों ने धर्म का प्रचार नहीं किया, धर्म में लीन हो गए पश्चात अपने आप प्रचार हुआ। वर्तमान के लोग धर्म शून्य हैं और धर्म का प्रचार कर रहे हैं। अगरबत्ती में सुगंध है, जो सुगंध का प्रचार नहीं करती, स्वयं चलती है और सुगंध फैला देती। मंदिर को मंदिर बनाने में लगे हो क्या नया, क्या मुश्किल कर रहे हो, घर को मंदिर बनाओ तो मजा है, आनंद है मदलसा के साथ बैठे हुए, मदलसा उन्हें लोरी सुनाती थी शुद्धोसि, बुद्धोसि निरंजनोसि वो जवान हुए तो सातों मुनि बन गए। राजा ने कहा, यह तूने क्या करा ? राज्य कौन संभालेगा ?

(494)

कई ग्रंथों को पूर्ण पढ़ लिया, पर ग्रन्थि किंचित् मात्र भी नहीं खुली। शास्त्र पढ़ने का कहीं आपको व्यसन तो नहीं लग गया ? स्वाध्याय मात्र शब्दभूत पुद्गल की पर्यायों का आना, द्रव्य आगम पढ़ते-पढ़ते, भाव आगम को आना चाहिए। वही श्रुत श्रुत है, जो ज्ञान निज के भावों को जागृत कर दे। काली कोठरी में तुम्हारा कोई साथी होगा तो ये ही द्रव्य श्रुत और भाव श्रुत होगा। किसी भी स्थिति में निज के परिणामों की विशुद्धि को न मोड़ दे, वही आगम ज्ञान है।

495

गरीबी के दिन को भी तुम गरीबी मानकर मत चलो। जब तक राग सताएगा तो मुमुक्षु! तू राग नहीं कर पाएगा, कर कुछ नहीं पाएगा, राख ही हो जाएगा। आप वर्तमान के पर्याय के साथ भविष्य की पर्याय क्यों नहीं देखते हो। सिद्धों को निहारोगे तो एक दिन महसूस करोगे कि वह कहीं बाहर नहीं है। तेरे भीतर है, कैसे हैं, पवित्र जैसे सिद्धालय में विराजते हैं पर्याय के धर्म बहुत कर लिए अब परिणामों को संभालो। महाराज के आगे पीछे मत फिरो। हम एक ईश्वरवादी नहीं हैं, हम प्रत्येक आत्मा को ईश्वर बनाने की क्षमता रखने वाले हैं।

496

मोक्षमार्ग का व्यवहार तो रत्नत्रय धर्म का पालन करना है। मोक्षमार्ग का निश्चय धर्म आत्मा में लीन होना है यही मोक्षमार्ग है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप परिणामन नहीं करता है, पर एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में परिणत होने में सहकारी अवश्य होता है। योग्य निमित्त योग्य उपादान के सहकारीपने से कार्य की सिद्धि होता है निमित्त कर्ता नहीं, उसके बिना तो होता भी नहीं। ज्ञानी सबसे कठिन है अहंकार को पचाना।

मिथ्यादृष्टि जीव की दृष्टि विपरीत है उसे सीधा कर दो, वही गौतम गौतम स्वामी बन जाता है।

497

तत्त्व को जानने वाले कम लोग हैं, लेकिन मिल जायेंगे, पर तत्त्व का जीवन जीने वाले लोग गिनती के अंगुलियों पर हैं। शरीर से ममत्व का त्याग कर, परमेष्ठी का ध्यान कर इसे कायोत्सर्ग कहते हैं। कितना भी जीवन में संकट आये, अपयश होवे, प्राणों का घात मत करना। आत्मघाती महापापी। हम नास्तिक नहीं हैं, परमात्मा बनने की आस्था रखते हैं। पंचपरमेष्ठी की पूजा करते हैं, जब तक निज के भाव विकृत नहीं होते, तुम दूसरे के भावों को खराब करने नहीं जाते हो।

498

अहिंसा कोई परम्परा नहीं है, अहिंसा स्वभाव है, कषाय आत्मा को कसती है, जो आत्मा को कसे वो हिंसा है।

जब तक भावात्मक विशुद्धि यह लक्ष्य नहीं ले जाओगे, तब तक भावहिंसा करते रहोगे, कहते रहोगे मैं अहिंसक हूँ। जो संशय, विपर्यय, अनध्वसाय से रहित हैं, वे सम्यग्ज्ञान हैं, जिससे हित की प्राप्ति होती हो, अहित का परिहार हो, वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। जितना कमाओ-कमाओ करेगा, उसके लिए विश्व में घूमेगा, बहुत परिग्रह आरम्भ करेगा तो क्या नरक जाने से बच जायेगा, क्या उसको देखता ही रहेगा? पंचेन्द्रियों के सुख भोगते-भोगते प्राणी नरक ही जाता है, ज्ञान होने के बाद भी प्राणी विषय-कषाय पक्ष पर लक्ष्य किये हैं।

499

इच्छित लोग मिले, इच्छित सुनने को मिले, इच्छित खाने को मिले, इच्छित रहने को मिले, कहता है मैं समता में हूँ। जिस दिन सब कुछ अनिश्चित हो जाए तब चेहरे पर मुस्कान रहे, तो तेरी साधना है तू समभावी है दुनिया के सामने स्वच्छ बैठ सकते हो पर निज के अंदर झांक के देखो, कितने स्वच्छ हो। निज आलोचना किए बिना, सल्लेखना होती नहीं। साधक को जीवन में विषमता आती रहनी चाहिए, जिससे समता की याद बनी रहे। क्या पाप कर्म की अनुमोदना के लिए आयु बची है आपकी ? जो पोते-पोतियों, नातियों की शादी कराने में लगे हो।

500

नींद नहीं आना यह बड़ा पुण्योदय है। जागते रहोगे तो पाप करने के भाव भी आएंगे तो बचा लोगे। स्वप्न में पाप-भाव को बचा नहीं पाओगे। सर्वोपरि कोई साधना है, वह समत्व दृष्टि है। जहाँ समत्व भाव है वहाँ साधुत्व भाव है, वेदना कर्म जन्य हो सकती है, लेकिन वेदना से वेदना कर्मजन्य नहीं कषाय जन्य है। आपको कर्म पीड़ित कर सकते हैं, पर क्लेशित नहीं जब तक शरीर का संयोग आत्मा में है, शरीर में चुभाया जाएगा, उसकी वेदना आत्मा में ही होगी। तुझे वेदना हो तो कर्माधीन मान कर स्वयं में समता को स्वीकार कर लेना।

(501)

जो इंद्रियाँ हैं वे पर का ही वेदन करा सकती हैं। एक भी इंद्रिय ऐसी नहीं है जो निज का वेदन करा सके। इंद्रियाँ जो हैं पर का ही भोग कर सकती हैं। मुमुक्षु! निज का भोग करना है, तो इंद्रियों को शून्य करके निज को लखो। भगवान को देखना सरल है लेकिन निज की आत्मा को देखना बहुत कठिन है। पूरी आयु कर्म की पर्याय कहाँ नष्ट हो रही है? पाप कर्म तो तुमने स्वप्न में भी किए हैं, अज्ञान में किया पाप सद्ज्ञान आने पर प्रायश्चित लेने पर छूट जाता है ज्ञान से किया पाप नहीं छूटेगा।

एकांत, विपरीत, विनय, संशय, अज्ञान ये पाँच मिथ्यात्व के भेद हैं। बंध से डर लगता है, तो पाप से डरो। मुक्त होने की वांछा है, तो पापों से मुक्त हो जाओ। प्राणी पुण्य का पुरुषार्थ करता नहीं, पुण्य का फल चाहता है।

(502)

प्राणी कितना बुद्धिमान है पहले धन कमाने में धर्म नष्ट किया फिर उसे व्यय करने में। काम-पुरुषार्थ, धन-पुरुषार्थ-धर्म करने में भी तो लग सकता है। किंचित् भी मन में किसी के प्रति बुरे भाव आ रहे हो तो उसे खाली कर दो। पूज्य वे हैं जो परमात्म-तत्त्व से युक्त हैं अथवा परमार्थ-तत्त्व की प्राप्ति में जिनका पुरुषार्थ चल रहा है। गुणस्थान गुरु नहीं देते, गुणस्थान तो स्वयं ही बनाना पड़ेगा।

(503)

जिस योगी के हृदय में ज्ञानरूपी सूर्य स्थित है, उस योगी का निरन्तर प्रभात रहता है। प्राणी को शरीर से पृथक् कर आत्मा का चिन्तन करना चाहिए, शरीर आत्मा नहीं है, जीवन भर देह को ही देखता रहा, उसे ही आत्मा मानता रहा, उसी के लिए मरता-जीता रहा। ज्ञानी को परपदार्थ की चिन्ता से क्या प्रयोजन? परपदार्थों की चिन्ता से ज्ञान नष्ट होता है तथा बल-बुद्धि दोनों नष्ट होते हैं। परपदार्थों की चिन्ता से व्याधि-शारीरिक पीड़ा होती है, 'ध्यान' की स्थिति में कुछ भी चिन्तन नहीं होता है, जब तक चिन्ता है 'स्व' की प्राप्ति नहीं क्योंकि 'परमतत्त्व' मनरहित काय के समान निश्चेष्ट है।

(504)

साठ हजार प्रश्न किये थे भगवान महावीर से राजा श्रेणिक ने - पूछा वंदना लोक में किसकी और क्यूँ। 'वंदे तद्‌गुण लब्धये' केवलज्ञान ज्योति जयंवत हो, अनंतानंत सिद्ध भगवन्तों की। जितना श्रेष्ठ व्यक्ति होगा, निगाह नीची होगी, जितना अभिमानी होगा, गर्दन ऊँची होगी। भो ज्ञानी! तेरे शरीर में इंद्रियों के बीच मन सम्राट बैठा है, जो आज्ञा दे रहा है लेकिन यदि इन्द्रियाँ एकमत होकर कह दें हम असंयम का सेवन नहीं करेंगे तो मन शान्त होकर बैठ जायेगा।

505

वीर वह होता है जो क्षमा शील होता है। अंतरंग के कषायिक शत्रुओं को वश करना सबसे बड़ा सम्राट है।

रुई में आग लगने में देर हो सकती है पर भावों में आग लगने में देर नहीं लगती। नरक की नारकी की अवस्था में क्या-क्या सहन नहीं किया ? यहाँ तनक सी बात सहन नहीं होती, शीघ्र ज्वाला भड़कती है।

समझो और संभालो, समय अधिक नहीं है, पंचम काल भी छोटा ही है। यदि कोई उत्तम मुहूर्त है तो भाव-मंगल है। 24 घंटे अपना मुहूर्त शोध के रखो उसको मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है।

506

आत्म सिद्धि का साधन ध्यान है, ध्यान सिद्धि का साधन चरित्र है और चरित्र सिद्धि का साधन यदि कोई है, तो साम्य भाव है।

दुख में, सुख में, लाभ में, अलाभ में, निद्रा-प्रशंसा से 'समाचरेत' समान प्रवृत्ति करो। संपूर्ण लोक की व्यवस्था को संभाल लेना सरल है, निज के भावों की साम्यता को संभालना कठिन तपस्या है, विश्व में ऐसे लोग हुए हैं, हाथ पर शीला को उठाकर वर्षों तपस्या का नाटक करते रहे हैं, और सगे भाई पर उसी शीला को पटक दिया-परिणाम को नहीं संभाल सकते।

507

जो ध्यान में नहीं होते हैं, उनको ही दुनिया का ध्यान होता है, ध्यान में ही कैवल्य प्रकट होता है।

क्रियाकाण्ड को ज्ञानकाण्ड के लिए कर रहा है तो वह भद्रपरिणामी होगा। ज्ञान प्राप्ति के लिए नहीं कर रहा है तो क्रूरता भर जाएगी।

हे पुण्यात्मा, यदि तुम्हारे पास आखिरी सांस तक पुण्य संचय है तो तुम कितनी भी कषाय करो, मान करो, अधर्म करो, तुम्हें अंतिम सांस तक सुख भोगने को मिलेगा, लेकिन एक बात याद रखना, अगर बत्ती जलती है, सुगंध देती है और अंतिम क्षण तक सुगंध ही देती है लेकिन अपने नीचे राख भर देती है। तुम जीरो हो जाते हो राख हो जाते हो।

508

स्वयं की विशुद्धि, धर्म के प्रभाव से श्वान भी देव हो जाता है, और पाप के प्रभाव से देव भी श्वान हो जाता है, जो सिनेमा हॉल में बैठा है, एक जो जिनवाणी सुनने गुरुवर के कमरे में बैठा है, उससे उसके पूर्व पुण्य का आंकलन हो जाता है जो चेहरे नालियों में जी रहे हैं, गाड़ियों में जुते हैं, वो सब छल करने के फल है, जब तक स्वयं में निज-शांति से प्रतिष्ठित नहीं होता, तब तक कोई भगवान के रूप में प्रतिष्ठित नहीं होता। तनक-साधन बढ़ा, फिर मान बढ़ा, फिर मानवता खो बैठते हो।

(509)

जब भीतर से भक्ति के आनंद का झकोरा आता है, तब श्रावक भक्त और भगवान में भेद समाप्त कर लेता है आनंद भाषा में नहीं आता है आनंद भाव में आता है जब मैं परमात्मा से भीतर जाता हूँ तब मैं होता हूँ मात्र अहं, परम अद्वैत की धारा चल रही है 'अहं' मात्र बचा है मैं का स्वाद प्रारंभ हो जाता है। ज्ञानियों कुछ मत देखना, जो वर्तमान का आनंद है उसे ही निहारना, ये ही परम तत्त्व है रोगी शरीर उनके ही होते हैं, जिन्होंने दूसरों को सताया हो। एक द्रव्य दूसरे धर्म का कुछ नहीं करता। ये उपादान दृष्टि है लेकिन निमित्त दृष्टि से कर्ता बनता है।

(510)

जैन आगम में दो नय हैं (1) द्रव्यार्थिक नय जो निश्चय में है (2) पर्यायार्थिक नय जो व्यवहार में है, दोनों ही नय वस्तुस्वभाव की प्रारूपणा करते हैं, पर वस्तुस्वभाव नहीं है, एक भेद करके वस्तु की व्याख्या करता है, एक अभेद करके वस्तु की व्याख्या करता है कोई मिट्टी का घड़ा कहेगा कोई घी का घड़ा कहेगा।

शांति प्रपंचों में नहीं है, धर्म वही है, जिसमें प्रपंच नहीं है। प्रथम तत्त्व समझना पड़ेगा, समय देना पड़ेगा, बुद्धि को ठीक करना पड़ेगा। पर के दोषों को मत देखो, निज के दोषों को देखो। भावों की गति को चारों ओर से देखो, कहीं दुर्घटना ना हो जाए।

(511)

वर्तमान की पर्याय को भवाभिनंदन में नष्ट मत करो। ज्ञानी, मुनि क्यों बना, जन्म के नाश के लिए, फिर जन्मदिन का आनंद लूट रहा है? भव का अभिनंदन करायेगा तो क्या भाव का नाश होगा याद रखना, तेरे विषयों की तपन से तेरे पुण्य का सरोवर भी सूख जाएगा। मत करो स्मृति अशुभ की। एक जैसा भोजन खाते-खाते तुम बोर हो जाते हो तो वही-वही वही विषयकषाय सेवन करते-करते तुम आज तक बोर क्यों नहीं हुए? आज तक मुनि नहीं बने उसकी इच्छा करो।

(512)

भगवान की शक्ति को देख रहा है, तेरे करम के विपाक में तेरा अशुभ कर्म का उदय है भगवान की शक्ति में, तेरी भक्ति में दोष नहीं है। धनहीन होना, बलहीन होना बड़ी बात नहीं है पर पुण्यहीन और विवेक हीन न हो जाऊँ। पुण्य बल के बिना सारे बल किसी काम के नहीं है। रावण के पास सारे बल थे लेकिन पुण्यबल क्षीण हो चुका था। पुण्य सुरक्षित होगा तो संपत्ति दौड़ कर आएगी। रक्षा करनी है तो अपने परिणामों की विशुद्धि की करना। अशुभ के दिनों में अपने को सम्भालों यही पुरुष का पुरुषार्थ है। अज्ञानी की उपासना से अज्ञान ही मिलेगा और ज्ञानी की उपासना से ज्ञान ही मिलेगा।

(513)

जब सामान्य पुरुष को, अपने पुत्र को, देखकर भाव बदलने लग जाते हैं तो अरहंत की वीतराग मुद्रा को देखने पर तुम्हारे भाव नहीं बदलेंगे। उनको देखकर ऐसा लगेगा कि अंतस में कुछ प्रवेश कर रहा है। ये ध्यान विद्या ऐसी अलौकिक विद्या है, जगत की जितनी सिद्धियाँ हैं, ऋद्धियाँ हैं वो सब ध्यान से प्राप्त होती हैं श्रावकों को निर्विकल्प ध्यान का निषेध है। पर गृहस्थों, श्रावकों को सविकल्प ध्यान का निषेध नहीं है, गृहस्थों का जिन पूजन भी ध्यान है, परमात्मा के मस्तक पर गिरता पानी गंधोदक बन सकता है, तो परमात्मा के ध्यान से तू परमात्मा बन सकता है।

(514)

जिनके परिणाम पीत और पद्म लेश्या से युक्त होंगे, उन जीवों के अंतरंग में नियम से पंचपरमेष्ठी के प्रति भक्ति उत्पन्न रहेगी। उनमें मध्यस्थ भाव का जन्म होता है, अशुभ लेश्या के अंश में यदि आयु बंध आपका हो गया, तो अधोगति ही होगी। हर पल, निहारिये, मेरे परिणामों की दशा क्या चल रही है। जिनदेव ने तो जीव के परिणामों को गिन के बता दिया। ये परिणामों की भी गणना है, गुणस्थान अपने परिणामों को देखो, दूसरे की पर्याय देखने लग जाओगे तो स्वर्गपति भी नरक पति बन जाएगा।

515

जहाँ जहाँ आकांक्षा है, वहाँ वहाँ अशांति है। जगहित करने का राग भी अशांति ही है। वैरागी होकर जियेगा तो शांति है, रागी होकर जियेगा तो क्लेश ही है। भेदवृत्ति समाप्त हो जाए, प्राणी मात्र के प्रति एकत्व भाव रहे, उसका नाम मैत्री भाव है। द्वेष किंचित् भी रहेगा तो ध्यान में क्या आएगा? आम्नाओं में, संतों में, पंथों में उलझ कर मोक्षमार्गी नहीं हो सकता। मोक्षमार्गी बनना है तो जगत के सारे प्रपंचों को छोड़ना होगा।

साधु संबंधों से मुक्त होने के लिए बना जाता है, कर्म से मुक्ति के लिए 'ध्यान' करना पड़ता है साधु बने बिना 'ध्यान' सच्चा नहीं होता। साधु को भक्तों में लिप्त नहीं होना है राग को छोड़ना है राग को बदलना नहीं है।

516

त्याग तो वह होता है सुबह छोड़ गए तो दोबारा देखने भी नहीं आए। मोक्षमार्गी परिवर्तन का मार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग त्याग का मार्ग है।

हे भव्य आत्मन्! गृही हो अथवा निर्ग्रन्थ, जो आत्मरमण करने वाला है, वह ब्रह्म-आत्म-स्वरूप में विचरण करता हुआ जब 'ध्यान' करता है तो वह शुद्धात्मा होता हुआ कर्म बंध से मुक्त होता है इसमें संशय नहीं है। परानुभूति का वेदन अनंत बार किया है, स्वानुभूति का वेदन एक बार भी नहीं किया। वो क्षण कैसा होगा, जहाँ मात्र देखन हारे को देखना प्रारंभ हो जाएगा।

(517)

बाहर के शत्रु-मित्र मत देखो, अंदर के शत्रु-मित्र को देखो। साम्यभाव रखने का उद्यम करो।

सेनापति! चक्ररत्न अंदर प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है, नाथ! बाहर के सब शत्रु जीत लिए पर घर का कहाँ जीता, वह आप की अधीनता स्वीकार नहीं कर रहा है।

आज भी तो मान जाए, पर मान नहीं मानता है, छोड़ दिया चक्र भाई पर, जो चक्कर खाकर वापस आ गया। कितना ही नुकसान हो जाए, कितना ही कष्ट हो जाए, प्राणी मान को नहीं छोड़ता। रावण ने भी सोचा सीता को वापस कर दूँ, लेकिन मान ने नहीं मानने दिया। मान हार जाए तो तू सच्चा मानव हो जाए।

जागकर जियो, जानकर जिओ शीघ्र उद्वेग में आकर जीवन का निर्णय मत कर बैठना।

(518)

साधना से बड़ी समाधि है समाधि नहीं तो साधना अधूरी। दोस्तों समाधि अवश्य, साधना श्रेष्ठ होगी तब प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव होगा, घर छोड़ने के लिए घर नहीं छुड़ाया जाता, रिश्तों से दूर होने के लिए घर छोड़ा जाता है, घर छोड़ने से पहले आप अपने संबंधों से मुक्त हुए। घर छोड़ दिया सब पर पड़े रहे या पड़ी रही क्या लाभ है, मित्रता का प्रकाश नहीं हुआ, वहाँ रखी चिंगारी जलेगी ही जलेगी।

519

बेटे को अपनी माँ, बाप, दादा से गुरु कहलवाने की शक्ति किसी में है तो वह है रत्नत्रय धर्म और संकल्प शक्ति। ये संकल्प जो है पर्याय की संज्ञा बदल देता है, परिणामों की धारा बदल देता है, ये भव से भावातीत कर देता है, पिता-पुत्र को नमस्कार कर रहा है। सोचो जैनदर्शन कितना निर्विवाद है, गुण पूजक है, यहाँ व्यक्ति की पूजा नहीं, वस्तु की पूजा नहीं। जिनशासन में ज्येष्ठों को नही श्रेष्ठों को पूजा जाता है, परिग्रह किसे कहते हैं? आवश्यकता पड़ेगी- ये ही भाव परिग्रह है।

520

प्रमाद के योग से प्राणियों के प्राणों का विघात करना हिंसा है। जहाँ प्रमाद नहीं है वहाँ अहिंसा है। जहाँ चारित्र और वीतराग मार्ग का संकल्प लिया है, वहाँ मोक्ष सुनिश्चित है और सराग का भाव किया तो बंध निश्चित है, ध्यान करने के इच्छुक जीव को विचार करना है कि निश्चय से मुझमें विभाव भावों का अभाव है, चिंतन में कोई विकारी भाव नहीं लाना। आत्मा में आत्मलीनता ही परम ध्यान है। चित्त इतना चंचल है कि बाह्य वृत्तियों से इसको समय ही नहीं मिल रहा है, जितना आपके पास ज्ञान का क्षयोपशम है, उसे आप पहचान नहीं सके।

(521)

जीवन भर कपड़े उतार कर रह सकते हो, जीवन भर कषाय उतार कर नहीं रह सकते। कपड़े तुमको संसार में नहीं रोके। कषाय तुमको संसार में रोक के रखे है, कषाय की सत्ता में ही कपड़े हैं।

धर्म को कर्तव्य मानकर करता है वह धर्मात्मा होता ही नहीं है। धर्म जो होता है, वह तन्मयभूत होता है, कर्तव्य जो होता है, वह अतन्मयभूत होता है, नौकर कहता है मेरा कर्तव्य है मालिक की सेवा करना। मालिक कहता है मेरा कर्तव्य है माँ-बाप की सेवा करना, घर के लिए धन कमाना। शीतलता पानी का कर्तव्य नहीं, धर्म है ज्ञान जब विभाव में जाता है तभी संसार होता है, ज्ञान स्वभाव में आ जाए तो उसका नाम मोक्ष है।

(522)

धर्म करने के लिए बहुत समय है मत सोचना। जब मंदिर में आएंगे तभी धर्म होगा। मंदिर तो आराधना का स्थान है रास्ते में जा रहे हैं, किसी ने गाली दे दी, आप मुस्कुराइए, क्षमा भाव आ गया है, यही तो धर्म है आपकी प्रशंसा हुई, आप मुस्कुरा दिए हैं, अहंकार नहीं आया, यही तो धर्म है धर्म के लिए समय ही समय है, धर्म के लिए हर समय है। समय यानी आत्मा, समय यानि काल, समय यानी धर्म, समय यानी स्वभाव। ज्ञानी लोग एक-एक समय का आनंद लूटते हैं।

523

ये बंध स्थान आस्रव स्थान – ये सब तेरे परिणामों के हैं, संसार स्थान हैं। विशुद्धि स्थान, निर्जरा स्थान – ये सब मोक्ष स्थान हैं, देव-शास्त्र-गुरु की आराधना मात्र ही जैन धर्म नहीं है क्षेत्र, काल, द्रव्य का प्रभाव जीव की बुद्धि पर पड़ता है। विषयों की चिंता, विकल्पों की चिंता से क्या लाभ है? बार-बार परमेष्ठी का चिंतन, निज आत्मा का चिंतन इससे विद्युत उत्पन्न होती है, जो आपको सिद्धालय भी ले जा सकती है, यह ध्यान की विद्युत है, ये चेतन की तरंगें हैं, धर्मध्यान-शुक्लध्यान। ध्यान के माध्यम से जमीन पर बैठा पुरुष आकाश में उड़ सकता है, ऋद्धिधारी मुनिराज चार अंगुल जमीन से ऊपर चलते हैं।

524

योगी जित-निद्रा होना चाहता है, भोगी निद्रा को बुलाने के लिए गोली खाता है आचार्य विमलसागरजी रात्रि में 2 घंटे विश्राम करते थे। ज्ञानी! जितनिद्रा, जित कषाय, जित भोजी, जित आसन होगा, तब तू ध्यानजयी बनेगा। देर से भोजन मिलने पर क्रोध आ जाना, तुझे ध्यान कहाँ? ज्ञान और ध्यान इन दोनों का संबंध है, विवेक ध्यान को बढ़ाता है, कषाय से संक्लेषता होती है संक्लेषता से आयु कर्म के निषेक का क्षय होता है, तनाव बुढ़ापे को लाता है।

525

हे ज्ञानी ! दो पर विश्वास रखना - (1) भाग्य और (2) भगवान। वन-खंड में सीता की रक्षा के लिए वज्रजंघ राजा पहुँच गया था। साधु की पहचान, उसकी साधना से करना, उसके प्रवचन से नहीं।

द्वादशांग में जो विषयों का कथन है वह आपको आर्त्त-रौद्र ध्यान से बचाने का है।

सिद्धचक्र विधान कर रहा है, कल्पद्रुम विधान कर रहा है पंचकल्याणक कर रहा है, क्या अंदर चल रहा है ? मेरा वैभव बड़े मेरा नाम यश बढ़े, मेरा खूब व्यापार चले। भगवान के चरणों में भक्तों की संख्या बहुत कम हो गई है, भिखारियों की संख्या बढ़ गई है।

526

चित्त की अशुद्धि वह आर्त्त-रौद्र ध्यान है, चित्त की शुद्धि वह धर्म-शुक्लध्यान है।

निर्वाण का साधन - धर्म शुक्ल ध्यान, बंध का साधन आर्त्त-रौद्र ध्यान। देह की रक्षा के लिए आपके पास अनेक उपाय हैं निज को जो घातते हैं, उनसे बचने के लिए तेरे पास कौनसे साधन हैं ? अशुभ कर्म का उदय और अशुभ कर्म का आस्रव युगपत चल रहा है, जिसका पुण्य क्षीण हो चुका है, उसकी सोच भी क्षीण हो जाती है। नारकी शुभ सोचना भी चाहे तो भी अशुभ ही सोचते हैं।

527

मन को स्थिर कर लो, शुद्धात्मा को प्राप्त करना है तो जहाँ परिग्रह होगा वहाँ ध्यान नहीं होगा। जहाँ पैसा खड़ा हो जाए, समझ लेना वहाँ धर्म नष्ट हो गया। 'श्री' (धन) और 'स्त्री' जहाँ खड़ी हो जाए समझ लो वहाँ धर्म पलायन कर चुका है। आत्मध्यान चाहिए तो सारे जगत की नीतियों से दूर होकर, आत्मप्रतीति में लीन हो जाओ। शांति के अभाव में कभी ध्यान नहीं होता। भूताविष्ट के भूत को भगाने में देर नहीं लगती, मोह के भूत को भगाना बहुत कठिन है। आर्त्तध्यान, रौद्र ध्यान - ये संसार के कारण हैं। धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान - ये मोक्ष के कारण हैं।

528

हे योगी! तुम्हारी साधना का उद्गम छोटा हो पर इतना विशाल हो कि सिद्धों के सागर में जाकर मिल जाए (नदी की तरह)।

मिथ्यात्व के साथ यदि रौद्र ध्यान चल रहा है (हिंसा में, परिग्रह में आनंद आना) तो नियम से नरक जाएगा। जो पंचम काल है, वे कालिया नाग है डसे बिना छोड़ेगा नहीं। बचना है तो जिनवाणी उसके सामने रख दे। जो कह रही है तू विकल्प करना छोड़ दें, विकार करना छोड़ दें, जो है सो है। इस जगत की व्यवस्था में लगे रहोगे, तो आत्मा की व्यवस्था कब करोगे।

529

निर्ग्रंथों का धर्म है कि वे आडंबरों से दूर रहें और श्रावकों का धर्म है कि वे निर्ग्रन्थों के पास रहे।

कर्म का उदयकाल बंध का कारण नहीं है। उदय काल में हर्ष-विषाद, राग-द्वेष बंध का कारण है इसलिए शांति से भोगो, आनंद से भोगो।

कोई वस्तु शाश्वत है क्या ? पुण्य भी नष्ट होगा, पाप भी नष्ट होगा, ये दोनों कर्म की प्रकृतियाँ हैं। ये ध्रुव नहीं है पदस्थ ध्यान में अ,सि,आ,उ,सा पंच अक्षरी मंत्र है। चिंतन चल रहा है एक-एक अक्षर मंत्र है। 35 अक्षर का णमोकार मंत्र है। इसमें 'ॐ', 'श्री' मत लगाना। 24 तीर्थंकर का ध्यान पदस्थ ध्यान है।

530

द्रव्य-संयम परिपूर्ण चल रहा है। परभावों में कषाय का कीड़ा लगा है वहाँ चारित्र का धान्य खोखला हो चुका है। अन्तस् को निहार के सुनना, अन्तस में झाँक कर सुनना, सुनना ही नहीं, समझना, समझना ही नहीं, गुनना है परिणति का धर्म सहानुभूति का विषय है जो सहानुभूति का धर्म है वही स्वधर्म है। पर्याय का धर्म पर के नेत्रों का मात्र विषय है दूसरों में अच्छा दिखने के लिए मात्र भेष की आवश्यकता है स्वयं को अच्छा दिखने के लिए भेष मात्र की नहीं शुद्ध भाव की आवश्यकता है।

(531)

तुम्हारी प्रज्ञा पर चढ़े न चढ़े, हमारी बुद्धि में आए न आए, पर सर्वज्ञदेव ने जो कहा है, वह यथार्थ कहा है, ऐसी दृढ़ आस्था। मैं चारों अनुयोग को नहीं जानता, मैं सात तत्त्व को नहीं जानता, मैं पंचास्तिकाय के स्वरूप को नहीं जानता, छह द्रव्य को नहीं जानता, नौ पदार्थों को भी नहीं जानता। बस मैं तुझे जानता सर्वज्ञदेव ने जो कहा वह सत्य है। हे ज्ञानियों, अपने मस्तिष्क से अरहंत की वाणी का निर्णय मत करो और अरहंत की वाणी के अनुसार अपने मती का निर्णय करो। अपनी दृष्टि से जिनवाणी को मत तौल, जिनवाणी के अनुसार अपनी दृष्टि बनाइए।

(532)

भैया! कषाय के निमित्त प्रबल बैठे हो, तब भी मुस्कुरा करके अपने आत्मभाव को शांत रखना। जिसके शरीर को वसूलने से छीला जा रहा हो और तब भी शांत बैठा हो यही तो प्रवचन है, प्रवचनसार है, नियमसार है, यही मूलाचार है और यही समयसार है ज्ञानी! साधना वो करो, लोग सुनने न आये, देखने आये आप चाहो तो अपने भीतर के यश को प्रकट कर सकते हैं, चाहो तो अपने भीतर के नाटकी को प्रकट कर सकते हो, आप चाहो तो भीतर के भगवान को प्रकट कर सकते हो यह तो कच्ची लोई है।

533

पुण्यात्मा जीव को देखकर, निर्ग्रन्थ मुनि को देखकर, अरहंत की प्रतिमा को देखकर, पापी के भी भाव बदल जाते हैं, यही रासायनिक क्रिया है। प्रतिमा को देखकर, आँखों में रस टपकने लगता है शरीर में रोमांच होने लगता है। माँ की बच्चे से प्रीति से आंचल में दूध आ जाता है अंतरंग में प्रीति होगी तो आंसू आयेंगे, रोना आएगा ।

पुण्य-पाप दोनों को पुद्गल की पर्याय मानकर के योग छोड़ दो और रत्नत्रय धर्म में लीन हो जाओ।

534

तत्त्व-पिपासु अन्तस् में जिज्ञासा का जन्म होता है, शंका का जन्म नहीं होता। आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं मुझे भगवान ने कहे सात तत्त्व ही स्वीकार हैं। मुझे तो एक वीतरागी ही पूज्य है, मुझे तो बस सर्वज्ञ की वाणी से अनुराग है। पंचपरमेष्ठी से राग नहीं अनुराग होना चाहिए, वात्सल्य हो।

जो अपने सर्व संकट दूर कर चुका है, उसके दर्शन मात्र से तेरे संकट दूर हो जाएंगे। कोई अन्य तेरे संकट दूर नहीं करता। जो देव स्वयं कर्मों से यानी संकटों से घिरे हैं, वो किसी का संकट कैसे हर सकते हैं। पहला धर्मध्यान आज्ञा-विचय है। एक पुण्य चक्रवर्ती का होता है जो उत्कृष्ट भोग भोगता है, उससे बहुत बड़ा पुण्य उसका होता है, जो भोगों को छोड़कर मुनिराज हो जाता है।

535

आत्मा की 47 शक्तियों में एक स्वच्छत्व शक्ति भी है। मैं स्वच्छत्वशक्ति सम्पन्न हूँ। हे (रज) कर्म! तुम भगवान-आत्मा की सर्वज्ञ शक्ति का नाश नहीं कर सकते, स्वच्छत्व-शक्ति को निहारिए। आत्मा में भावों की कुटिलता से प्रेरित होकर धूल चिपकती है कर्मों की, आत्मा में राग की संदिग्धता होने पर। आपके भावों में कुटिलता चल रही है, आप जान नहीं पा रहे हो, इसका मतलब यह नहीं कि वह हो नहीं रही है, इसका मतलब यह नहीं कि बंधन नहीं हो रहा है।

536

जो जो द्रव्यमान होता है वो-वो पर्यायवान होता है। जीव द्रव्य है, मनुष्य पर्याय है। जहाँ द्रव्य पर्याय होगी वहाँ नियम से गुण होगा। विश्व में कोई वस्तु असत्य नहीं होती है सत्य ही होती है, असत्य भी सत्य होता है, मिथ्यात्व भी सत्य है यदि मिथ्यात्व सत्य नहीं होगा तो सम्यक् को सत्य कैसे सिद्ध करोगे, आप बैनर, पोस्टर, ढोल यह सभी धर्म की प्रभावना नहीं है।

नरक भेजने वाला कोई शत्रु है तो वह मेरे कलुषित परिणाम हैं और सिद्ध बनाने वाला मेरा कोई मित्र है तो मेरे विशुद्ध परिणाम हैं, शत्रु से रक्षा करो मित्र से मित्रता करो।

537

जितने अधिक खुश रहोगे, उतने अधिक निरोग रहोगे। अशुभ बोलते ही स्वयं का मस्तिष्क भारी होने लगता है, विश्व में सबसे बड़ा क्लेश है तो वह है हीन–भावना।

कोई भी तीर्थंकर नया पंथ और धर्म नहीं चलाते। जो मार्ग शाश्वत है, मात्र उसी मार्ग को बताते हैं।

धर्म ध्यान के चार भेद हैं पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत। अर्हं, ह्रीं, ॐ, श्री आदि मंत्रों का चिंतन करना पदस्थ ध्यान अशरीर स्वात्म का चिंतन पिण्डस्थ ध्यान अरहंत परमेष्ठी का चिंतन और रुपस्थ ध्यान सिद्ध परमेष्ठी का चिंतन रूपातीत ध्यान है।

538

जो जीव परतंत्र करते हैं अथवा जीव जिनके द्वारा परतंत्र किया जाता है, उन्हें कर्म कहती है संसारी जीव की मानसिक, वाचनिक, कायिक प्रवृत्तियों के द्वारा जो शुभाशुभ रूप क्रियाएँ होती हैं, उनका निमित्त पाकर पुद्‌गलपिण्ड आत्मा की ओर आकृष्ट होकर आत्मप्रदेशों में – नीर–क्षीर की भांति एकमेक हो जाते हैं वहीं बंध दशा है, यही कर्म है जो भव–भव में भ्रमण के कारण है। कर्म किसी का कुछ नहीं करते हैं, अपितु भावों की विकृति ही विभाव परिणति है, भववृद्धि का कारण है ज्ञानी! योग की धारा भिन्न है, भोग की धारा भिन्न है।

539

पर्याय और पर्यायों के परिणामों के मित्रत्व में ही बंध और मोक्षधारा निहित है जानन क्रिया में बंध है, न मोक्ष है।

ज्ञान कभी किसी को गिराता नहीं है, ज्ञान में मोह की जो शैवाल (चिकनाई) लगी होती है वह पटकती है। ज्ञान में असंयम की मिट्टी जो पड़ती है वो गिराती है उसको उठाने वाला कौन होता है वो ज्ञान ही होता है। अज्ञान से तो कुछ होता ही नहीं है, जो कर्मों की कीचड़ छपाकर बैठे हो, उसे जिनवाणी भगवती माँ के नीर से ही धो पाओगे। निज के आत्मकुंड में भरा है ज्ञान नीर, उसमें डुबकी लगाओगे तभी स्वच्छ हो पाओगे।

540

संसार में होना कष्टप्रद नहीं है, संसारी होना कष्टप्रद है। एक भवन में तुम भी हो, मुनिगण भी है क्या दोनों की अनुभूति एक सी है, एक घर में नौकर भी रहता है, मालिक भी रहता है क्या दोनों की अनुभूति एक सी है। सिद्धालय में निगोदिया जीव भी होते हैं और सिद्ध भी रहते हैं। जो भ्रमण है उसका नाम संसार है और जो संसरण कर्म सापेक्ष है इसलिए संसार से नहीं डरना, संसरण से डरना चाहिए, पर्याय के पाप तो दिखाई देते हैं, परिणामों के पाप कौन बताएगा?

541

भगवान की भक्ति के लिए केवल मंदिर मत जाना, भगवान बनने के लिए जाना। दर्पण को देखने का लक्ष्य नहीं होता, दर्पण में देखने का लक्ष्य होता है। अरहंत के कैवल्य में तुम जानो कि मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय कैसा है? वर्तमान में अशुद्ध, अशुद्ध, अशुद्ध है आपकी शुद्ध, शुद्ध, शुद्ध है तो पुरुषार्थ करो अशुद्ध को पूछने का, तो एक दिन तुम भी शुद्ध बन जाओगे। सर्वज्ञ के पास जाकर सर्वज्ञ नहीं बन सकते, सर्वज्ञ तुम अपने ही ज्ञान-पुरुषार्थ से बनोगे और वह शक्ति तुम्हारे अंदर है।

542

हे मुमुक्षु! कर्मातीत होना है, तो वर्ण से अतीत, शरीर से अतीत, स्पर्श, गंधातीत, सर्वद्वंद्वों से अतीत, मुक्त परम-पूज्य सिद्धों का ध्यान करो फिर वीतरागी बनो, रत्नत्रय धर्म को धारण करो।

द्वैत धारा में अद्वैत का वेदन कैसा, ग्रीष्म में शीत का वेदन कैसा? शीत में ग्रीष्म का वेदन कैसा?

अज्ञानी प्राणी विषयों की अग्नि में अनंत की आहुति दे चुका है, कषाय के अवसर आने पर कषाय नहीं आने देना इसका नाम साम्यभाव है। निमित्त से नैमित्तिक प्रभावित न हो, इसका नाम चारित्र है। खजानों पर बैठा है, फिर भी मान नहीं इसका नाम चरित्र है।

(543)

आज आत्मा की सिद्धि की आवश्यकता है, आत्मा की सिद्धि हो गई तो सारे धर्म की सिद्धि हो जाएगी। ज्ञान का जो कार्य है वह जानन क्रिया है। निज का द्रव्य क्या है? पर का द्रव्य क्या है? ये जानने में मोह की धारा कैसी है? सम्यक् सहित जान रहा है, जैसा का वैसा जान रहा है यह ज्ञानी! तेरे विवेक की धारा है ये ज्ञान की धारा नहीं है ज्ञान में विवेक है, पर हेय-उपादेय को जानता है। उपेक्षा को साथ में लेकर चलता है। जानने में मात्र जानन है, वह जानन-जानन धर्म है, वह त्रैकालिक है।

(544)

तुम्हें किसी ने धक्का दिया, तो लोग उठाने आ जाएंगे। तेरे अशुभ भावों ने धक्का मारा तो कौन उठाने आएगा? अशुभ भावों का होना भी, अशुभ कर्म का उदय है, किंचित् भी जिसको प्रेम वात्सल्य न हो, अनुराग न टपकता हो, उसे नारकी समझो (भाव नारकी है) बुद्धि पूर्वक जो क्लेश करते हैं संक्लेश करते हैं वे बुद्धि पूर्वक अपने को दुर्गति का भाजन बनाते हैं। भगवान आत्मा की अनुभूति लो जो सत् है, सत्य है। जो ग्रंथ खोलकर रुचि से जिनवाणी सुनता है, पढ़ता है वह एक दिन अवश्य ही निर्ग्रन्थ होता है। अरहंत जिनेंद्र के बिम्ब से आपके बिम्ब का दर्पण हो जाए तो वैराग्य-ज्योति प्रगट होती है।

545

ज्ञान को विकृत करके ही अशुभ किया जाता है, चिंता के लिए कोई वस्तु है नहीं, मेरा चित्त ही है आपका परवस्तु में राग ही चिंता का कारण है। मुक्ति भी मेरे अंदर है और कष्ट भी मेरे अंदर है। पर का चिंतन करने वाला स्वस्थ पुरुष भी रोगी हो जाएगा। परमात्मा को पहचानना कठिन विषय नहीं है, निज आत्मा को पहचानना कठिन विषय है, सम्यग्दर्शन को चुराने वाले अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ हैं, सम्यक्त्व को बचाना है तो इनको दूर कर दो।

546

उपवास मत करो, त्याग मत करो केवल एक चिंतन प्रारंभ कर दो – मैं अपने सुख को देखूँगा तथा दूसरे के दुख को देखूँगा – बस। एक साधु पुरुष मात्र अपने सुख पर दृष्टि रखता है।

आर्त्त–रौद्र ये दो ध्यान जो हैं। ये मात्र तुम्हारे पुण्य को खाली कराने के साधन हैं। आपको 24 घंटे अपने परिणामों को देखना चाहिए वह किधर जा रहे हैं। आर्त्त–रौद्र है तो नरक गति की धारा, धर्म–शुक्ल तो स्वर्ग–मोक्ष की धारा बन रही है। भगवान की पूजा करना सरल है, अपने भावों को संभालना कठिन है। कषाय की आंख बंद करना 48 मिनट भी कठिन है। शरीर के कष्टों को झेल रहे हो, फिर कषाय के कष्टों को झेल रहे हो। कषाय की बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब ज्ञानी है तब धर्म ध्यान में प्रवेश करता है।

547

निकल परमात्मा बनना है तो कर्तव्य बुद्धि अभी से तुरंत छोड़नी होगी। हे मुमुक्षु! जितने कष्ट हैं, सब राग के कारण हैं, गृहस्थ शुद्धात्मा का ध्यान करता है। भावनारूप, योगी शुद्धात्मा का ध्यान करता है अनुभव रूप अंतर है। गृहस्थी शुद्धोपयोग की भावना भाता है कि मैं भी शुद्धोपयोग भूत हो जाऊँ। अप्राप्त की भावना होती है, प्राप्य की अनुभूति होती है, जब तक यह जीव भगवत्ता को प्राप्त नहीं होता, तब तक ही ध्यान होता है वस्तु प्राप्त नहीं, तब तक भावना है।

548

भावना में भविष्य दिखता है अनुभूति में वर्तमान होता है कितने जीव ऐसे हैं जो स्मृति में पाप कर रहे हैं कितने जीव ऐसे हैं जो स्मृति में पुण्य कर रहे हैं। शुभोपयोग की पवित्र धारा, उसके प्रभाव से होते हैं पंचाश्चर्य। इंद्रिय सुखों का सेवन के बिना आहार दान देने में श्रावक को जो आनंद आ रहा है, यही अतींद्रिय आनंद है पंचपरमेष्ठी की आराधना करते समय जो गद्‌गद् भाव आ रहा है, वह अतींद्रिय आनंद है, जिनवाणी के शब्द कान में पड़ते ही आत्म हलाहल रहा है ये ही अतींद्रिय आनंद है मन में हर्ष आ रहा है, तीन अवस्थाओं में – स्मृति, अनुभव तथा भावना। मरना समाधि नहीं है, ध्यान का नाम समाधि है जीवन के हर पल में जागृत रहो भूतकाल की पाप रूप स्मृतियों का विसर्जन कर दो। पेट भरना सरल है इच्छाओं को भरना बहुत कठिन है।

549

पुण्य के फल को भोगना, ये पुण्य का बंध नहीं है। अज्ञानी यही सोच रहा है कि मैं तो बहुत पुण्यात्मा हूँ, तू पुण्यात्मा नहीं, पुण्य-भोगी है। पुण्य का संचय करने वाला, एक गरीब पुण्यात्मा है। 48 मिनट के अंदर-अंदर व्यक्ति पुण्य प्रकृति को झुलसा लेता है और कितनी पाप प्रकृति का संचय कर लेता है, उसे ज्ञान भी नहीं है। पुण्य उदय को यदि तुम भोगोगे नहीं, सुरक्षित रख लो तो उससे कितना गुना फल पाओगे। और यदि चरित्र की भूमि में लगा दिया तो मोक्ष फल पाओगे। दुष्ट देह नहीं है दुष्ट तो निज के भीतर का-दुर्ध्यान है।

550

मेरा सोच शौच हो जाता, तो पर के लिए सोचना नहीं पड़ता। किसी को मत देखो बस सोच को शोच कर लीजिए, फिर घना आनंद आएगा, जो शरीर मैं भोग रहा हूँ, वह नया नहीं है, उच्छिष्ट है झूठन है। तन के राग में सारे पाप हो रहे हैं, यह धन-घर तो सब छोड़ देना, लेकिन धर्म को मत छोड़ना। पुद्गल के टुकड़ों के राग में, परमार्थ सत्ता से शून्य मत हो जाना। पुण्य के बिना, तेरा सारा पुरुषार्थ बेकार है, विरले जीव हैं जो जीते-जीते जी रहे हैं जितने आपको मिल रहे हैं वह सब संयोग है, अपनी स्वतंत्रता पर लक्ष्य लाओ।

(551)

जीव के जीवत्वपने का बोध होना आवश्यक नहीं अनिवार्य है। विश्व को जानना कितना सरल है जो विश्व को जान रहा है उसे जानना कितना कठिन है। ग्रंथों में जो आत्मा का स्वरूप लिखा है वह श्रद्धा है, विश्वसनीय है, ज्ञानगम्य है–अनुभवगम्य नहीं है। गृहस्थ आत्मा शुद्ध होती है, कर्मातीत है इस बात को सविकल्प धर्मध्यान से सही विकल्प ज्ञान से, जानता है पहचानता है शुद्धात्म स्वरूप में, शुद्धोपयोग में तन्मयभूत होकर के वीतरागी दिगंबर जैसा वेदन कर रहा है वैसा गृहस्थ नहीं करता।

(552)

जो प्रगट शुद्धात्मा है वह ध्यान करती नहीं, वह सिद्धालय में है कर्म–सहित अशुद्धावस्था में ही निज शुद्धात्मा को अनुभव कर लेना – इसे समझना है। शादी जिस लड़की से होनी है वह अपने माँ के घर में है पर चारपाई पर लेटा लेटा उसका चेहरा, उसकी पूरी आकृति देख रहा है या नहीं, उसका अनुभव हो रहा है या नहीं, अभी तुझे माल का ऑर्डर मिला है, लेकिन तू उससे होने वाले लाभ को देख रहा है या नहीं। लाभ के प्रति प्रीति, पत्नी के प्रति प्रीति जब उसका वेदन करा रही है तो निज आत्मा की प्रीति उसका वेदन नहीं कराएगी फिर तू कैसा योगी। योगी निज स्वभाव में जब लीन होता है। संपूर्ण विकल्पों से हटता है तब शुद्ध का आश्रय लेकर ही जीव शुद्ध होता है।

(553)

तुम अपनी पत्नी से मिलने ससुराल जा रहे हो। तुमने किस का आश्रय लिया है पत्नी का। पत्नी का आश्रय लिए बिना ससुराल नहीं पहुँच सकते। जिस योगी के ध्येय में निज शुद्धात्मा होगी, वह सिद्ध भूमि तक पहुँच सकेगा और जिस योगी के ध्येय में निज शुद्धात्मा नहीं है वह शुद्धात्म स्वरूप को उत्पन्न नहीं कर पाएगा। ज्ञानियो ! अशुद्ध अवस्था में ही शुद्धावस्था का ध्येय-ध्यान बनाना पड़ेगा। वर्तमान में यह सही है कि तेरी आत्मा शुद्ध अवस्था में नहीं है।

(554)

तेरे भाव जैसे हैं वैसे तेरी करनी है। किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है कि तेरी कौन गति है? तेरी परिणति क्या चल रही है, तू स्वयं देख। चित्त प्रसन्न अपने हाथ में है, चित्त अप्रसन्न अपने हाथ में है, स्थिति का तो एक बहाना है, जो कमजोर किया करते हैं। 'उपयोगोलक्षणम्' जो उपयोगमयी है, वह आत्मा है उपयोग क्या है ज्ञान-दर्शन। आज शास्त्र-स्वाध्याय तो बढ़ रहा है लेकिन स्वाध्याय नहीं है स्वाध्याय+अध्याय, निज आत्म-अध्याय। पहले ज्ञाता बन फिर वक्ता बन श्रोता वह जो कहता मैं दुनियां की बात नहीं सुनना चाहता। भगवान आत्मा कैसी होनी चाहिए, यह सुनना है यह सुनना है केवल मनुष्य पर्याय में ही संभव है।

555

महात्मा बनना है तो ध्यान करना पड़ेगा, परमात्मा बनाना है तो ध्यान करना पड़ेगा, नरक जाना है तो ध्यान करना पड़ेगा, पशु बनना है तो ध्यान करना पड़ेगा, बिना ध्यान के मनुष्य नहीं बन सकता, बिना ध्यान के देव नहीं हो सकता, और बिना ध्यान के मोक्ष नहीं पा सकता। आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान, भद्र परिणाम, शुक्ल ध्यान, किसी में तो उसे रहना ही है। गृहस्थों यदि निर्वाण प्राप्त का लक्ष्य है, भावातीत होने का लक्ष्य है तो अशुभ भावनाओं से अतीत होना ही पड़ेगा।

556

जिसकी परिणति अशुभ है, उसकी गति नियम से अशुभ है याद रखना कोई किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकता है। बैठे-बैठे, प्रवचन सुनते-सुनते अपनी प्रज्ञा में अशुभ भी सोच सकते हो और शुभ भी सोच सकते हो। आप काल को दोष दे रहे हो, आप क्षेत्र को दोष दे रहे हो, ये क्यों नहीं कहते मेरा पुण्य का द्रव्य कमजोर है। अपने भावों पर क्यों नहीं विचार करते हो, सोच को शोच करो, विचारों को पवित्र करो काल दोष तो सब के साथ आना चाहिए, ऐसा नहीं है। बैठे-बैठे तुम्हारा मोक्ष बन सकता है, मात्र दृष्टि को बदलना है। जितनी सामग्री बढ़ेगी, उतना राग बढ़ेगा और जितना राग पढेगा, उतना बंध बढ़ेगा। जिसे अपने जीवन में शत्रु बढ़ाने है वह बहुत संपत्ति जोड़ ले।

557

ज्ञानी! द्रव्यकर्म एवं भावकर्म, इस प्रकार कर्म के दो भेद हैं। ज्ञानवरण आदि यह आठ प्रकार के द्रव्य कर्म हैं और जो जीव की आत्मा की, राग-द्वेषमयी परिणति है, वह भाव कर्म है। अनादिकाल से ये कर्म आत्मा के साथ बंधन बद्ध है। बंध के कारण ही आत्मा व्यवहार से मूर्तिक है कर्म से बंधा है, तभी तू संसार में भ्रमण कर रहा है। यदि बंध न होता, तो निर्बंध होने का पुरुषार्थ क्यों करना पड़ता? योगी पुरुष बंध से निर्बंध होने का पुरुषार्थ करते हैं। बंधन में दु:ख है पराधीन सपने में भी नहीं सुखी। इसे आपने कभी समझा ही नहीं। आप मोह की रस्सी से बंधे हो, जिसे आपने कभी देखा ही नहीं। कभी तोड़ा ही नहीं।

558

आत्मा को दुख दे, दुख में डाले वहीं कषाय हैं जो आत्मा को कसे। कषाय ही कलंक है कषाय का कलंक मिट जाये, तू कर्मातीत होकर सिद्धालय में विराजित हो जाये। जो मन की चेष्टा में कषायों को उत्तेजित करें वही नोकषाय हैं पूर्व संस्कार वश यह जीव पाप-प्रवृत्तियों में संलग्न रहता है, तिर्यंचों को काम-सेवन किसने सिखाया। सिंह को क्रूरता किसने सिखाई? यह जीव का पूर्व का संस्कार कार्य कर रहा है। कषाय के वशीभूत होकर जीवन आनादि काल से संसार में भटक रहा है।

(559)

रत्नत्रय की आराधना, देव-शास्त्र-गुरु की आराधना, पंचपरमेष्ठी की आराधना। संयमाचरण का पालन, और सम्यक्त्वाचरण का पालन यह ही व्यवहार धर्म है। समाजिक कार्य व्यवहार धर्म नहीं है वह लोकव्यवहार है। पर के द्वारा पूजा प्राप्त करना है तो भेष बनाना पड़ता है, निज से निज को पूज्य बनाना है तो भाव बनाना पड़ता है। दूसरे से पूजा करवा लेना बहुत कठिन नही है स्वयं के भीतर से स्वयं की पूजा करवाना बहुत कठिन है। यंत्र-मंत्र-माला-मोती आदि में सब कुछ होता है, तो स्वयं के पुण्य-पाप का क्या होगा ?

(560)

अपना जीवन सत्य का जीना, यही धर्म है ये पर्याय मिली है, उसे सत्य में जी लो, बस सारे लोक से अपरिचित हो जाओगे, सारे विकल्प समाप्त हो जाएंगे, उसे समझो, उसे जानो जिसे तुम आज तक जान नहीं सके हो। अनादि से काम, भोग, बंध की कथा को समझा है उसी में रमा है। शुद्धात्मा को समझने के लिए इंद्रियों को समझने की आवश्यकता नहीं है जितने जगत के प्रपंच हैं। इन सबमें आप कुशल हैं। पांचों पापों के आप प्रोफेसर हैं आत्मज्ञान चाहिए तो सारे पापों को, सारे प्रपंचों को छोड़ना पड़ेगा। 'संक्लेश मुक्त मनसा' जहाँ बैठकर जिनवाणी का स्वाध्याय करना है। देह की पीड़ा सहन कर लेना सरल है पर वचनों की पीड़ा सहन करना बहुत कठिन है, जो अहिंसा में उतर जाएगा, वहीं शुद्धात्मा में उतर पाएगा।

(561)

ध्येय तुम्हारा जैसा होगा, ध्यान वैसा होगा ध्याता की दृष्टि में ध्येय क्या है ? सोचो, ध्यान भी वही चलेगा। तुम्हारे अंतस में मैत्री भाव का जन्म होगा, तब ध्यान का प्रारंभ होगा।

कुछ भी अशुभ करके आए, ध्यान में बैठे हैं कौन आएगा सामने ? आप अशुभ कर तो सकते हो लेकिन आप अशुभ को स्वीकार नहीं कर सकते। जहाँ प्राणी मात्र पर करुणा, वात्सल्य, दया निहित है वहाँ धर्म है। भगवान की यदि तुम नहीं सुनते, कम से कम तुम अपने हृदय की तो सुनो। गलती करते हुए भी सत्य बोलता है। प्रायश्चित होता नहीं, जो प्रायश्चित लेने का चित्त हुआ वही प्रायश्चित है।

(562)

मन को केवल ज्ञान और वैराग्य की रस्सी से ही बाँध सकते हो। स्वच्छ ज्ञान को निज आत्मा की अनुभूति में लगा कर रखना इसका नाम संयम है। मन-वचन-काया के माध्यम से जो आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन है, उसका नाम योग है इंद्रियाँ पाप नहीं कर रही हैं, इंद्रियाँ कर्ता नहीं है, इंद्रियाँ कारण हैं। अशुद्ध अवस्था में अशुद्ध कर्म इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा ही कर रही है ये गतियाँ, ये शरीर के लिए नहीं हैं। गतियाँ आत्मा की हैं, भगवान के कैवल्य में मेरी अशुभ क्रिया न झलक जाए - चिंतन का विषय है।

(563)

आज जीव मोक्षमार्ग में आकर भी परिणामों की विशुद्धि के दाने नहीं डाल रहा है मात्र खेत में परिश्रम कर रहा है। कैसे मोक्ष की सिद्धि होगी? जिनवाणी भक्ति पूर्वक, प्रीति पूर्वक एकाग्रता से वे ही सुन सकते हैं, जो भविष्य के भगवान हैं। मोक्षमार्ग का कथन भव्य ही सुन पाते हैं, अभव्य नहीं।

'जो चाहो अपनो कल्याण, ताहि सुनो भवि मन थिर आन' प्राणी पाप के फल से डरता है, लेकिन पाप छोड़ता नहीं है, जिनका मन शील से शृंगारित है वे तन को क्यों सजाएंगे? जो जीव सारे परद्रव्य को झांकता रहेगा, उसे स्वरूपलीनता संभव नहीं है।

(564)

वे अभाग्य पुण्यहीन जीव हैं, जिनको निर्ग्रंथ के हाथ पर ग्रास रखने के भाव न हों। पंचम काल का प्रबल पुण्य है कि तुमको भी वीतरागी तपोधन दिख रहे हैं। शाश्वत निर्वाण-सुख को वही प्राप्त करता है जो निज शुद्धात्मा को ध्याता है, भावना रूप गृहस्थ भी कर सकता है जिन जीवों को नरक, तिर्यंच, मनुष्य 3 आयु का बंध हो चुका है, उसके मुनि बनने के भाव नहीं आ सकते और न ही वह व्रती-महाव्रती बन सकता, जबकि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है।

(565)

भगवान जिनेंद्र की प्रतिमा का पुजारी स्वर्ग ही जा सकता है, निज की आत्मा का पुजारी सिद्धशिला पर जा सकता है। हर पल शुद्धात्मा का वेदन शुरू करो। ये रमण का विषय है, गमन का नहीं ये ध्रुव दृष्टि है, ये वस्तु-स्वभाव की भाषा है।

मैंने अपने ज्ञान का क्षयोपशम जितना अपने लिए प्रयोग नहीं किया, जितना दूसरे परद्रव्यों के लिए प्रयोग किया। टॉर्च को इस्तेमाल के तुरंत बाद बंद कर देते हो इसका सेल समाप्त ना हो जाए - तेरी आंखों की, तेरी आयु की कोई कीमत नहीं, पर को देखने में, विषयों को देखने में सारी समाप्त हुए जा रही है प्रतिक्षण वीर्यान्तराय का, ज्ञानावरणी का, आयु कर्म का क्षयोपशम फ्यूज हो रहा है, परिणामों की विशुद्धि फ्यूज हो रही है, उस पर कोई ध्यान नहीं है। मात्र कषाय के शिखर पर बैठा है।

(566)

इस पर्याय का ही सुख देखना चाहते हो कि आत्मा का हित भी देखना चाहते हो। धर्म के लिए मात्र धर्म करो, रुचि पालन के लिए धर्म मत करो। कोई भी कर्म का बंध स्वयमेव नहीं होता। राग-द्वेष की चिकनाई से होता है निधत्ति-निकाचितकर्म का बंध पंचपरमेष्ठी के चरणों में ही होता। जिस व्यक्ति के अंदर संयम, तप, त्याग, आराधना भरी है, उसके चेहरे पर अवश्य झलकेगी।

567

नेत्रों की दृष्टि कमजोर हो गई, पर आशाओं की दृष्टि कमजोर नहीं हुई। हमको वर्धमान हुए हैं कि हीयमान हुए हैं, लोक के यश पर दृष्टि जा रही है तो आत्मख्याति नष्ट हो रही है, स्वयं की अनुभूति ही तो आत्मख्याति है, उम्र ढल रही है तो साधना बढ़नी चाहिए। कर्मसिद्धांत, वस्तु-स्वतंत्रता, कारण-कार्य व्यवस्था इन पर गहरा चिंतन होना चाहिए सोचो, तुम्हारा अपना चिंतन क्लेश दे रहा है, मानसिकता को शुद्ध करो, चित्त को वश में करो।

568

चलते, फिरते, खाते-पीते, भोजन करते, व्यापार करते, घर में रहते, वह ध्यान नहीं कर सकते, जो मोक्ष प्राप्ति में कारण हो।

मोक्ष जाना है तो सारी क्रियाओं से शून्य होना पड़ेगा। कार्य नहीं छोड़ेंगे, तो विकल्प समाप्त नहीं होंगे। कारण छोड़े बिना, कार्य बंद नहीं होता। कार्य-परमात्मा पर पुरुषार्थ करो, कारण परमात्मा को संभाल के। जो पर भव्यात्मा मन को एकाग्र करके शुद्धात्मा को ध्याता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है भव के भव पर को दिए, एक बार निज को दे दो, देखना उसका क्या फल होगा ? मोक्षमार्ग जगत को, जगती को निहारने का नहीं है लोकेषणा, वित्तेषणा, धनेषणा, पदेषणा इन सब से रहित मोक्षमार्ग है।

569

मत पकड़ना विकल्प जब सारे विकल्प परे हुए तब केवल ज्ञान हुआ। हे प्राणी अपने ज्ञानस्वरूप को धारण करो, उस ज्ञानस्वरूप में ही आचरण करो और चलना बंद करो। कर्मों का त्याग करके, आत्म तत्त्व में ही आचरण करो अर्थात् अपना उपयोग निज में ही लगाना, पर से हट जाना। वही परमात्मा बन सकता है। ध्यान ही शांति का कारण है, ध्यान ही अशांति का कारण है, एक शुभ ध्यान, एक अशुभ ध्यान। ये दोनों धाराएँ स्वाश्रित हैं, स्वयं के पास है प्रसन्नचित्त होना भी मेरे हाथ में है। संक्लेशित होना भी मेरे हाथ में है।

570

जो जो वेदन कर रहे हैं, वह सब देश है, जो जो अनुभव कर रहे हैं वह सब देश है, जहाँ अद्वैत धारा प्रारंभ होती है, वहाँ पर आवाज समाप्त हो जाती है। धर्म को पालना नहीं पड़ता। धर्म तोते का लिखें। यह प्रबंधों आपने जो जान के रखा है वह सब अज्ञान भाग है, वह सब आपको भूलना पड़ेगा। उस आध्यात्मिक विद्या को पाने के लिए जो जो आप संसार में सीख रहे हो, विशेषज्ञ विद्या है। उन सबका प्रत्यय क्या करना होगा ? योगी बनने के लिए एकांत में जाना पड़ेगा।

571

ईंट–चूने के घर की सफाई के लिए तो आप खुद स्वामी बन जाते हो और निज आत्मा घर की सफाई के लिए आप आ.भगवंत और तीर्थंकरों की ओर देखते हो, कि महाराजा! कुछ उपाय बता दो। भाई! शोधन तो आपको ही करना होगा। उपादान की योग्यता तुम्हारी निर्मल होगी तो आत्मचिंतन भी चेतन प्रभु को जगा देगा। पुण्य यदि तेरे पास है तो वह है जिनवाणी, अर्हंतबिम्ब तथा निर्ग्रंथ गुरु।

वैभव, सम्पत्ति, यश को कभी पुण्य का नाम मत दे देना। पूज्यपाद स्वामी ने पुण्य को वैभव नहीं कहा, पवित्रता को पुण्य कहा है।

572

भो ज्ञानी! पवित्र करने वाला कोई द्रव्य है तो वह है रत्नत्रयधर्म। रत्नत्रय धर्म के प्रति जिसकी भावना निर्मल हो रही है। भक्ति उत्पन्न हो रही है, श्रद्धा है तो समझो भवितव्यता निकट है। काल को खोटा मानकर मत बैठना, आज भी अपने परिणाम के कर्त्ता तुम स्वयं हो, अच्छा करोगे तो अच्छा भोगोगे बुरा कहोगे तो बुरा भोगोगे, निर्णय आपको करना है। हे प्रभु! ज्ञानी कह रहा, मैं बंधन के लिए वंदना नहीं करता, निर्बंध होने के लिए वंदना करता हूँ। कभी भूलकर ज्ञान मात्र से मोक्ष मत कह देना, जब तक श्रद्धान और चारित्र नहीं होगा। मोक्ष नहीं होगा।

573

तुम्हारे नेत्रों में, मस्तिष्क में प्रतिक्षण–प्रतिपल अरहंत देव दिखने चाहिए – यह रूपस्थ ध्यान है। ये आंखें संसार की तरफ घूमती हैं तो बंध अशुभ होगा। जब परमात्मा के चरणों को देखती हैं तो बंध शुभ होता है। जिसके ज्ञान में परमात्मा, ज्ञेय में परमात्मा, ध्यान में परमात्मा समझो वह भविष्य का परमात्मा। भाव कर्म जब अशुभ होते हैं, तब ही द्रव्य कर्म अशुभ आते हैं। ये पर्याय के मित्र परिणामों के शत्रु हैं, जब असाता का, अशुभ का तीव्र उदय हो तो कहीं नहीं जाना, कुछ मत करना अपमान और हानि के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा। एक काम करना 'धम्मं सरणं पव्वज्जामि' धर्म की शरण लेना।

574

जिन जीवों का तीव्र असाता का उदय है, जहाँ कषाय की प्रचुरता है, मिथ्यात्व प्रचुर है उनको भगवान दिखाई नहीं देते हैं।

मारीचि भगवान ऋषभदेव के समवशरण में भगवान को नहीं देख सका और वापस लौट आया जैसे चमगादड़ सूर्य के उदय होते ही अंधेरे कोने में चिपक जाता है। जब तक विवेक है, बुद्धि है, शरीर स्वस्थ है अपने आप को संभाल लो तभी तुम अंतिम समय में तत्त्वों को संभाल पाओगे।

575

इंद्रियों को दोष मत देना, देह को दोष मत देना, तेरी आत्मा के विकारी भावों के ज्ञान का जो विपरीत परिणमन हुआ है, उसके कारण तुम संसार में भटक रहे हो।

रागादिक भाव को छोड़कर परमात्म-दशा को प्राप्त करेगा, तो वहाँ पर भी सिद्ध-स्वभाव का स्वयं ही भोक्ता है।

आज तुझे पुण्य की छाया मिली है, इसे भोगों की धूप में मत जला डालना।

द्रव्य जो त्रैकालिक मौजूद है। द्रव्य में जो परिवर्तन है, वही पर्याय है, परिवर्तन हो तो भी ज्ञान-दर्शन है, हर योनि में ज्ञान-दर्शन है।

जिनवाणी कहती है कि योग भी निर्मल हो, उपयोग भी निर्मल हो और संयोग भी निर्मल हो उसका नाम मोक्षमार्ग है।

576

द्वादशांग में मात्र द्रव्य-गुण-पर्याय मात्र का ही कथन है। डॉक्टर कहेगा - हार्मोन्स की कमी है, कर्मसिद्धान्त कहेगा वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम मंद पड़ चुका है। भो ज्ञानी! जिस दिन तत्त्व ने तत्त्व को समझ लिया, उसे परम तत्त्व बनने में देर नहीं लगेगी। जो मात्र द्रव्यानुयोग को ही समझ रहा है, तीन अनुयोगों की अविनय कर रहा है, वह घोर मिथ्यादृष्टि है, जिनवाणी कह रही है मेरे समझाने की चार शैलियाँ हैं, चारों को समझना।

577

भो ज्ञानी! परमज्ञान ही महान है, वह योगियों को स्वात्मानुभव से उत्पन्न हो रहा है, जो ज्ञान संसार में, विषयों में जा रहा है, उसे ज्ञान मत कहना, वह तो अज्ञान है, यह अज्ञानभाव का परिणमन ही कषाय और मोह की प्राप्ति करता है। रागियों को राग हेय नहीं लगता, वह तो वीतरागियां को लगता है। दूषित मन को धोने का कोई माध्यम है तो एकमात्र जिनवाणी ही है। मोह का विगलन भी ज्ञान से ही होता है। जिन जीवों की भवितव्यता बिगड़ चुकी है, वह धर्मसभा को छोड़कर चले जाते हैं, कषाय की तीव्रता से नरक का ही बंध होता है।

578

राग ही हिंसा है, राग से ही कर्मबंध होता है। यदि राग से बचना है तो परिवार को रिश्तेदार समझो। उनको अपना बना लिया, साझेदार बना लिया तो समझो कर्मों से साझा कर लिया। धर्म तो आपके घर में होगा, मंदिर में तो धर्म सीखा जाता है। जीवन में विवेक के साथ, ज्ञान के साथ रहना, जिससे कर्म का बंधन न हो। अनंत पर्याय पाकर, आज तक अहिंसाभाव नहीं हुआ। दूसरों की पर्याय का घात होता है और तेरे परिणामों का घात होता है, कषाय की तीव्रता में चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है।

579

निश्चय नीर नहीं, व्यवहार नीर नहीं। इनके मध्य में जो वीतराग धर्म की धारा बह रही है, वह है नीर। जिसने तटों को पकड़ लिया, वह कभी भी अपनी प्यास बुझा नहीं सकता। किनारे तो किनारे हैं। रत्नत्रय धर्म वह तेरा नीर है, वह धारा है। जो तत्त्व को जान लेता है, वह मध्यस्थ हो जाता है, विवाद अज्ञानी ही करता है। जो दोनों नय के बीच मध्यस्थ है वह देशना को प्राप्त करता है। जिनवाणी को सुनकर भी कषाय भाव से पूरित हो रहा है क्या वह जिनवाणी का ज्ञान है ? अज्ञानी बनकर रह लेना, लेकिन अधूरे ज्ञानी मत बनना। जिनवाणी में कभी अपना (निज) चिन्तन मत जोड़ देना। सर्वज्ञ की वाणी का ही केवल कथन करना।

580

जैनदर्शन जीना मात्र नहीं बताता, वह बताता है 'जियो और जीने दो।' जिसके रात्रि भोजन का त्याग नहीं, पानी छानकर पीने का नियम नहीं, अभक्ष्य का त्याग नहीं, क्या उसे समयसार, जिनवाणी सुनने का अधिकार है? वह जिनवाणी नहीं एक उपन्यास पढ़ रहा है। यदि आप वास्तव में आगम और जैनतत्त्व को समझ रहे हों तो अपनी चर्या और क्रिया को सुधारना आरंभ कर दो। जब तक विवेक जागृत नहीं होगा, भगवान नहीं, मुनि नहीं, श्रावक नहीं बन पाओगे।

581

जब तक तुम्हारे अंदर विकार सता रहे हैं। परमात्मा नहीं दिखाई देगा। अहो! शरीर का राग ही तुझे अशरीरी नहीं बनने दे रहा है। शुभचन्द्र स्वामी ने 'ज्ञानार्णव' में लिखा है हे साधक! निर्मल साधना के लिए तो वृद्धों की संगति कर, उनकी सेवा कर, उनसे अनुभव ज्ञान मिलेगा। भावों में निर्मलता तथा मृदुता रखना। वही पुरुष है। जो आत्मदृष्टि से देखता है, उसे पर्यायों का परिणमन नहीं दिखता। संयोग या वियोग पर्यायों का। सच्चिदानन्द स्वरूप को न समझने के कारण इस जीव ने पुद्गल में आनन्द मनाया है, पुद्गल में आनन्द के कारण ही संसार भ्रमण चल रहा है।

582

तीन लोक में छह द्रव्यों के आगे कुछ भी नहीं है। छह द्रव्यों में जो जीव आत्मद्रव्य को पकड़े है, वह सम्यग्दृष्टि है जो पुद्गल द्रव्य को याने पदार्थ को (धन आदि) पकड़े है, वह मिथ्यादृष्टि है। स्त्री, स्त्री है लेकिन राग-द्वेष की भावना ही विकार की भावना होती है। शुद्ध भावों में न कोई दृष्टि है, न कोई वस्तु। यह जीव असद्भूत-व्यवहारनयों से पौद्गलिक कर्मों का कर्ता है। निश्चय से स्वभाव का कर्त्ता है, परम शुद्ध निश्चयनय से न किसी का कर्ता, न किसी का भोक्ता है।

583

निश्चय व व्यवहार यह वस्तु को समझाने की मात्र व्यवस्था है और कुछ भी नहीं है। मोक्षमार्ग क्या है ? निर्ग्रंथ होना मोक्षमार्ग है, बिना व्यवहार के निश्चय हो नहीं सकता, ध्यान रखे। कार्य परमात्मा तभी होगा, जब कारण परमात्मा का कार्य करेगा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही तो कारण परमात्मा है। अशुद्ध आत्मा को कारण-आत्मा मत बना देना। साधु, आचार्य कारण-परमात्मा हैं तथा अरिहंत, सिद्ध कार्यपरमात्मा हैं।

584

द्रव्य 'सामान्य' ही होता है, इस कारण त्रैकालिक होता है। पर्याय विशेष होती है इसकारण तात्कालिक है। भोगों में लिप्त होने का नाम ज्ञान चेतना नहीं अज्ञानभाव है। कुन्दकुन्द स्वामी ने 'पंचास्तिकाय' ग्रंथ में ज्ञानचेतना केवल सिद्धों में कही है।

हे मानव ! तू महान इसलिए नहीं है कि तू पुण्य के उदय में संसार बढ़ा रहा है, परिग्रह बढ़ा रहा है, असंख्यात भोग भोग रहा है। तू महान इसलिए है कि तेरे में पाँचों पाप छोड़ने की सामर्थ्य है। व्रती बनने की, महाव्रती बनने की संयम करने की सामर्थ्य नहीं है। देवों, इन्द्रों में वह सामर्थ्य नहीं है।

हे मनीषियो ! जब इंद्रिय सुख में देव भी वनस्पति बन गया, तब तुम्हारी दशा क्या होगी।

585

ज्ञानी, संसार विभूतियों को पाकर खुश नहीं होता, ये वैभव, विभूतियाँ तो मेरे वैभव-नाश के हेतु हैं। अहो! श्रेयों के लिए निःश्रेयसों को खोखला कर लिया। श्रेय पाने वाले अहिंसा का पालन कभी नहीं कर पायेंगे।

यह भोगों के वंदनवार भव के अभिनंदन के लिए तुमने खड़े कर लिए हैं। लोक का अभिनंदन मत करो। यह अभिनंदन नहीं, बंधन है अभिनंदन तो तेरा तभी होगा, जब तेरा कर्मबंधन छूट जायेगा।

586

सौभाग्य तक ही मत सोचना, सिद्धालय तक सोचना। सौभाग्य, अहो भाग्य सब छूट जाता है। उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं। भो ज्ञानी! प्रमाद को छोड़कर, अब जाग जाओ। जिसने कम के कुशों को अपने भेदविज्ञान के नखों से विवेक के साथ निकाल कर फैंक दिया है, वो ही परम हंस आत्मा है, यदि तुम कर्मों को नहीं निकाल पा रहे, तुम कितने भी कुशल बन जाओ, अपने दो हाथ फाड़ रहे हो। प्रमाद के रहते, हिंसा समाप्त नहीं होती है। श्रद्धापूर्वक और विवेकपूर्वक क्रिया करो, भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक रखो। राग-द्वेष के बिना युक्तिपूर्वक जो आचरण करता है, उनको कभी भी हिंसा नहीं होती।

(587)

मैं असंयम से, मैं कर्मों से अपनी रक्षा न कर पाऊँ तो मेरा ज्ञान किस काम का है। ज्ञान से सत् सिद्ध बन सकता है और वो ही ज्ञान तुझे निगोद, नरक भी ले जाता है।

घन की मार झेल रहा है, वह अग्नि देवता क्योंकि कुधातु का संग किया। चेतन आत्मा भी पिट रही है क्योंकि द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का साथ लिया। देखो, वह तो परमात्मा है। जब तक ज्ञान के कीट में चारित्र की फसल लहराती रहेगी, तेरा गिरना नहीं होगा। जैनदर्शन में मिथ्यादृष्टि से बड़ी कोई गाली नहीं है।

(588)

सम्यक्त्व होते ही अल्पज्ञान भी सम्यक् हो जाता है और अल्प चारित्र भी सम्यक् हो जाता है अतः सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है और मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, संयमी ज्ञानी है, असंयमी अज्ञानी है, जो ज्ञान है वही प्रमाण नहीं है, बल्कि जो सम्यक्त्व सहित ज्ञान है, वही प्रमाण है। ज्ञानी ! यदि अभिप्राय निर्मल है तो आप सर्वत्र सम्यक् को खोज लोगे, अभिप्राय निर्मल नहीं है तो समीचीनता में भी दोष नजर आता है, ज्ञानी जीव संकटों के क्षणों को अपने जीवन निर्माण का उपहार मानता है, जो काँटों के खिला होता है, उसे पुष्पराज कहा जाता है।

589

अल्पज्ञानी होना कोई दिक्कत नहीं, लेकिन ज्ञानी होकर बहुमानी, अभिमानी हो जाना पाप है, जो ज्ञान-दर्शन को विशुद्ध करता है तथा चारित्र को भी विशुद्ध करता है उसका नाम सम्यग्ज्ञान है, परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है - ऐसा अटल श्रद्धान जिस मुमुक्षु का है भो ज्ञानी! वही मोक्ष जाता है। आचार्य कह रहे हैं 'ज्ञानी बनो' परन्तु बुद्धि के ज्ञानी नहीं क्योंकि वह तर्कों से जीता है, यह बुद्धि कैसी है, जो दोषों को देख रही है, हमारा आगम तो मिथ्यादृष्टि को भी कुदृष्टि से नहीं देखता।

590

जिनके पास विनय नहीं, ऋजुता नहीं वह ज्ञानी कभी भी नहीं। मध्यस्थ रहना, पर द्वेष मत करना। यदि ज्ञान संयम शून्य है तो वह गधे के ऊपर लदे चंदन के समान है। आचार्य अमितगति जिनकी भव्यता बिगड़ चुकी है, उनके लिए वीतराग-सर्वज्ञ की वाणी भी कुछ कर नहीं पाती, भगवान तुम्हारें पाप-पंक को धोने नहीं आयेंगे, उस पंक को धोने का पानी तो तेरे पास ही है। हे भगवान् मेरे पापों को धो दो मत कहना। जिस प्रज्ञा से तूने पाप किये हैं, उसी प्रज्ञा से पाप समाधान होंगे। पाप निकालने के लिए पुण्य चाहिए, पुण्य के लिए परिणामों की निर्मलता चाहिए।

591

जीवन में कितना भी कष्ट आये, ऐसे भाव मत लाना कि मैं मर जाऊँ। 12 वर्ष उत्कृष्ट समाधि का काल है। जिनवाणी का सार तुझे दिया, उसे भूल गये दुनिया में तू सबसे बड़ा पापी है। तुमने जानने वाले को नहीं जाना, अनंत भव व्यतीत कर दिये जानने में। ज्ञानहीन क्रिया विनाश का कारण होती है, क्रियाहीन का ज्ञान भी विनाश का कारण होता है। ज्ञानशून्य चारित्र अंधा है, चारित्रशून्य ज्ञान लंगड़ा है, आपकी पहिचान ज्ञान-दर्शन से नहीं चारित्र से होती है। चारित्र की सिद्धि मन से प्रारंभ होती है, चारित्र के मिलने से साम्यभाव उमड़ता है।

592

चित्त की पवित्रता से ही चारित्र की पवित्रता होती है। कषाय के उपशमन का नाम ही चारित्र है। प्रचारक व विचारक से जो ऊपर उठा होता है, उसका नाम चारित्रवान है। ये शब्द जड़ की क्रिया है, आत्मधर्म चैतय का धर्म है, जब संपूर्ण जगत के कर्म-जाल समाप्त हो जाते हैं, तब भगवती आत्मा 'शून्य' का उदय होता है इसी का नाम शुद्धात्मा है अर्थात् ओंकार बिन्दु से युक्त है, जब तुम्हारी कषाय शून्य हो जाये, तुम्हारी वासना शून्य हो जाये तब आत्मज्ञान प्रगट होगा।

593

जब पुण्य क्षीण होता है तो विद्या काम नहीं करती। देख लो रावण को, पुण्य के न होने पर प्राणी व्रतों का पालन भी नहीं कर पाता। दौलतरामजी ने लिखा है – ''मुनि सकल व्रत बड़भागी'' भोगों से उदास होना प्रबल (प्रशस्त) पुण्य का योग होता है, यह पुण्य एक भव की साधना मत समझना। कर्म शत्रुओं को नाश करने के लिए शरीर में विशेष बल चाहिए जो अनेक भवों के पुण्य का फल है। जिसने 'अहिंसा परमोधर्मः' को समझ लिया, उसे अलग से व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। वेश काम नहीं आयेगा, भाव काम में आयेंगे। भाव गड़बड़, वेश पूजता रहा, तेरा कुछ लाभ नहीं होना।

594

गुरु जरुर लगता है बाहर से ताप दे रहे हैं, लेकिन अंदर से वह संभाल रहे हैं। लोग धनहीन को अभागा कहते हैं, लेकिन सबसे बड़ा अभागा वह है जिसका मन हीन है। शुभ-उपयोग में जो रहते हैं, शुद्ध उपयोग में रहने वाले भी शुभ-उपयोग में आते हैं, क्योंकि उपयोग अंतर्मुहूर्त में बदल जाता है। आ. अमृतचंद्र स्वामी कह रहे हैं यदि आपको तत्त्व को समझना है तो शरण (आश्रय) तो किसी की लेना होगा, वह शरण निर्ग्रंथ गुरु है, जिसकी दृष्टि निर्मल होती है, उसे कहीं बुरा नजर नहीं आता।

(595)

यदि आगम के विरुद्ध, सिद्धांत के विरुद्ध हमारी प्रवृत्ति चल रही है तो इससे बड़ी हिंसा क्या हो सकती है? अरे! सबसे बड़ी हिंसा मिथ्यात्व है जो अनादि से आत्मा को संसार में भटका रहा है। जीव ग्रंथों में घुस तो जाता है, परन्तु निर्ग्रंथ नहीं बन पाता है, उसकी स्थिति अभिमन्यु वाली होती है। बड़े-बड़े ज्ञानी जीव मुनि क्यों नहीं बन पाते? क्योंकि उन्होंने शब्द तत्त्व को तो समझा है परन्तु आत्मतत्त्व को नहीं समझा। बिना पुरुषार्थ के नियत कोई नियत नहीं है, ध्यान रखना, जब तक निमित्त और पुरुषार्थ नहीं होगा, तब तक कोई वरदान काम नहीं आयेगा। पुरुषार्थ से ही पुरुषार्थ यानि आत्मा की सिद्धि होगी।

(596)

आत्मा का धर्म अहिंसा है। अहिंसा का जहाँ प्रादुर्भाव होता है, वहाँ से संपूर्ण धर्म अपने आप शुरू हो जाता है और जहाँ हिंसा का प्रारंभ होना शुरू होता है वहाँ सभी धर्म पलायन कर जाते हैं, जिस दिन दूसरे की वेदना का वेदन हो जायेगा, उस दिन आपका विवेक जाग्रत हो जाएगा। हे प्राणी, दया चली गई, तो जीवन में बचा क्या? कुंदकुंददेव का सूत्र है - धम्मो दया विसुद्धो। धर्म वही है जो दया से विशुद्ध होता है, निश्चय से निज पर दया, व्यवहार से प्राणी मात्र पर दया।

597

धर्म, जो अहिंसा, तप, संयम, सम्यक्त्व से पवित्र है, वह ही मंगल है, उत्कृष्ट है – ऐसे धर्म को ही तू मान। अनुशासन कठोर तो होता है, परन्तु अकल्याणकारी नहीं होता है, जिसको अपने जीवन का घात करना हो तो शिथिलाचार का पोषण कर लो, जिसके जीवन में अष्ट मूलगुण नहीं है, वह जाति का जैन तो है, पर धर्म का जैन नहीं है, इच्छाएँ थक जाएं तो मन संयम लेने को तैयार होता है, जरा से मोह के पीछे, मोही प्राणी चैतन्य–आत्मा को खो बैठा है। याद रखना मोह शाश्वत नहीं है, कर्म का बंध शाश्वत नहीं है।

598

भूत और भविष्य में जीओगे तो भूत ही बनकर रह जाओगे। वर्तमान को निहार लो, वर्द्धमान बन जाओगे।

जो तेरी मोह की खेती चल रही है, वह पुण्य के पानी से चल रही है। चमड़ी को चमकाने के पीछे अहिंसा को मत खो देना।

तुम तो राग में, पुण्य में मस्त हो और कह रहे हो – होता स्वयं जगत परिणाम। भक्ष्य–अभक्ष्य का विवेक नहीं है तो चैतन्य–प्रभु तुम्हें कहाँ मिलेंगे ? भोग, काम, बंध की प्रदर्शनी को तूने अनादि से देखा है, इसी को करना है तो इस पर्याय को प्राप्त करना या न करना समान है।

(599)

जहाँ वात्सल्य भाव है, धर्म वहीं है, धन-वैभव पुण्य का फल है, आत्मा का भोजन तो वात्सल्य और ज्ञान-आराधना है। जिसका स्वभाव सुवासित होता है, उसके बगल में शेर भी बैठ जाता है। जिसके परिणाम कलुषता से भरे हैं, उसे देखकर तिर्यंच भी मुँह फेर लेते हैं। तुम्हारे पास आज संपत्ति है, सन्मति नहीं है, आज धर्मात्मा से धर्मात्मा नहीं मिल रहा है। साधु, साधु से नहीं मिल रहा है। वात्सल्य प्रेम नहीं है, स्नेह नहीं है, राग नहीं है। यह रागी-भोगियों का नहीं, वीतरागियों का है, निरपेक्ष अनुराग ही वात्सल्य होता है।

(600)

जब तक अपने 'लोभ पाप का बाप' नहीं पढ़ा, तबतक आप पूरे आगम, पुराण, शास्त्र पढ़ लेना, प्रलोभन में आकर कुछ भी कर सकते हो। जिनशासन में प्रचारक नहीं होता प्रभावक होता है, प्रभावक वही होता है, जो स्वयं धर्म से प्रभावित हो। हम केवल प्रचारक बन रहे हैं, पर प्रभावक नहीं। जब तक तेरे अंतरंग में वात्सल्य नहीं है, सहजता नहीं है, तेरी सत्यता भी जीव को कटुता के रूप में महसूस होती है। एक इंद्रिय जीव के पास करुणा नहीं, मन नहीं है, पर संवेदना का अभाव नहीं है।

601

श्रावक की सुन्दर व्याख्या की है - श्रद्धावान, विवेकवान, क्रियावान।

श्रावक जब सम्यक्त्व गुण को पाता है तो वह एकदेश जिन बन चुका है क्योंकि उसने मिथ्यात्व को जीता है। मिथ्यादृष्टि का वैभव केवल मल है, जबतक सम्यक्त्व नहीं, तब तक ज्ञान ज्ञान नहीं। चारित्र चारित्र नहीं। बालक को मेले में जब तक आनंद आता है, वह माता-पिता की अंगुली पकड़े है, यदि वह छूट गई तो रोना ही रोना होता है 'श्रद्धान' ऐसा है।

602

पर्याय के क्षणिक सुख के पीछे, हे प्राणी, त्रैकालिक आत्म-सुख को भूला है।

जब तक संबंध नहीं छोड़ोगे, तब तक सुखी नहीं हो पाओगे। शरीर को जहर दिया जा सकता है लेकिन आज तक किसी ने पुण्य को जहर नहीं दिया। आयु निषेक बाकी है तो जहर भी असर नहीं करेगा। प्राणी पापी नहीं होता, पैसा पाप करा देता है। अमीरी पुण्य की है, गरीबी पाप की है। श्रद्धा पुण्य-पाप दोनों से परे है। मोक्षमार्ग भी पुण्य-पाप दोनों से परे है। सम्यग्दर्शन कह रहा है, यदि मैं खिसक गया तो न श्रावक बचेगा, न श्रमण ही बचेगा।

(603)

आपके लिए परम सत्य कोई है तो वह एकमात्र आप ही हो। जिसके पास दया, करुणा होगी वही सत्य को जान सकता है, जिसके पास अहिंसा धर्म नहीं होगा, वह सत्य को पहचान नहीं सकता है। संश्लेषित होना भी हिंसा है, संश्लेषित करना भी हिंसा है, बंध का कारण परनिमित्त नहीं है। मेरे विकारी परिणाम हैं, जो भगवान की भक्ति कर रहा है। स्वात्मा की सत्ता को निहार रहा है, उसका कुमरण नहीं होगा, सल्लेखना-मरण होगा। प्राणी अपने राग और कषाय के कारण ही दु:ख होता है दूसरा कोई दु:ख नहीं देता।

(604)

मेरे निमित्त से कोई दु:खी हो तो होने दो, पर मैं किसी को दु:खी नहीं करूँगा। घर-घर में आशीर्वाद देने जाना निर्ग्रंथ का काम नहीं है। तन की चमक फीकी पड़ जाए, पर ज्ञान की चमक फीकी नहीं पड़ती। बंध स्थान अज्ञान है ज्ञान बंध स्थान नहीं, पर ज्ञान में मोह मिश्रित कर दो, तो बंध ही बंध है। हम जगत को अपने जैसा नहीं बना सकते और हम जगत जैसे नहीं बन सकते, बनने की चेष्टा कि आपने तो कीड़े-मकोड़े बनना पड़ेगा। लोक को खुश करने की चेष्टा मत करना लोक में आनंदित होने की चेष्टा करना, वो ही आनंदित होता है, जो विषयानंद से शून्य होता है।

605

जो परद्रव्य को परद्रव्य ही देखता है। स्व-द्रव्य को स्व-द्रव्य मानता है वही सच्चा अमूढ़ दृष्टि है। यदि परम-सत्य को प्राप्त करना चाहते हो तो आज से हंसना व रोना दोनों बंद कर देना क्योंकि दोनों ही कषाय है। यदि आपने समता में रहना सीख लिया तो कर्मों की निर्जरा होती है। तीर्थंकर भगवान गृहस्थ अवस्था में, तीन ज्ञान के धारी होते हैं, वह गृहस्थी की बातें तो करते हैं, लेकिन धर्म की बातें नहीं करते। भो ज्ञानी! समयसार, तत्त्वार्थसूत्र जैसे ग्रंथों का स्वाध्याय कर प्रवचन देने लगे, परन्तु श्रावकाचार के अष्ट मूलगुण को न समझ सके।

606

यदि आप अस्वस्थ है तो लेट कर भी सामायिक कर सकते हो, पर सामायिक नहीं छोड़नी है, अपने चैतन्य गुणों को विभाव भावों से अलग रखो। स्थितिकरण पहले स्वयं का करना फिर दूसरों का करना। स्वयं गिर रहे हो, दूसरे को उठा रहे हो। दोनों गिर जाओगे। निज में स्थित हो जाना और पर में हट जाना वही वास्तविक स्थितिकरण है। जिनेन्द्र के शासन को मात्र क्रियाओं में बांधकर मत रखना। जिनेन्द्र के धर्म की अंतरंग की परिणति का धर्म बनाकर चलना।

भटकाने वाले अनन्त मिलेंगे पर संभालने वाला कोई नहीं मिलेगा।

(607)

जिनदेव से सारा जग मिलता है, पर अरिहंत किसी से नहीं मिलते। लोग जिसे भूषण कहते हैं, ज्ञानी त्यागी उसे दूषण कहता है, मनीषियों से यह वसन आपने नहीं पहने, ये वसन तो वासनाओं ने पहने हैं, वासना उतरते ही वस्त्र उतर जाते हैं, शरीर स्वभाव से अपवित्र है, लेकिन रत्नत्रय से पवित्र है, अव्रतियों, व्रतियों का आदर करे, इससे दोनों का हित है, तभी जिनशासन कायम रहेगा। जिसे आत्मा की शुद्ध सत्ता दिख रही है, वह संसार की सत्ता को नहीं देखता। किसी भी पदार्थ को देखकर ग्लानि-भाव को मत लाना।

(608)

यह समय फिर मिलने वाला नहीं है, यह समय चला गया तो समय भी चला जायेगा। अतः निकल चलो, अभी समय है, आज निर्ग्रंथ गुरु, जिनवाणी दिख रही है, जिनशासन आज भी जयवंत है, आज अरिहंत नहीं तो अरिहंतमुद्रा तो दिख रही है, कलिकाल में यह चमत्कार है। कलिकाल में चित्त चलायमान होते हैं। देह अन्न का कीड़ा बना होता है, फिर भी जिनेन्द्र मुद्रा दिख रही है, आज भी प्राणी सौभाग्यशाली समय को समझ कर स्वर्ग जा रहे हैं। दुर्भाग्यशाली नासमझ होकर नरक जा रहे हैं, जिसके पास दृढ़ संकल्प है, उसके पास विश्व की सबसे बड़ी शक्ति है।

(609)

'भावसंग्रह' ग्रंथ में लिखा है चतुर्थकाल का श्रमण 1000 वर्ष तक तपस्या करे, पंचमकाल का श्रमण एक वर्ष तक तपस्या करे तो पंचमकाल के श्रमण की साधना श्रेष्ठ है। 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' जो प्रयोजनभूत तत्त्व है, उन पर श्रद्धा करना सम्यक्त्व है। जब तक अनेकांत दृष्टि नहीं है, जब तक पट्ट हो तो पट्ट ही रहोगे और चित्त हो तो चित्त ही रहोगे। 'अनेकांत' ही वस्तु का धर्म है। 'स्याद्वाद' कहने की शैली है, निश्चय-व्यवहार धर्म को बताने की शैली है, निश्चय-व्यवहार धर्म को बताने की शैली है कथानक है, किनारे हैं 'नीर' के और 'धर्म' नीर है। जो जानकर सोया है, उसे जगाया नहीं जा सकता।

(610)

विपरीत अभिप्राय छोड़कर जो श्रद्धा होगी, वही आत्मरूप श्रद्धान है, वही सम्यग्दर्शन है। सम्यक्त्व के 8 अंग में से एक अंग भी कम है तो मिथ्यात्व का जहर कम नहीं हो सकता। जैसा हम अपने लिए चाहते हैं, वैसा ही सबके लिए चाहें तब निर्मल दृष्टि कही जायेगी। अनुकंपा सम्यक्त्व का पहला गुण है। भगवान का शासन सर्वोदय शासन है। भगवान की सभा का नाम है समवसरण। प्रत्येक जीव को समान शरण।

611

'एकोऽहं निर्मोहोऽहं' जहाँ मात्र एक में दिखना प्रारंभ हो जाये कि एक मात्र मेरा स्वभाव है, संयोग भाव मेरा धर्म नहीं है, यह अनुभूति जिस दिन तुम्हारें अन्दर झलकने लग जाए, उस दिन कहना कि मैं चारित्र की ओर जाना शुरू कर रहा हूँ, चैतन्य चारित्र का चमत्कार, जो निजानुभव की परिणति है, जब तक निज भाव नहीं आता, तबतक भक्त व भगवानों की भीड़ नजर आयेगी। जिसने स्वभाव को जाना है, उसे कुछ नहीं झलकेगा। चारित्र का व्याख्यान कर रहे हैं, पर चारित्र व्याख्येय नहीं है, अतः तुम मन के संकल्पों का स्थिर करो।

612

जो स्वयं जागा है, वही दूसरों को जगा सकता है। सबसे पहले मिथ्यात्व के जहर को निकालने की आवश्यकता है। नाग केंचुली को बाहर निकालने से निर्विष होता है, बाहर के कपड़े उतारने से निर्विष होता है, बाहर के कपड़े उतारने से आत्मा निर्ग्रंथ दशा को प्राप्त नहीं होती है। चारित्र-मोहनीय की गांठ नहीं खुलेगी, भगवती आत्मा प्रगट होने वाली नहीं है, सम्यकरूप से तत्त्वों का श्रद्धान करनेवाला निष्कंप होकर सम्यक्चारित्र का आलंबन करता है। ज्ञानियो! रत्नत्रय मोक्ष नहीं है मोक्षमार्ग है। सम्यग्ज्ञान ही आत्मकल्याण का ज्ञान है, पोथियों का ज्ञान नहीं।

(613)

जिसका जैसा विपाक (कर्म उदय) होगा, उसे ही भोगना पड़ेगा। अतः विपाक काल में ही संभलने की आवश्यकता है। जीव कर्म क्षेत्र में होनहार को नहीं लाता, धर्मक्षेत्र में लाता है कि महाराजजी! जब काललब्धि आयेगी तो मैं मुनिराज बन जाऊँगा। षटखंडागम, समयसार, श्रावकाचार तो बाद की बात है, पहले मेरी भावना का स्वाध्याय कर लो – फैले प्रेम परस्पर जग में। मेरी भावना ही शुद्ध नहीं, तो ग्रन्थों को पढ़कर क्या करेगा?

दो स्थान आत्मा के अन्तिम हैं। एक निगोद, दूसरा सिद्धशिला। एक पुरुषार्थ साध्य है, दूसरा सहज है।

(614)

एक प्राणी हिंसा न करके भी हिंसा कर रहा है और बोध को प्राप्त हो रहा है। बैठा-बैठा सोच रहा है मैं इसको छोड़ूँगा नहीं, चाहे कुछ भी हो जाये। एक से हिंसा होती है लेकिन हिंसा का बंध नहीं करता, चार हाथ देखकर चलता है, मन में भाव है, मेरे द्वारा किसी जीव की हिंसा न हो जाये, लेकिन एक चींटी आकर पैर के नीचे मर जाती है। बंध के परिणाम नहीं हैं, विवेक पूर्वक जा रहा है। परिणति निर्मल है, तो प्रत्येक क्षण तेरी निर्बंधता के हैं परिणति तेरी निर्मल न हो, तो प्रतिक्षण तेरे बंध के हैं।

615

क्षयोपशम ज्ञान का अहम् मत करना। यह कब आ जाये, कब चला जाये कोई पता नहीं है, प्राप्त करना तो क्षायिक ज्ञान को।

सबको जानना मत, एक को निज आत्मा को जान लेना सब जान लोगो। ज्ञानी, अच्छाई की अनुमोदना करने से मत चूकना, बुराई की अनुमोदना भूल कर भी मत करना।

पवित्र परिणति के साथ क्रिया है, तो पवित्र हो जाओगे।

616

ज्ञानी, पर की रक्षा का भी कर्त्ता नहीं बनता। वह स्वयं की रक्षा के भाव में जितना जीता है, वह ही पर की रक्षा है। जो निज की रक्षा कर रहा है, वह स्वतः ही पर की रक्षा कर रहा है। ऐसा प्राणी कभी किसी की हिंसा नहीं करता। अतः ऐसे काम करना जिससे कर्म के बंधने से स्वयं की रक्षा प्रारंभ हो जाए। जब तू स्वयं चार हाथ देख देखकर चलेगा तो जीवों की रक्षा स्वयमेव हो जायेगी। जीव की रक्षा तो उसके कर्म के ऊपर है, आप रक्षा करनेवाले कौन ? हम तो जीव पर दया, करुणा कर सकते हैं मात्र। निज के उपयोग को निर्मल करने के लिए धर्म करना, पुण्य करना।

617

मद्य पापी और कषायी में विशेष अंतर नहीं है। दोनों ही कांपते हैं, दोनों के नेत्र लाल हो जाते हैं। हेय व उपादेय में भेद दोनों को नहीं रहता। जो आत्मा को कसे, उसका नाम कषाय है, कषाय ही चतुर्गतिरूप संसार में घुमा रही है। जैसी मति वैसी गति होती है, जितेन्द्रिय ही अहिंसक है, जिसके पास सहानुभूति नहीं, उसके पास स्वानुभूति का होना बहुत कम है, संवेदनायें नष्ट हो रही हैं। पर को हटाकर साधु नहीं बना जाता, पर से हटकर साधु बना जाता है।

618

हिंसक भाव शुद्ध आत्मा की अवस्था नहीं है, अशुद्ध आत्मा की दशा है, इसलिए जो हिंसा के आयतन हैं, उनको छोड़ दोगे तो हिंसा छूट जायेगी। परिग्रह का त्याग करना उचित है, परिग्रह रखे और परिणाम विशुद्ध हो जाये – यह त्रैकालिक संभव नहीं है। ज्ञानी, तुम तो अध्यात्म–भाषा में आनंद लूट रहे हो, जिसकी भाषा इतनी निर्मल है, उसके भाव कितने निर्मल होंगे। यदि तू देह से स्वतंत्र होना चाहता है तो अहिंसा महाव्रत को स्वीकार कर लेना। लोग 'परिग्रह' धारी को पुण्यात्मा कहते हैं। सबसे बड़ा पाप परिग्रह है, वह तो सबसे बड़े पाप का धारी हुआ।

(619)

नमोऽस्तु शासन बड़ा निर्मल है, बड़ा ईमानदार है, इसिए मन-हस्ति को ज्ञान-अंकुश से पकड़ लो और चारित्र की रस्सी से बाँध लो। जब वह तुम्हारे वश में हो जायेगा, तब उस पर सवारी करके मोक्ष महल में पहुँच जाओगे। ज्ञान सर्वस्व नहीं, आत्मज्ञान ही सर्वस्व है। ज्ञानी संसार को जब विषमता थी, तब भी असार मानता और जब अनुकूलता है, तब भी असार मानता है। जिनदेव का शासन उपासक को भी उपास्य बना देता है, अतः योगी की वंदना ही समयसार की उपासना है। स्वभाव-समयसार को समझना चाहते हो तो स्वभावी के पास पहुँचना पड़ेगा।

(620)

ध्येय का ध्याता जब ध्यान करता है, तो वह स्वयमेव ध्येय हो जाता है। जब तक अनन्त ज्ञेयों को जानने का विकल्प योगी को मन में रहता है, तब तक स्वज्ञेय को जान नहीं पाता। जब सम्पूर्ण ज्ञेयों से अज्ञानी हो जाता है, तब एक मात्र स्वज्ञेय ही होता है, उसे ही जानता है। जब वह स्व तत्त्व को जान लेता है, उस दिन केवली यानि अनंत ज्ञेयों का ज्ञाता हो जाता है। भगवान बन जाता है। पंच पापों का भोक्ता बनकर कोई भी आत्म भोक्ता नहीं बन सकता। महाव्रती, कभी अनंत भव धारण नहीं करता जो जीव संयम के मार्ग पर पहुँच कर भी संयमी नहीं होता, वह निगोद जाता है।

(621)

भो ज्ञानी आत्माओ! पूर्व में तुमने कषाय की मंदता करी होगी, भावों की ऋजुता, मार्दव परिणाम किये थे, संयम, तप, त्याग किया था। जो आज मनुष्य बने, ऊँच गोत्र में जन्मे, जिनवाणी, जिनदेव की शरण मिली क्या सब भूल गये? जितना लाये थे, उससे तो ज्यादा लेकर जाना। यदि आज भोगों से, विषयों से, मोह में लिप्त हो राग-द्वेष, ईर्ष्या, ग्लानि के भाव आ रहे हैं तो समझ मनुष्य पर्याय भी मिलने वाली नहीं है, नर बन जाना कठिन नहीं है, नर बनकर रहना बहुत कठिन है। नर बने हो क्या नारकी बनने के लिए या नरोत्तम बनने के लिए? अरिहंत, सिद्ध नर से ही बने हैं।

(622)

भो ज्ञानी! जिस जीव की होनहार न्यून होती है, उसकी सोच भी भिन्न होती है। अहो श्रावको! यदि तुम्हारा संकल्पी हिंसा का भी त्याग नहीं है तो तुम जैन भी नहीं हो। चक्रवर्ती पद के लिए भी मिथ्यात्व की उपासना मत करना। भो ज्ञानी! छोटे-छोटे नियम लेते रहोगे तो एक दिन संयमी बन जाओगे, महाव्रती बन जाओगे। जीवन अव्रती बनकर मत जीना।

चैतन्य को शुद्ध करने वाली कोई औषधि है तो वह है वीतराग जिनेन्द्र की वाणी उस वाणी में अहिंसा धर्म की पवित्र सीख प्रकट हुई है।

(623)

आप जिस दृष्टि से भरकर आये हो, उसी दृष्टि से बंध चुके हो। अयत्नाचार है तो नियम से हिंसा है। हे मुमुक्षु हिंसा की तरफ मत दौड़ो, अहिंसा की ओर बढ़ो, परमब्रम्ह की ओर बढ़ो।

कषायवान ही कसाई है। प्रमाद जीवन का बहुत बड़ा शत्रु है, देखते-देखते चौबीसियाँ निकल चुकी हैं, हम सोचते ही रहे कि काललब्धि आयेगी। हम होनहार पर बैठे रहें, होनहार ने क्या किया है हमें पंचमकाल में मनुष्य बना दिया। परमार्थदृष्टि से देखो तो तुम परमात्मा बन सकते थे, लेकिन प्रमाद ने आगे बढ़ने नहीं दिया। भो ज्ञानी! आवश्यकता भोजन की नही, भूख की है। भूख है तो भोजन खोज लिया जायेगा, भूख नहीं है तो भोजन रखा भी नहीं खाता।

(624)

हे मानव! तू इसलिए महान नहीं है कि तू परिवार का बहुत अच्छे से, विषयों से भोगों से पालन-पोषण कर रहा है। समाज में तेरा नाम है, धन-सम्पदा से युक्त है, महान इसलिए है तुझमें महाव्रत धारण करने की क्षमता है। आदर, मैथुन, परिग्रह, भय ये चार संज्ञायें तो संसार का प्रत्येक जीव (तिर्यंच भी करता है, आपके पास यदि कोई विशेष है तो वह है रत्नत्रय धर्म)। उसे यदि स्वीकार नहीं कर पा रहे तो आप खेत में रखे मनुष्य के पुतले के तुल्य हो, जिसे आप बिजूका कहते हो।

625

यह आत्मा, पूर्णरूपेण शरीर में ही आत्मबुद्धि होने के कारण आत्मा को कष्ट का विचार नहीं कर पा रहा है, जीव शरीर के कष्टों को दूर करने का ही प्रयास कर रहा है, जबकि आत्मा के कष्ट दूर होते ही शरीर के कष्ट स्वयमेव हमेशा के लिए दूर हो जायेंगे। कर्म के निमित्त से आत्मा रागादि के रूप परिणमन करता है, परन्तु यथार्थ (सत्य) में रागादिक भाव आत्मा के निजभाव नहीं हैं, आत्मा तो अपने स्वच्छता रूप चैतन्य-गुण-सहित विराजमान है। रागादिपन ऊपर ही ऊपर की झलक मात्र है, निश्चय से तो पूर्ण शुद्ध है।

626

राग भावों का कर्त्ता यद्यपि जीव ही है, परन्तु यह भाव जीव के निजस्वभाव न होने से कर्मकृत है। कर्म उदय यदि नहीं होये तो जीव रागी नहीं होता, वह अपने स्वभाव में रहता। वह तो शुद्धस्वभावी है। स्वभावदृष्टि से विचार करने पर स्वभाव का वेदन होना प्रारंभ हो जाता है। प्राणी पर्याय दृष्टि से जीवन पूरा कर देता है, द्रव्यदृष्टि (स्वभाव दृष्टि) कभी होत ही नहीं। शरीर और आत्मा का संश्लेष रूप संबंध तो है, परन्तु अविनाभाव संबंध नहीं है। ज्ञानी देह में आत्मदृष्टि का त्याग करो।

(627)

आ. समंतभद्र स्वामी कह रहे हैं, मोही का बहु ज्ञान भी संसार का कारण है, निर्मोही का अल्पज्ञान भी मोक्ष का कारण है।

यदि एक भव्य सम्यग्दृष्टि जीव (अष्ट प्रवचनमातृका) पाँच समिति, तीन गुप्ति को जान लेता है तो समझो उसकी मुक्ति है।

मोक्ष के लिए बहुत शास्त्र पढ़ने की जरूरत नहीं होती, परन्तु परिणामों को स्थिर रखने के लिए बहुश्रुत ज्ञान जरूरी है। तूने जैसे ही रागभाव किया, मिथ्यात्व भाव किया, असंयम भाव किया तू बंध को प्राप्त हो गया।

(628)

छह द्रव्यों में मात्र जीव और पुद्गल दो ही ऐसे द्रव्य हैं, जिनमें क्रियावर्ती शक्ति है। निश्चय दृष्टि से मेरी आत्मा ही लोक है, इसप्रकार पर में पर को देखना बाह्य लोक है, निज में निज को निहारना निज लोक है। आत्मा एक द्रव्य है, कर्म एक द्रव्य है, प्रत्येक द्रव्य परस्पर में निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध रखते हैं। शब्द आकाश का धर्म नहीं, शब्द पुद्गल का धर्म है, यह पुद्गल द्रव्य की पर्याय है और उसे जिनवाणी शब्द वर्गणा कहती है। यह आत्मा पुद्गल के आलंबन से इतने सब काम कर रही है।

629

संसारी जीव की पहचान इन्द्रियों से, मन से होती है। आत्मा की पहचान ज्ञान से होती है, आत्मा ही ज्ञान है, ज्ञान ही आत्मा है दूसरे को दोष देना भी एक दोष है काश! तुम गुण देखने लग जाते तो एक दिन भगवान बन जाते। बेल पर के सहारे दौड़ती है कषाय भी पर के सहारे दौड़ती है कषाय को आलंबन दिखना बंद हो जाए, जब कारण नहीं होगा, तो कार्य कैसे होगा अतः परद्रव्य को हटा देना चाहिए। इच्छाओं के लिए परद्रव्य कारण का कारण है निर्ग्रन्थ योगी धागे मात्र का भी त्याग कर देते हैं।

630

योगी भोग नहीं माँगता, भोगों से दूर हो करके निज आत्मा में लीन होता है योग के नाम पर लोग भोग-भोग रहे हैं। ये नग, ये अंगूठी इन दुनियाँ के नाटकों में नहीं उलझना।

बंध स्थान को समझना होगा, जिसने बंध स्थान को नहीं समझा, वो मोक्ष स्थान का क्या ध्यान करेगा? ज्ञान जब द्वैत में चला जाता है तो अपूज्य हो जाता है। सारे विश्व में जो अशुद्धि है वह दो की है एक में कोई अशुद्धि नहीं होती। जब तक एक एक है, तब तक निज स्वभाव में है, जहाँ द्वैत हो जाता है वहाँ निज स्वभाव में भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

631

एक जीव होते हैं, जिनके लिए कहा जाता है कि डाल दो और एक वे जीव होते हैं, जिनके लिए कहा जाता है भैया! एक ग्रास ही दिला दो। एक टुकड़े के लिए भीख मांग रहा है, एक के लिए टुकड़ा तरस रहा है, तेरे भीतर जो पुण्य का द्रव्य रखा हुआ है, उतना ही तेरा है उसे सुरक्षित रखना, बेकार व्यय मत करना।

हे श्रमण, हे श्रावक! परम ब्रह्म पर तेरी दृष्टि है और विश्व के विकल्पों से शून्य होना चाहता है तो ध्यान में लीन हो जा। परम ब्रह्म का लक्ष्य करो। इस पर्याय में उस तत्त्व पर प्रवेश करो न करो, कम से कम उस परम तत्त्व को समझने का प्रयास तो करो।

632

जो कहता है भूत-भविष्य कुछ नहीं है, मैं वर्तमान को मानता हूँ, उसी में जीता हूँ, वह नियम से पापी होगा और दुखी होगा। मरण सुधर गया तो भविष्य का जीवन सुधर जाएगा, तुम वर्तमान के जीवन में मरण को नहीं संभाल पाए तो तुम्हारा अगला जन्म सुधरने वाला नहीं है। भूत के मरण का फल वर्तमान का जन्म और जीवन है। भूत के मरण पवित्र नहीं थे वे गलियों में भीख माँगते दिखाई दे जाएंगे। जिनके अंत में मरण पंडित-पंडित हुआ, वे सिद्धालय में बैठ जाएंगे। मात्र कार्य को देखकर गलती कर दी, कार्य के साथ कारण को देख लेता तो उसी समय शांति मिल जाती।

(633)

ज्ञानी! जब तक तेरे पास पुण्य का द्रव्य नहीं होगा भगवान किसी के थैले में डालने वाला नहीं है और पुण्य का द्रव्य होगा तो भगवान से भी मांगने की जरूरत नहीं है, जिनके मन जलते हैं, उनके तन जलते हैं जिनके मन नहीं जलते उनके तन कपूर की भांति उड़ जाते हैं। तन में लगी आग तो निर्वाण करा देगी, लेकिन मन में लगी आग तो नरक पहुँचा देगी। रावण से मिलो, कंस से मिलो। भारत के धार्मिकता की पहचान है, यहाँ भिखारी को भी भोजन मिलता है।

(634)

राग परिणाम हो चाहे द्वेष परिणाम हो, वह पर सापेक्ष ही होता है। राग-द्वेष परिणाम तेरे भावों की विशुद्धि को सूखा देता है। राग-द्वेष की बेल तेरे पूरे पुण्य को सुखा देती है। एक दिन की तेरी समता चली गई तो कोटि-कोटि वर्ष लग जाएंगे, पुनः प्राप्त करने में। एकदिन की समता का नाश तुझे नरक भी ले जा सकता है।

जब योगी योग में लीन होता है, तो पहले परभावों से, रागादिक भावों में निराश्रय होता है और शुभ राग से भी निराश्रय होता है। यहाँ तक कि परमात्मा से भी निराश्रय हो जाता है, तब कौन मिलेगा। तब मिलेगा एकमात्र निज का आश्रय।

(635)

वासना यदि है कहीं तो वह है दृष्टि में। परिणामों में जितनी विशुद्धि होगी, उतना ही ऊँचा धर्म होगा।'लब्धिसार' ग्रंथ परिणामों को मापने को लिखा है। दृष्टि को निर्मल करना ही धर्म है। सम्यग्दृष्टि बनोगे तभी सर्वांग दृष्टि भी पाओगे। निगोद से यहाँ तक आ गये हो, अब तुम्हारें पास बुद्धि, विवेक, आचार-विचार सभी कुछ है थोड़ी सी मेहनत करनी बाकी है, दृष्टि को धोना है। 'पर' को त्यागना है जिनको संतों में, जिनवाणी में भेद दिखता है वह अभेद को नहीं देख सकते।

(636)

तुमने बाहर का आनंद लूटा है जो अपवित्र है, अंदर का आनंद तो पवित्र है, विचित्र है।

निःशंक वो ही होगा, जो निःसंग होगा। निःशंक यानि निःस्पृह, निष्परिग्रही तत्त्वों को जाननेवाले भीख मत मांगों। माँगने से मरना भला है, तत्त्वों का जो कथन सर्वज्ञदेव ने किया है, वे ही यथार्थ हैं, वह ही सत्य है। जो स्वयं कषायों से भरा है, उसे सब पर शंका होती है। पहली भावना का नाम है दर्शनविशुद्धि यानि सम्यक्त्वविशुद्धि। तीर्थंकर आत्मा को प्रत्येक जीव के प्रति साम्यदृष्टि झलकती है, ऐसी ही तुम्हारी दृष्टि बन जाये।

(637)

हम आपस में कलुषता बढ़ा-बढ़ा कर शुद्ध सम्यग्दृष्टि बन रहे हैं, तुमसे बड़ा मिथ्यादृष्टि कोई नहीं। जिस वचन को सुनकर व्यक्ति के अंतरंग में विशुद्धता की लहर दौड़े, उसका नाम है प्रवचन।

वीतराग-विज्ञान कह रहा है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और देव-शास्त्र-गुरु ये तीनों इकट्ठे जब तुम्हारे सामने होंगे, तभी चैतन्य-ज्योति का प्रकाश दिखेगा। हे विद्वानों! वही ज्ञान, ज्ञान है जिसमें संवेदन है। जिसमें संवेदन नहीं वह ज्ञान नहीं। जिसमें अनुभवन नहीं, वह ज्ञान तो अज्ञान है, इसलिए आत्मज्ञान ही ज्ञान है।

(638)

अज्ञान से जो पाप हो जाये, तो सम्यग्ज्ञान से छूट जाता है, जान करके पाप हो रहा है तो वज्रलेप हो जाता है, तुझे पाँचों पापों को तो छोड़ना ही पड़ेगा। हे ज्ञानी! परिग्रह, धन-सम्पदा को तो तूने पुण्य मान लिया है 'बहु आरम्भ परिग्रहत्वं नारकस्याऽऽयुषः' जितनी हिंसा महाभारत काल में हुई, रामायण काल में हुई, परिग्रह के कारण, नारी भी परिग्रह है। पापों का शिरोमणि परिग्रह है, गृहस्थ होते हुए भी कम से कम परिग्रह का परिमाण कर लो और अभी और बंद करो। याद रखना श्रद्धा का नेत्र न फूटे और आगम का साथ न छूटे।

(639)

बाहर में निर्ग्रंथ-दशा होगी तो अन्तस में निर्विकल्प दशा होगी, कोई ऐसा न मान बैठे, पहले में ज्ञाता-दृष्टा हो जाऊँ, अबंधक हो जाऊँ, फिर मुनि बन जायेंगे। यह तो ऐसा हुआ, पहले शुद्धभाव हो जाये फिर पाँच पापों को छोड़ूँगा, फिर व्रती बनूँगा। भाई, अन्तर व बाह्य दोनों परिग्रह का त्याग होगा। ऊपर का छिलका - बाह्य परिग्रह, अन्दर की वृत्ति-कषाय। क्रम से टूटेगा तब तुम आगे बढ़ पाओगे, यही आगमव्यवस्था है। आप अपनी व्यवस्था बनाकर बैठ गये हो। आचार्य पहले महाव्रती बनने का उपदेश देते हैं, फिर श्रावक बनने का।

(640)

हे ज्ञानी! जिस दिन अन्तःस्थ-तत्त्व अर्थात् अंतरंग के तेज को तुमने समझ लिया, उस दिन संसार के सम्पूर्ण बाह्य तत्त्व तुझे व्यर्थ नजर आयेंगे। यदि तेरे पास सम्यक् श्रद्धा है, तो मोक्ष तेरे पास है। श्रद्धा रहित सारा जीवन शून्य है। इस लोक में सम्यक्त्व के समान कोई श्रेष्ठ नहीं है और मिथ्यात्व के समान कोई हेय नहीं है। मुमुक्षु जीव शत्रु-मित्र दोनों को देखकर धर्म-ध्यान कर लेता है। जैन-शासन युक्तानुशासन है, युक्तिपूर्वक शिक्षा दी जाती है - युक्ति यानि विवेक।

(641)

भो ज्ञानी! तुम भाग्यशाली हो जो तुम्हें निर्ग्रंथ गुरु के दर्शन मिल रहे हैं। ऐसा मध्यकाल आया जब गुरु मध्यभारत से दक्षिण में चले गये थे। निर्ग्रंथ योगी विषय-कषाय, आरंभ-परिग्रह से रहित होता है। भीड़ में संतों के चारित्र का मापदंड मत करना।

निश्चिन्त जीवन जीना है तो सच्चे साधु बनकर बैठ जाओ। जिनवाणी साधु को सर्व विकल्प रहित कर देती है।

विधि याने भाग्य, विधि याने कर्म सब विधि पर छोड़ दो तथा शुभ पुरुषार्थ करो।

(642)

कौन क्या कह रहा है, क्या कर रहा है ? मेरा विषय नहीं है, जिनके चक्षु पर को निहार रहे हैं, उनके चक्षु स्वयं के लिए नहीं हैं, पर को देखना अनाचार है, निज जो देखना ही शील है वंदों संयम है। एक पिंजड़े में दो पक्षी पलेंगे नहीं लड़ेंगे। संत-हृदय असंत में भी संत को खोज लेता है। आवश्यकता दृष्टि की है। अशुभ-आयु के बंधक की दृष्टि वीतराग मार्ग के प्रति निर्मल नहीं होती।

जो व्रत जीव को महान बना दे, उन्हें महाव्रत कहते हैं। हिंसा चार प्रकार की होती है - आरम्भी, उद्योगी, विरोधी, संकल्पी। वह सत्य सत्य नहीं है, जिसमें धर्म और धर्मात्मा की हँसी होती है।

643

जीव पुण्य के उदय में अनंत पाप कर लेता है, जिसका उसे भान भी नहीं होता, पता जब चलता है जब उनका विपाक हो जाता है 'कुरल काव्य' में लिखा है मेरे से मत पूछो कि धर्म का फल क्या है ? और पाप का फल क्या है ? एक पालकी को ढो रहा है और दूसरा उस पालकी पर बैठा है देख लीजिए। हिंसा के भाव लाना भी हिंसा है सोचो ? सारे दिन में तुमने कितनों का घात किया ? जिसको सुख की चाह है, वह यतियों के पास जाकर उसकी खोज करता है कि ये इतने सुखी कैसे हैं ? हे आत्मन्! पुरुषाकार में सिद्धाकार निहारो।

644

आचार्य वीरसेन स्वामी ने 'षटखंडागम' में लिखा है। सच्चे भावों से श्रवण की हुई यह देशना कभी न कभी, किसी न किसी प्रकार धक्का देकर मोक्षमार्ग में परिणमन करायेगी। पाप चाहे ज्ञात भाव से करो, चाहे अज्ञात भाव से करो, फल तो अवश्य भोगना पड़ेगा। भाव से बंध होता है, वैसा ही फल प्राप्त होगा। संसार, वैभव को महान वही मानता है, जिसने धर्म को नहीं जाना है। अपने जीने के लिए बहुत हिंसा नहीं करनी पड़ती। बाप को पुत्र की चिन्ता सता रही है, जबकि वे पेट में जब बने थे तो पहले से अपने पेट की व्यवस्था करके आये हैं।

645

किसी के भावों का निर्णय करने तुम बैठ जाओ तो तुमसे बड़ा अभव्य जगत में दूसरा कोई नहीं है, अपने भावों का निर्णय करने का पुरुषार्थ करो कि तेरे स्वयं के भाव कहाँ जा रहे हैं ?

घर की, कपड़ों की स्वच्छता का ख्याल है, भावों की शुद्धता का तनिक भी ध्यान नहीं है, तेरे हाथ में भीख का कटोरा है या सोने-चाँदी के बर्तनों में भोजन है, यह तेरे ही परिणामों का परिणाम है, कपड़े उतारने से पहले कर्तृत्व भाव को उतार देना। देख जरा तेरे भावों में कितनी समता, क्षमा है, शान्ति है।

646

घर छोड़वे, कपड़े उतारवे, त्यागी बनने, व्रती बनने से पहले घर में बैठकर कर्तृत्व भाव पर विचार करना चाहिए।

जैसे ही परकर्तृत्व भाव हट जायेगा, वैसे ही अन्दर साधु भाव प्रकट होना प्रारंभ हो जायेगा।

प्रतिक्षण कर्म आते हैं, उनका शुभाशुभ परिणमन कैसे होता है ? बताते हैं नल की टोंटी से पानी निकल रहा है, बाहर खड़े एक ने नमक छिड़क दिया, पानी खारा हो गया। एक ने बूरा छिड़क दिया, पानी मीठा हो गया।

647

अरिहंत शासन पर श्रद्धान नहीं है प्राणी का, वरना इधर- उधर क्यों भटकता रहता। वस्तु का परिणमन स्वयं होता है, कोई कुछ नही करता काल द्रव्य परिणमन में सहकारी है।

जब उपयोग होता है तभी बंध और मोक्ष होता है। वर्तमान में उपादेय बुद्धि जीव में है या अजीव में है सोच ?

तूने भगवान आत्मा को संसार में भटकाया है तू घोर पापी है। यदि तूझे निज स्वंत्रता, निज सुन्दरता, निज आनन्द का ज्ञान हो जाये तो किसी से विवाद नहीं करेगा। किसी से राग नहीं करेगा। 24 घण्टे मुस्कुराता रहेगा।

648

समयसार असंयम नहीं, संयम सिखाता है 'समयसार' कहता है कि निज में निज का आचरण करो। 'मूलाचार' कहता है 28 मूलगुणों का पालन करो। 'समयसार' निश्चय चरणानुयोग है 'मूलाचार' व्यवहार चरणानुयोग है दोनों मुनिधर्म सिखाते हैं। शरीर दृष्टि बंध दृष्टि है, आत्म दृष्टि निर्बन्ध दृष्टि है, पर्याय दृष्टि बंध दृष्टि है, द्रव्य दृष्टि निर्बन्ध दृष्टि है। 'समयसार' ग्रन्थ में आत्मवैभव की अलौकिक प्रस्तुति है।

(649)

महामत्स्य 6 मास जागकर जीव खाता है, उस पाप में सातवें नरक जाता है, तंदुल उसके कान में बैठा जीव को खाने का मात्र उपध्यान करता है, वह भी 7वें नरक में जाता है, वह एक भी जीव को नहीं खाता। हम पाप क्या मात्र भोग से करते हैं, हम सारे दिन पाप-सोच से, ध्यान से, इच्छा से, निदान से करते हैं। यदि प्राणी निज आत्मा की हिंसा नहीं करूँगा का व्रत ले लेता है तो समझो उसने महाव्रत ले लिया। काषायिक भाव निज हिंसा है, इसका ही तो त्याग नहीं हुआ फिर क्या किया?

(650)

लिंग धारण करना ही पर्याप्त नहीं है निर्ग्रंथ भेष भवन है, प्रतिदिन सफाई करते हो या नहीं?

असाता कर्म के उदय में दुख होता है, तू जानकर दुर्बुद्धि होकर आस्रव बुला रहा है, साता में भोगों में लगता है, फिर दुर्बुद्धि कर आस्रव बुला रहा है, जितने अंश क्लेश में रहता है, उतने अंश असाता का बंध करता है तुझे घर की व्यवस्था की चिंता है परिणामों की व्यवस्था की चिंता नहीं है। पंचम काल में खोटा कहेगा तो छठवें काल में जाना पड़ेगा।

(651)

चारित्र कोई परंपरा नहीं है, चारित्र तो आत्मा को परमात्मा बनाने की विद्या है। आचार्य कुन्दकुन्द ने मोह और क्षोभ से रहित अवस्था का नाम साम्यभाव कहा है, यह साम्यभाव ही संयम है, चारित्र है। सम्यग्दर्शन भवन की नींव है। भवन की पूर्णता नहीं है। निश्चय धर्म का प्रारंभ चारित्र के आने पर ही होता है, दशलक्षण धर्म मेरी आत्मा के धर्म हैं, वस्तुस्वभाव आत्मा का धर्म है, पीना सीखो, यदि कर्मों पर विजय प्राप्त करनी है। कषायों को पीना सीख लिया, समता के साथ तो जीत तुम्हारी ही होगी, चाहे कष्ट ही क्यों न हो।

(652)

विभाव में कब तक रहोगे, स्वभाव में आ जाओ। स्वभाव सहज होता है, सहज ही में शान्ति मिलती है और आनंद आता है, आप अल्पज्ञानी बनकर जीना, ज्ञानी बनकर जीओगे तो परेशानी आयेगी, अहंकार आयेगा। जिन निमित्तों से असंयम भाव बनते हैं, उन्हें हटा दो या स्वयं हट जाओ। मन की गलती को देखनेवाला कोई गुरु है तो तू स्वयं ही है, उदासीन वृत्ति का नाम ही चारित्र है, अपने में हर पल उत्साहित रहना, परन्तु विश्व से उदासीन हो जाना। हमने पूरी पर्याय भोगों की भट्टी में नष्ट कर दी, अन्त में उन भोगों का फल होना है।

(653)

सम्यग्दृष्टि जीव की प्रत्येक प्रवृत्ति विवेक के साथ होती है, जिसके अंत में सम्मेलन को उद्घाटित हो जाएगा, वह स्वयं में पीड़ित हो जाएगा, भले ही मुझे कष्ट हो जाए, लेकिन मेरे निमित्त से किसी जीव को हानि न हो – ऐसा हृदय सम्यग्दृष्टि का होता है। सम्यग्दृष्टि का हृदय 80 साल में भी 3 साल के बच्चे जैसा हृदय होता है। यथार्थ स्वरूप को आत्मा-परमात्मा बनने से पहले माँ बनना पड़ता है प्राणी मात्र के प्रति एक दृष्टि भोजन छोड़ना कठिन नहीं है विश्व को छोड़ना कठिन मेरा तेरा छूट जाएगा तू सच्चा धर्मात्मा हो जाएगा।

(654)

व्यवहार धर्म तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इनका पालन करना व्यवहार धर्म है और निज स्वरूप में लीन हो जाना निश्चय धर्म है। 'समयसार' की सातवीं गाथा में लिखा है- आज रूढ़ि चल रही है, छोटा परिवार, कुछ नहीं दुखी परिवार। जब तक दृष्टि निर्मल नहीं है, तब तक वस्तु का ज्ञान निर्मल होना असंभव है। अरहंत भी किसी को नहीं बदल सकते, बदलता वही है जिसकी ज्ञान की संगति निर्मल है। शास्त्रज्ञान भी पर ही है, निज प्रमेय का प्रमाता जो वेदन कर रहा है, वही मात्र स्वज्ञान है।

(655)

अहो! अनादिकाल से तूने अपने ज्ञान का विपरीत परिणमन किया है, तू ही कर्ता है, तू ही भोक्ता है, कर्मों के पिण्ड का कर्त्ता परमेश्वर नहीं है, कर्म कर्त्ता नहीं है तेरा रागादि का भाव ही तेरा कर्त्ता है, रागादि का भाव तू कर्त्ता होने से तू जड़ कर्मों का भी कर्त्ता है। तेरे रागादिक भावों से कार्मण-वर्गणाएँ कर्मरूप हुई हैं। उन कार्मण-वर्गणाओं के बंध होने के कारण तू रागादिक भावरूप परिणत हुआ। यह भूल कर्मों की नहीं, यह भूल तेरी ही है। कर्म आपसे भिन्न हैं, पर आप पकड़े बैठे हो। रागादिक परिणामों का जो परिणमन चल रहा है, उसका कर्त्ता-भोक्ता तू ही है।

(656)

ज्ञान चेतना यदि निर्मल है तो परमात्म तत्त्व दूर नहीं है।

यह ज्ञान के विपरीत परिणमन का प्रभाव ही है कि यह जीव संसार में गोते खा रहा है। पदार्थ अपने आप में मूक है, द्रव्य अपने आप में शान्त है, परन्तु परिणति में उथल-पुथल है।

जिस दिन सबका ज्ञान छूट जायेगा, उस दिन आप 'स्व' के ज्ञाता बन जाओगे। जब तक राग रहेगा, तब तक सबको जानने की दृष्टि बनी रहेगी। आपके पास ज्ञान का क्षयोपशम तो अल्प है। चाहे जिनवाणी पढ़ लो अथवा उपन्यास पढ़ लो।

657

द्रव्यदृष्टि भूतार्थ को समझने की दृष्टि है, परन्तु द्रव्य निश्चय-व्यवहार दोनों से परे है वो ही तेरी शुद्ध दशा है, द्रव्य दृष्टि द्रव्य नहीं है आगम में तीन बातें ही हैं - द्रव्य, गुण, पर्याय।

जब तक दृष्टि से देखते हैं, तो मैं चैतन्य मात्र हूँ मनुष्य नहीं, रंक नहीं, सुखी-दुःखी नहीं और जब हम पर्याय दृष्टि से देखते हैं तो मैं मनुष्य, रंक, राजा, सुखी-दुःखी हूँ।

भो ज्ञानी! कामना चित्त को प्रभावित करती है, जब चित्त प्रभावित होता है तो कर्मबंध प्रारंभ हो जाता है। एक योगी के सामने स्वर्ण की माला रखी है, उसे उससे खिन्नता या प्रसन्नता नहीं है क्योंकि उसे भूतार्थ दिख रहा है। चारों पुरुषार्थ में यदि कोई उत्कृष्ट है तो वह है मोक्ष पुरुषार्थ, बाकी सब पर हैं। धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थ।

658

मैं (आत्मद्रव्य) परद्रव्य नहीं हूँ, मैं परद्रव्य मैं हूँ। न परद्रव्य मेरा था। न मैं परद्रव्य का था। न मैं परद्रव्य का होऊँगा। न परद्रव्य मेरे होंगे। ऐसा जो जानता है उसका नाम ज्ञानी है, मैं तो मैं ही हूँ। मैं आत्मा रूपी ही हूँ।

भगवानात्मा कहने से भगवान नहीं बन जाते, पुरुषार्थ करना पड़ता है ग्रंथ, गुरु तत्त्व को बताने वाला है, प्राप्त कराने वाला नहीं है, वह तो अपने प्रयास से ही करेगा।

(659)

आत्मा की परिणति से ही मन व इन्द्रियाँ काम कर रही हैं, अतः दोष देना है तो इस अशुद्ध चेतना को देना, इंद्रियाँ तो अर्हन्त की भी होती हैं।

वाणी में स्याद्वाद, दृष्टि में अनेकान्त, चर्या में अहिंसा – ये तीन श्रमण, संस्कृति के मूल सिद्धान्त हैं। स्वयं की ख्याति के पीछे परमागम के मार्ग को, नमोऽस्तु शासन के, विकृत नहीं कर देना। अधूरा ज्ञान अज्ञानता से ज्यादा घातक होता है। विपरीत ज्ञान तो अधूरे से ज्यादा घातक होता है। आगम एकांत नय को मिथ्या कहता है।

(660)

अपेक्षाकृत कथन करने की पद्धति का नाम ही स्याद्वाद शैली है। राम एक है लेकिन संबंधों की अपेक्षा में अनेक रूप भी है, हाथ एक है, लेकिन अंगों की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न अंग सहित है।

यदि जीव के भावों की हिंसा का विनाश हो जाता है, तो द्रव्य की हिंसा छूट जाती है, भावों की हिंसा का हेतु एकांत दृष्टि है। जब एकान्त दृष्टि बन जाती है तो हम एक-दूसरे को सुनना पसंद नहीं करते। इसका परिणाम यह ही है कि जो मैं सोचता हूँ, वही सत्य है, वो ही सही है, राजमार्ग एक ही है, वह रत्नत्रय मार्ग है, उसके अभाव में अनेक नयों को जानकर भी मोक्षमार्ग नहीं बनेगा।

(661)

वैराग्य, तत्त्वविज्ञान, निर्ग्रन्थ मुद्रा समताभाव और परिग्रह विजय ये पाँच ध्यान के हेतु हैं।

जैनधर्म शब्दों का मार्ग नहीं, साधना का मार्ग है, जैनधर्म परिभाषा नहीं प्रयोग है।

तीर्थंकर का शासन, उनके जन्म से नहीं शुरू होता, उन्हें जब केवलज्ञान प्राप्त होता है, उस दिन से होता है।

भो ज्ञानी! जहाँ हीन भावना प्रारंभ हो जाये वहाँ उसका वर्तमान का सुख समाप्त हो जाता है क्योंकि उसने भविष्य को निहारा नहीं, भूताभूत का पता नहीं, वर्तमान में हीन भावना में ही रहा है, उसके तो तीनों काल नष्ट हो गये। भविष्य तुम्हारे सामने है, जैसा वर्तमान का परिणमन होगा, वैसा ही भविष्य बनेगा। पाँच भरत क्षेत्र हैं, पाँचों में अयोध्या और सम्मेदशिखर है।

(662)

पुण्य-परिणामी, पुण्य-क्षेत्र की ओर दौड़ता है और पाप परिणामी पाप क्षेत्र की ओर जाता है। अन्तर्दृष्टि को विशुद्ध कर लो, क्योंकि बाह्याचरण की निर्मलता होने से यह भी अंतरंग की निर्मलता के अभाव में कर्म-निर्जरा नहीं हो पाती। अतः तत्त्वनिर्णय विशुद्ध होना चाहिए। जैसे ही तत्त्व का निर्णय हो जाता है, उस समय सम्पूर्ण भय, आश्चर्य, अरति, रति आदि भाव उपशमता को प्राप्त हो जाते हैं।

663

मोक्षमार्गी जीव बंध के हेतुओं से बचने हेतु श्रुतामृत का पान किया करता है। संसार पाप से स्वपर रक्षा में संलग्न रहता है ज्ञानी, सत्यार्थ-प्रकाश के लिए आगमज्ञान अनिवार्य है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने प्रवचनों में जिनागम के बाहर कथन नहीं करता। संसार की, इधर-उधर की कथायें नहीं सुनाता। वक्ता को व्यवहार और निश्चय दोनों का ज्ञान और श्रद्धान होना चाहिए।

सम्यग्दृष्टि जीव का निदान रहित शुभोपयोग परम्परा से मोक्ष का ही हेतु है, निर्वाण का साक्षात् हेतु शुद्धोपयोग ही है, परमार्थ पर दृष्टि प्रतिक्षण बनाकर मुमुक्षु को चलना चाहिए।

परद्रव्य के आश्रित होता है उसे व्यवहार कहते हैं। व्यवहारनय को जानना परमावश्यक है। जिनमत व्यवहार-निश्चयनय दोनों का समर्थन करता है।

664

जो आज दुखी है तो वह पूर्व का पाप है, जो आज सुखी है तो वह पूर्व का पुण्य है। आत्मा-आत्मा है, उसका स्वाद नहीं, अनादि से कर्मबंध होने से कर्म का स्वाद आ रहा है। बंध को बंध स्वीकारना और बंध में निर्बन्ध को पहचानना ज्ञानी की दृष्टि है। बंध में निर्बन्ध को ही मान बैठना यह एकांगी अज्ञानी की दृष्टि है।

665

एक, दो, तीन, चार एवं असंज्ञी पंचेन्द्रियों में कितने ध्यान होते हैं। दो ध्यान होते हैं – आर्त्त एवं रौद्रध्यान। मन की स्थिरता का नाम ध्यान है। कर्मों की निर्जरा होना ध्यान का फल है। जीवों का संकल्प-विकल्प ही बंध और मोक्ष का कारण है, वह संकल्प वीतराग और सराग के भेद से दो प्रकार का है। वीतराग संकल्प मोक्ष का कारण है, सराग संकल्प बंध का कारण है।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से मेरी आत्मा में रागादि भावों का अभाव है – ऐसी भावना कर वर्तमान दशा में पर्यायदृष्टि से चल रहे रागादिक भावों को निराश्रय करना चाहिए। शुद्ध ज्ञायक भाव को छोड़कर मेरा अन्य कुछ भी नहीं है, ऐसा चिन्तन करना चाहिए। तू ज्ञान के द्वारा ज्ञान का आलम्बन लेकर कर्मों का क्षय कर।

ब्रह्म-आत्मस्वरूप में विचरण करता हुआ वह जब ध्यान करता है, तो कर्मबंध से मुक्त होता है।

666

रागियों के बीच रहकर वीतरागी नहीं बनता। जन सम्पर्क साधुता के लिए जहर है। जहाँ सम्पर्क है, वहाँ साधना नहीं है। धवला में जैन मुनि को साँप बनकर रहने के लिए लिखा हैं, सांप अपना घर नहीं बनाता यानि दिगम्बर मुनि निष्पृह होते हैं।

(667)

निश्चयनय का विषय 'अभेद' है, व्यवहारनय का विषय 'भेद' है। व्यवहारनय के दो भेद हैं सद्भूत व्यवहारनय एवं असद्भूतव्यवहारनय।

व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ मार्ग का नाश हो जायेगा और निश्चय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा। आत्मा का जो स्वाद (बोध) होता है, वह डाला नहीं जाता, पर के हटने से स्वयं सत्य स्वभाव में प्रगट होता है। प्रतिदिन, प्रतिक्षण, अनादि से पुद्गल को भोगते हुए आत्मा के स्वाद को जानना चाहते हो?

(668)

अंदर-बाहर की कषाय उतर जायेगी तो भूतार्थ क्या है? समझ आ जायेगा। संसार के स्वरूप को न समझने के कारण ही तुम संसार में फंसे हो। चैतन्य आत्मा शरीर में है, इस कारण शरीर चैतन्य कहलाता है। परन्तु चैतन्य आत्मा है, शरीर नहीं। तूने शरीर को ही चैतन्य आत्मा मानकर असंख्यात कर्मों को आमंत्रित किया। तूने आज तक आत्मा को समय ही नहीं दिया, अपने शरीर को भी थोड़ा सा समय दिया, सारा समय पर संयोगों को दिया। जितने संयोग, उतने वियोग यह नियम है, वियोग का मतलब है रोना। तूने तो इसी शरीर को जाना है जो अभूतार्थ है। भूतार्थ तो तेरी चैतन्य आत्मा है।

(669)

बन्ध को तोड़ने से बंध छूटेगा, बंधन से बंधा निर्बांधता का चिंतवन करे तो भी नहीं छूटेगा। बंधरूप स्वीकार ले तो भी नहीं छूटेगा।

निर्बंधता का ज्ञान करा दिया – द्रव्यानुयोग, जो बांधक रखे – वह करणानुयोग, जो छुड़वा रहे हैं वह चरणानुयोग है, भइया संभल कर चलना यह प्रथमानुयोग है। यदि बंधन में सुख होता तो तिर्यंच खूंटा तोड़ने का प्रयास कभी नहीं करता। तोता सोने के पिंजरे में, बादाम की खीर रखी है, तोड़ के चला गया, छोड़ कर चला गया। तू क्या सोच रहा है। आ. कहते हैं जिस प्रज्ञा से बंध किया है, उसी प्रज्ञा से बंध से छूटेगा।

(670)

शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में है, चाहे भोगों में लगे, संसार बढ़ाने में लगी, चाहे भगवान की भक्ति में लगे, चाहे खाने में लगे, चाहे उपवास में लगे। वर्तमान यदि तेरा निर्मल है तो भविष्य नियम से निर्मल ही होगा।

ज्ञानी भूत में, भविष्य में नहीं जीता, वह वर्तमान में जीता है। जिसने वर्तमान को जीता, वही वर्द्धमान बनता है।

बंध तभी बंध होगा, जब बंध के काम बंद कर दोगे। खिड़की खुली है तो हवा बंद नहीं होगी और खिड़की तुझे ही बंद करनी है, दूसरा कोई नहीं करेगा।

(671)

'चित्त विक्षेप त्यागो ध्यानम्' चित्त के विकल्पों का त्याग करना ध्यान है। एक विषय में चित्त की वृत्ति को रोकना ध्यान है। ध्यान चार प्रकार के होते हैं, आर्त्त, रौद्र, धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान।

शुभ विचारों में मन का स्थिर होना धर्मध्यान है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धर्म कहा है। उस धर्म से युक्त जो चिंतन है, उसे धर्मध्यान कहा है, मोह तथा क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम है, वह धर्म है। धर्म से उत्पन्न जो ध्यान है, उसे धर्मध्यान कहते हैं। इसके चार भेद हैं - आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय।

(672)

ध्यान करनेवाले पुरुष को चाहिए कि वह कषाय, नोकषाय, कर्म तथा नोकर्म को छोड़कर अपना मन अतीन्द्रिय सर्वस्व-शुद्धात्मस्वरूप में लगावें। आत्मा ही सत्य है - ऐसा जानकर समस्त कर्मों का परित्याग करना चाहिए। ममत्वभाव को हटाना चाहिए, स्वात्मतत्त्व का आचरण करना चाहिए अर्थात् अपना उपयोग आत्मचिन्तन में लगाना चाहिए। साधक को पापक्रियाओं को छोड़कर, पुण्य-क्रियाओं का आचरण करना चाहिए, अशुभ भाव से शुभ भाव में आना चाहिए।

673

परम अकर्तृत्वभाव में लवलीन वह महाश्रमण तीर्थंकर महायोगी वह शब्दों के संयोजन में नहीं लगते। शरीर, वचन मन योग हैं इन योगों के माध्यम से आत्म प्रदेशों का जो परिस्पंदन होता है, उस परस्पंदन से भी जो अपनी रक्षा करने को बैठे हो। जो शब्द अतीत होता है वही है क्या कहूँ उसको वह तो जो है सो है, जो मात्र ज्ञायक भाग है वह क्या है। योगी जब निज ध्रुवधाम में लीन होता है। स्वसंवेदन में झलकता है, कितने सरल हो जाओगे, जितने सहज हो जाओगे, जितने हल्की हो जाओगे, छोटे बालक जैसे हो जाओगे, कषाय रहित हो जाओगे, तुम्हें बोध होना प्रारंभ हो जाएगा। तत्त्वबोध को प्राप्त हो जाओगे। जब कमरे में शांति होती है तो घड़ी की टिक-टिक-टिक करती है, जहाँ मात्र दिखना जाने, ना अवशेष बचे, करना का भाव भी समाप्त हो जाए वह जैन योगी है।

674

सहानुभूति की अनुभूति चाहिए तो विषयानुभूति से निज की दृष्टि दूर करो। एक मौसम में दो धाराएँ नहीं होतीं। एक साथ गर्मी-सर्दी नहीं होती, परमानंद का जो रसिक है उसे विषयों की ज्वाला ऐसे झुलसाती है जैसे मछली को अग्नि झुलसाती है। संसार प्राप्ति में अनेक रूप है, स्वरूप प्राप्ति में एक दिगंबर रूप है।

675

उपादान-उपादेय भाव परवस्तु में नहीं होता, उपादान-उपादेय भाव स्ववस्तु में होता है, घर जब बनेगा, मिट्टी का बनेगा, मिट्टी से बनेगा, उपादान मिट्टी है, उपादेय भी मिट्टी है। ज्ञानी, बनाने में बाकी सब निमित्त है।

स्वर्ग जायेगा तो आत्मा, उसे भेजेगा कौन, न आदिनाथ, न पार्श्वनाथ, न कोई व्यक्ति। ले जाने वाला कोई है तो तेरा निज का परिणमन है, न स्वयं ही है, तेरा आत्मा ही है। जिस द्रव्य को देखकर तुम्हें राग हुआ, उस द्रव्य ने तो तुझसे कहा भी नहीं।

राग होते हुए भी जो रागी आत्मा है, मजेदार बात वह स्वयं राग से भिन्न है, उसका राग स्वभाव नहीं है, इसलिए भिन्न है, राग विभाव-भाव है, जो निमित्त-नैमित्तिक संबंध से उत्पन्न हुआ है।

676

कषाय की अनुमति को आत्मा को आनन्द मानना, यह घोर मिथ्यात्व (अज्ञान) है, उस आनन्द के लिए यह अज्ञानी प्राणी लाखों रुपये खर्च करता है, पैसे कमाने में पाप करता है, पैसे खर्च करने में पाप करता है, रावण से पूछ लो कैसे सोने की लंका बनाई, किसप्रकार सीता का हरण किया, जमीन पर नहीं, आकाश में विचरण करता था, राम के पास उसके समान क्या था ? उसकी दुर्गति होने में कितना समय लगा ?

677

यदि राग की दृष्टि से किसी के हाथ पर हाथ रख दिया न, भोग हो गया। ज्ञाता राग में लिप्त होकर के बंध को प्राप्त होता है, ज्ञेयों ने कभी कहा नहीं, ज्ञाता तू मुझे ज्ञेय बना परंतु ज्ञाता ही रागी हुआ, पर ज्ञेय बना बैठा।

ज्ञानी ! ज्ञान से अज्ञानी नहीं बनता। अज्ञानी बनता है तो राग से बनता है। जब पाप करने जा रहा था, तो क्या तेरे पास ज्ञान नहीं था ? हाँ वह ज्ञान राग की कीचड़ से सना था, उस पर मोह का पर्दा पड़ा था।

678

बंध बंद करना है, पर दृष्टि को बंद करो। पर को दोष वही देता है, जिस की मति अज्ञान से मोहित है बंध मन से, वचन से काय से अनेक प्रकार से कर रहे हो। जितने प्रकार के प्रमाद हैं, पाप हैं ,उनसे कर रहे हो।

असंख्यात प्रकार की हिंसा, असंख्यात प्रकार का झूठ आदि से कर रहे हो। यह जीव स्फटिक मणि तुल्य स्वभाव से हैं लेकिन परवस्तु के संयोग के कारण स्फटिक मणि उनके चित्र-विचित्र रूप हो रही है।

(679)

मिर्च खाते ही आंख-नाक से पानी आने लगता है यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। तीर्थंकर के जन्म से नारकी का दुख भी दूर हो जाता है, यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। कुशास्त्र को पढ़ने की अपेक्षा, 'ओम्' की जाप कर लेना। श्रुताभ्यास केवली बनाकर छोड़ेगा भव्य है तो। सारा विश्व सरागता से भरा है जो सरागता से भरा है वो आपको क्या दे सकता है मात्र उन चेहरों को देखो, जिन चहरों पर आनंद बरसता है। जो हिंसा से रहित है उसका नाम धर्म है। भाई वाचना करना सीखो, किसी की वंचना न करो।

(680)

आत्मा में ज्ञान अवश्य है पर गुरु का प्रकाश नहीं है तबतक तुम ज्ञानी बन नहीं सकते हो। गुरु के अंदर 2 गुण होने चाहिए - एक मां का, एक पिता का। गुरु काष्ट की नौका होता, जो स्वयं तिरे और दूसरे को तार दें। वर्ष का प्रथम दिन है श्रावण कृष्ण एकम। इसी दिन से द्वादशांग की प्ररुपणा प्रारंभ हुई थी। सम्यक् व्याख्या वही कर सकता है, जो क्रोध से दूर है वक्ता के विपरीत कथन से सम्यग्दर्शन का घात हो जाएगा। 'श्री' बीजाक्षर है, उस पर पैर मत रखना। कोई भी तीर्थंकर आगम की व्याख्या भिन्न-भिन्न नहीं करते।

681

आप मनुष्य हैं, मवेशी नहीं, मनुष्य वो ही होता है, जो मन में उत्कृष्ट होता है, मानवता से भरा होता है। संसार से, मुझे प्रयोजन नहीं पर मैं संसार में न रहूँ यह मुझे प्रयोजन है, निमित्तों से घबराना नहीं, सर्वत्र मिलेंगे, अपना उपादान संभालो, अपनी दृष्टि को संभालो।

पर्याय तो समाप्त हो जायेगी, तू पर्याय के लिए इतना पाप मत करना कि तुझे नरक के दुःख उठाने पड़ जायें, बाहर का मल तो जल्दी झड़ जाता है, लेकिन बाहर का मल देखकर, अन्दर मलिन हो गया, तो कौन झाड़ेगा?

682

सम्बन्ध विच्छिन्न हो जायेगा, पर रिश्ता टूटने वाला नहीं है। इस संसार में प्रत्येक द्रव्य का परिणमन अपनी अवस्था में होता है तुम्हें अपनी दृष्टि सम करनी होगी। जिनबिंब कुछ भी नहीं देता पर एक ज्ञानी जिनबिंब को देखकर अनंत कर्मों की निर्जरा करता जा रहा है, अज्ञानी बंध को प्राप्त हो रहा है क्यों ? दृष्टि का भेद है।

भगवान बनने के लिए भगवान को देखना, भगवान की प्रतिमा को मत देखना। सम्यग्दृष्टि जीव पर्याय में पर्यायी को ढूंढ़ता है।

(683)

मुझे किसी के परिचय से प्रयोजन नहीं है, अपरिचित बनकर रहना है, मुझे अपनी चर्या से प्रयोजन है। मोक्षमार्ग सरल है, आज उसे कठिन बना दिया है।

याद रखना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव पड़ता है। जब मिले, जहाँ मिले, आत्मा का ही ध्यान करना।

जब मेरा देह ही मेरा धर्म नहीं है तो पर-देही से राग कैसा ? अपनी प्रवृत्ति का चिंतन किया करो।

कर्मबंध का कैमरा प्रतिक्षण फोटो खींच रहा है, प्रतिक्षण की तेरी पर्याय बंध को प्राप्त हो रही है सावधान हो जा।

(684)

24 घंटे ज्ञान में रहो, धर्म ध्यान में रहो, सीमंधर स्वामी के ज्ञान में अच्छी दशा झलकेगी।

मोक्षमार्ग जगत को खुश करने का नहीं, स्वयं को खुश करने का मार्ग है, अपने को एकांत में रखोगे तो स्वयं खुश होंगे। आत्म सुगंध का आनंद एकांत में ही आता है। गृहस्थी में कभी भी नहीं आता।

राग की लालिमा से, निज सत्ता का भान आज नहीं हो रहा है, आत्मा का स्वभाव पर से अत्यंताभाव है, ज्ञानी वह है, जिसने परभावों का अभाव कर दिया है।

685

द्रव्य का कोई कर्ता नहीं है, द्रव्य त्रैकालिक होता है, जब तू अपना कर्ता नहीं, जगत का कर्ता कैसे हैं? तू द्रव्य का कर्ता नहीं है, ज्ञाता-दृष्टा है, निमित्त हो सकता है प्रश्न आना चाहिए, मुनि तपोघन जंगल में एकांत में बैठकर करते क्या हैं ? करते कुछ नहीं। यही करते हैं कि मैं अपना कर्ता नहीं तू जगत का कर्ता कैसे ? यही भावलिंगी मुनि है शरीर-द्रव्ययोगी, परिणाम-भाव योगी, अंदर बैठा भगवान आत्मा तत्त्व का निर्णय, वंदन एकांत में होता है।

686

वक्ता के साथ श्रोता को भी ज्ञानी होना चाहिए, अन्यथा जो भी सुनेगा विपरीत ही करेगा। तीर्थंकर, आचार्य भगवंतों के शरीर का स्तवन व्यवहार नय से सम्यक् है, निश्चय नय से असम्यक् है, व्यवहार नय को नहीं स्वीकारा तो संशय (विकल्प) खड़े हो जाएंगे।

पर्याय अपेक्षा जीते-जीते अनंत पर्याय व्यतीत हो गई। ज्ञानी! कभी द्रव्य पर भी तो नजर डालो भक्ति करते-करते कितने काल व्यतीत हो गए, उनके अंतरंग को तो निहार लो, बाहर की शुद्धि कर, अंतरंग की शुद्धि कर लो।

687

वर्तमान पर्याय का विशुद्ध जीवनी, यही भगवत्ता का कारण है न भूत पर लक्ष्य है, न भविष्य पर लक्ष्य है, वर्तमान साधना पर लक्ष्य है मोक्ष का लक्ष्य बनाकर के, मोक्षमार्ग में उतर जाना चाहिए, फिर मोक्ष की चिंता छोड़ देनी चाहिए। मार्ग पर चलेगा तो नियम से पहुँच जाएगा। तत्त्वज्ञ ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्ग में अपनी आत्मा को लगा देते हैं, बार-बार उघाड़ता नहीं है, मोक्ष की चिंता न करके, जो चलता जाता है वही उसे प्राप्त करता है मोक्ष की माला मत फेर, उसके लिए पुरुषार्थ कर।

688

जो अपनी आत्मा की संक्लेशता से रक्षा करता है, उसका नाम मोक्षमार्गी है और मोक्ष का कारण विशुद्धि है प्रतिक्षण देखते रहो कि संक्लेशता तो नहीं आ रही। साधु-जीवन में भी संक्लेशता के कारण मिलेंगे लेकिन तुम्हें रंच मात्र भी संक्लेशित नहीं होना है वरना नग्नत्व की अनुभूति नहीं कर पाओगे, जिसके पास समता का कवच है, विशुद्धि की ढाल है, उसे कहीं भय नहीं लगता। भैया! स्वार्थी बनो। मोक्षमार्ग पूर्ण स्वार्थी है निज आत्मा के जो अर्थी हैं। सभी उपाधियाँ साधुओं को परिग्रह है संक्लेशता का कारण है।

689

मूलाचार में लिखा है, जिसमें तत्त्व का बोध हो, जिससे चित्त का विरोध हो, जिससे आत्मविशुद्ध हो, वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

अशुभ से निवृत्ति, शुभ में प्रवृत्ति इसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। अंतरंग-बहिरंग सम्पूर्ण क्रियाओं की प्रवृत्ति का अभाव हो गया, वह निश्चयचारित्र है। आत्मा का दर्शन और रत्नत्रयात्मक भावना, यह योगी का मोक्षमार्ग है, पुण्य तेरा प्रबल है तो श्मशान घाट पर भी तू राजा ही दिखेगा।

690

हे प्रभु! ज्ञान-वैराग्य शक्ति के प्रभाव से मैं ज्ञान चेतना का भोगी बनूँ, राग और भोग की दृष्टि से मैं कर्म-फल चेतना का भोक्ता न बनूँ। भो ज्ञानी! अब ईश्वर को और कर्मों को दोष देना बंद कर दो। तुम मां जिनवाणी के लाल हो, तीर्थंकर तेरे तात हैं और निर्ग्रंथ गुरु तेरे भ्राता, उच्च कुल में तू जन्मा और तू पुद्‌गल के टुकड़ों के पीछे भाग रहा है। भो ज्ञानी! जिनवाणी के शब्द-वर्गणाओं को नष्ट मत करो, यह बड़े पुण्य के योग से मिले हैं।

691

ज्ञाता ज्ञान का जैसा प्रयोग करना चाहे वैसा प्रयोग होता है। चाहे पानी को नाली में डाले चाहे मुख में डाले। यदि ज्ञान का विनाश तो जीवद्रव्य का नाश हो जायेगा। राग से भीगी आत्मायें कर्मों से आर्द्र आत्मायें ऊपर-नीचे होती रहती हैं। आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन है। श्रद्धा जैसी होगी, ज्ञान वैसा होगा, रुचि जैसी प्रीति वैसी होगी। रुचि, प्रीति जैसी वैसा ही ज्ञान होगा। चित्त का चंचल, स्थिर करना हमारे हाथ में है, हम चित्त के साथ रस न लें तो चित्त चंचल नहीं हो सकता। रस लेना प्रारंभ तो पाप प्रारंभ।

692

योगीश्वर, पर को दोष नहीं देते, पर को नहीं सम्हालते, स्वानुभव से निज को सम्हालते हैं, वे ही जितेन्द्रिय हैं।

मैं भिन्न हूँ, 'पर' भिन्न है इन्द्रिय सुखानुभूति, रागानुभूति है, रागानुभूति विषयानुभूति है, वह भी स्वसंवेदन है। ज्ञेय को, ज्ञाता ही निज भगवान संवेदता है। वह संवेदन है वीतराग अनुभूति का अभेदरूप स्वीकारता है, बाहर की आँखें बंद कर लेता है, विवेक की नेत्र खोल लेता है और सोचता है राग विभाव है स्वभाव नहीं। मुझे भ्रमित स्वरूप ने नहीं, रूप ने किया है, ज्ञान ने नहीं, अज्ञान ने किया है।

(693)

क्या राग तेरा शत्रु नहीं है, शत्रु से कोई मित्रता करे तो क्या होगा? सोचा कभी? हे ज्ञानी! तू शत्रु को दाना-पानी दे रहा है या नहीं। पंडितजी भी आपको सुना रहे हैं, राग शत्रु है, कर्म शत्रु है, फिर भी वो भी उसे ही पानी पिला रहे हैं। शत्रु से ऐसी मित्रता, तुझे नष्ट कर देगी। निश्चय पक्षी, व्यवहारपक्षी दोनों ही अपने-अपने पक्ष को पकड़ कर सिद्धालय जाना चाहते हैं, दोनों अज्ञानी हैं, निश्चय और व्यवहार दोनों का आश्रय लेकर निज आत्म पुरुषार्थ की ओर गमन कीजिए - सिद्धालय स्वयं पहुँच जाओगे।

(694)

पूजन और स्वाध्याय से षट आवश्यक पूरे नहीं हो जाते। यह सोच गलत है। भाई! धर्म करने से हिंसा न होये इसका विवेक अवश्य रखना। षट्काय जीवों की हिंसा का त्यागी श्रावक नहीं हो सकता, उसे तो मुनिराज को ही रहने दो। श्रावक हो तो मिथ्यादृष्टि की वंदना मत करना, ध्यान रखना गलती न हो जाये कभी नेता को तिलक लगाने जाओ व्रती होकर।

प्रशस्त राग बंध का कारण है, रत्नत्रय ही उपादेय है, लेकिन प्रशस्त राग में ही रत्नत्रय पलता है।

(695)

आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अभ्यास परमात्मा के ध्यान का कारण है और परमात्मा का ध्यान कर्मक्षय का कारण है, इस लोक में महा अंधकार कोई है उसका नाम मिथ्यात्व है तूने शरीर के सुख के राग में पंचपरमेष्ठी से राग छोड़ दिया। बिना कषाय की सत्ता के इंद्रिय सुख की अनुभूति का भाव नहीं होता।

संसार सुख से कोई सुखी दिखे तुम प्रभावित मत होना, ये ही ज्ञान की साधना है, तत्त्व ज्ञानी कार्य को ही नहीं देखता, कारण को भी देखता है।

(696)

लज्जा और कषायें दो दुश्मन हैं जीव के। कोई लज्जा वश धर्म नहीं करता, कोई कषाय वश धर्म नहीं करता 'कोई क्या कहेगा' यह सोचता है।

'पर' परिग्रह छोड़ना है 'निज' परिग्रह लेना है, निज परिग्रह मेरा ज्ञान-दर्शन है, उसमें मुझे लीन होना है तभी कार्य की पूर्णता होगी। एक को छोड़कर बैठ गया, दूसरे को प्राप्त नहीं किया तो भटकन अवश्य है।

मूर्छा परिग्रह है, ममत्व परिग्रह है।

निर्ममत्व बुद्धि से युक्त गुण, यह अपरिग्रह है।

(697)

हे ज्ञानी ! समयसार की कितनी कीमत होगी, समय को नहीं पहचान पाए अज्ञानी, अपना समय यूँ ही बर्बाद कर दिया। पुरुषार्थ जीव पूर्व में करता है, फल बाद में वर्तमान में मिलता है, पुरुषार्थ का काल कष्टमय होता है, फल का काल आनंदमय होता है।

इंद्रिय-सुख चाहिए, तो सब छोड़ना पड़ेगा। परमार्थ सुख चाहिए तो संपूर्ण इंद्रिय सुख छोड़ना पड़ेगा। सुख छोड़े बिना सुख नहीं मिलता। घर छोड़कर जाता है तो धन कमा कर लाता है, घर त्याग कर जाएगा तो भगवान बन जाएगा। ममत्व त्याग बिना समता धारणा नहीं होती। मनुष्य को मत देखो, मनुष्य में देखो सारा लोक दिखाई देगा। जो आज तुम पर उपकार कर रहे हैं, ये पूर्व में आपके द्वारा उपकृत लोग हैं, वर्तमान में कोटि-कोटि जीवों को घात करने से बचाएगा तो कल तुम्हारे उपकारी बन जाएंगे।

(698)

भगवान महावीर की वाणी आज भी जीवित है, शांति का जब भी अनुभव होगा, तत्त्व के चिंतन से ही होगा। संबंध कारक हट जाएगा तो निज का श्रेय निज को ही मिलेगा। इसका नाम निःश्रेयस होगा। जहाँ विचार का विकार समाप्त उसका नाम 13वाँ गुणस्थान। जो निश्चय से निर्बंध, पर्याय के वश नहीं, भूतार्थ से आत्मा का स्वरूप है – 'खलु निर्बन्ध' सब बातें छोड़ दूँ।

699

जिन कर्मों की क्षपना अज्ञानी हजारों वर्षों में करता है, उतने कर्मों की ज्ञानी क्षपणा क्षण भर में कौनसा ज्ञानी करता है? त्रिगुप्ति से युक्त, भेदा-भेद रत्नत्रय युक्त, निज शुद्धात्म तत्त्व में लीन योगी।

ज्ञानी! जब तक प्रमाद-दशा है, तब तक समयसार का ज्ञान नहीं है, अप्रमत्तदशा ही समयसार है।

क्रियाहीन, ज्ञान नष्ट होता है, ज्ञान हीन क्रिया नष्ट होती है, चरित्र को किनारे कर दिया तो जैन स्याद्वाद कुल में जन्म लेकर भी तुम भ्रमित होकर चार्वाक हो जाओगे।

700

व्यवहार भक्ति सम्यक्त्व रहित मोक्ष का कारण नहीं है, सुंदर स्थिति का, सुंदर पर्याय का कारण है, सम्यग्दृष्टि की भक्ति मोक्ष का कारण है, परमात्मा की भक्ति केवल संसार का कारण है यह गलत है एकांकी कथन है आचार्य देवसेन लिख रहे हैं "सम्यग्दृष्टि का पुण्य नियम से संसार का कारण नहीं है" अन्यत्व भाव परंपरा से मोक्ष का साधन है, मोक्ष का साधन निश्चय भक्ति है, निश्चय भक्ति का साधन व्यवहार भक्ति है, पर्याय की पर्याय से कब तक चिपके रहोगे।

701

जीव पर दृष्टि है तो मोक्ष है अजीव पर दृष्टि है तो मोक्ष नहीं है। स्वात्म दृष्टि रतन दृष्टि है। विषय-भोग दृष्टि मलदृष्टि है, पाप दृष्टि है तो काक दृष्टि है, पुण्य दृष्टि है तो हंस दृष्टि है, दोनों से रहित दृष्टि है तो परमहंस दृष्टि है, निर्ग्रंथ दृष्टि है 'पुण्य-पाप, फल मांहि हरख विलखो मत भाई'।

द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्ष उन्हीं का है, जिनकी संगति में भावना मोक्ष की है, भविष्य मत दिखवाने जाना।

'होता स्वयं जगत परिणाम' अरिहंत की भक्ति करना-व्यवहार से निजशुद्धात्मा की आराधना-निश्चय से।

702

नियम लेना कम या ज्यादा लेकिन कषाय बुद्धि मत करना। ज्ञानियो! व्यवहार धर्म शुद्धता से नहीं तो परमार्थ धर्म कैसे कर पाओगे।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अनुसार मुनि तो दूर, श्रावक को भी पंखा चलाने की अनुमति नहीं है, फिर एसी, कूलर की तो बात ही नहीं। एसी चल रहा है और तुम कह रहे हो परमानंद स्वरूपोऽहं भगवत्स्वरूपोऽहम्।

बिजली गई तो तुम संक्लेशित हो गए, जहाँ रागानुभूति है, वहाँ तत्त्वानुभूति को कोई स्थान नहीं है, वह तत्त्वानुभूति नहीं है, वहाँ रागानुभूति है।

703

आप प्रकट भगवान को देखते हैं। यदि अप्रकट परमात्मा को देखने लग जायें तो मुक्ति जल्द मिल जाएगी।

नव पीढ़ी के बीच परमात्मा की पहचान से पहले आत्मा की पहचान की आवश्यकता है। आत्मा की सिद्धि नहीं तो परमात्मा की सिद्धि किसके लिए? जिस दिन प्राणी को आत्मा की त्रैकालिक सत्ता का बोध करा दिया, उसी दिन परिणामों को संभालने का पुरुषार्थ शुरू कर देगा और विश्व में शांति की सत्ता होगी सबसे पहले यह नहीं कहा 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्राणि मोक्षमार्ग:' सबसे पहले यह लिखा - 'त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं' तीनों काल में 6 द्रव्य हैं और उन 6 द्रव्यों में मेरा आत्मा भी एक द्रव्य है।

सत्य का बोध, सत्य का बोध ये तो तुझे सबसे पहले करना है, उसके बिना एककदम भी आगे नहीं। भूत-भविष्य की सत्ता को नहीं स्वीकारने वाला नियम से संक्लेशता में जायेगा।

704

मेरा और मेरे परमात्मा में भी साध्य भाव नहीं है। साधन भाव ही है साध्य-भाव मेरे स्वात्मलब्धि की सिद्ध अशरीरी भगवान आत्मा है। द्रव्य दृष्टि का प्रयोग मंदिर मात्र में नहीं होता, धर्म चर्चा में ही नहीं होता, जब तुम संसार चर्चा कर रहे हो तब भी होता है। जिस दिन द्रव्यदृष्टि आ जाएगी उस दिन नियम से करुणा दृष्टि हो जाएगी।

(705)

आहार के निरोध से, श्वांस के निरोध से, अतिशीत से, अति–उष्णता से, अति संक्लेषता से आयु कर्म की उदीरणा हो जाती है ऐसा – 'गोम्मटसार जीवकाण्डजी' में लिखा है। समाधि के समय में भी समता रखना। जिसकी पंचेन्द्रिय और मन पर विजय नहीं है, उसकी जिन शासन में जय नहीं है, अशुभ आस्रव पर विजय प्राप्त करने का पुरुषार्थ करो। संकल्प ले लो। संकल्प में बहुत शक्ति है, संकल्प सहित निर्वस्त्र है तो मुनि है, संकल्प रहित निर्वस्त्र है तो नंगा भिखारी है। संकल्प में आस्था है विश्वास है। संकल्प की डोर ढीली नहीं होनी चाहिए।

(706)

योगी देव–शास्त्र–गुरु इन तीन का आलम्बन लेते हैं, जब ये निज के आश्रय में लीन हो जाते हैं तो परमात्मा को छोड़कर निजात्मा में लीन हो जाते हैं, मन को निश्चल करके, कुछ भी चिंतवन नहीं करते हैं। ज्ञानी निश्चय–ध्यान में लीन होना है तो विभाव भावों का अभाव करना है, विकारों का अभाव करना है। जगत के समस्त प्रपंचों से तेरी आत्मा भिन्न है ऐसा देखना है तुझे। आत्मा की शरण ही उत्तम शरण है ज्ञान से ज्ञान का अवलंबन करके कर्म क्षय करो।

707

आत्मा की तरंग (उपयोग) दशा को यदि तुम भोग में लगाओगे तो जला दोगे, यदि योग में लगा दोगे तो जिला देगी, अमर कर देगी। यदि शुभ में जाओ, यदि अशुभ में जाओ, उपादानशक्ति तो आत्मा की ही है, विभाव स्वभाव दोनों धर्म आत्मा के हैं।

आत्मा के परिणाम, कर्म वर्गणाओं को कर्मरूप परिणमित होने से निमित्त बने, वैसे ही तुझे राग-द्वेष रूप परिणमन कराने में कर्म निमित्तमात्र है।

708

निज पर शासन ही जिनेन्द्र का शासन है, वांछा करनी है तो प्रभु बनने की करो, भागवत् बनने की करो। जब तुम्हें निःशंकित और निःकांक्षित होकर शुद्धोपयोग दशा में प्रवेश करोगे तो संपूर्ण वांछायें समाप्त हो जायेंगी। कुछ लोग दुआओं में जी रहे हैं, कुछ लोग दवाओं पर जी रहे हैं, लेकिन कोई दवा (इच्छा) नहीं रहा है 'इच्छा निरोधः तपः' तथा निष्काम आराधना करो।

अपेक्षा ही सबसे बड़ी उपेक्षा है, जहाँ माँगने की भावना आती है, वहीं से लघुता प्रारंभ हो जाती है।

(709)

जो नयों और प्रमाण के विकल्पों से मुक्त हो चुका है। एकांत-अनेकांत के विकल्पों से मुक्त हो चुका है। एक अंतर आत्मा का धनुष में प्रवेश करेगा, वही योगी होता है। जो सारे जगत के विकल्पों से सुने हैं ऐसा परम सुने मेरा आत्मा का धर्म है, पर भावों से सुनने ओंकार बिंदु संयुक्तम नित्यम् जयंती योगिना जब तुझे तेरी ही आवाज भी सुन करने लग जाए, समझना तू योगी बनने लायक है मौन साधना उसका नाम मुनि है।

(710)

आज मचले मन को नहीं बनाया तो पूरे जीवन भर कितनों को मनाना पड़ेगा। मोक्षमार्ग धनपतियों का नहीं है, श्रद्धा पतियों का है। धनपतियों का संबंध कही है तो नरकपतियों से बनने का है। श्रीजी बनना है तो श्रद्धा पति होना पड़ेगा। कंगाल हो जाना लेकिन श्रद्धा की डोर को मत छोड़ देना श्रद्धा टूट गई तो मेरे से बड़ा संसार में दुखिया कोई नहीं होगा। जिन गुरुदेव जिनवाणी तुम्हारे पास श्रद्धा बनाए रखना, बहुत तपस्या तुम कर नहीं सकते।

711

आत्मस्वरूप को यथावत् जानकर अपने स्वरूप से च्युत न होना, यह पुरुषार्थसिद्धि का उपाय है, उपाय जानकर उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ करो। बाकी सर्व लक्षणों का त्याग करो। ज्ञानी हमेशा अपनी दृष्टि में दोष खोजते हैं, निज की दृष्टि में दोष खोज लोगे तो मोक्ष है। भो ज्ञानी! वस्तु को नहीं, दृष्टि को निर्मल करो। माँ जिनवाणी कहती है, भोग भोगना तो पशुवृत्ति है, बंध का कारण है। संसार कठिन है, परमार्थ कठिन नहीं है। योगी की प्रत्येक क्रिया स्वाधीन है, भोगी की हर क्रिया पराधीन है।

712

'आतम को हित है सो सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये।' जहाँ आकुलता है, वहाँ सुख कैसा? जो ज्ञानी निज में निज का रमण करता है, उससे जो आनंद प्रकट होता है, वह परमानंद होता है, खुशी छोटी वस्तु है और सीमित समय के लिए है। संयम, चारित्र, ज्ञान पर्याय सुधारने के लिए नहीं है, पर्याय सुधार कर हम करेंगे क्या? पर्याय तो परद्रव्य है। हे आत्माओ! आप में भगवान विराजमान है, लेकिन आप भगवान नहीं हो। दूध में मावा है, लेकिन दूध मावा नहीं है।

(713)

हिंसा करने वाले की प्रशंसा करना, यह हिंसा ही है। अहिंसक वही हो सकता है, जिसने कषायों का शमन कर दिया हो। अहिंसा का प्रारंभ महाव्रत के साथ छठवें गुणस्थान के साथ हो जाता है और अष्ट मूलगुणों के रूप में अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के भी शुरू हो जाता है। भो ज्ञानी! यदि कर्म सिद्धांत को जानते हो तो शत्रु को भी शत्रु दृष्टि से मत देखो। आयु कर्म प्रतिक्षण क्षीण हो रहा है, भाई, मरण तो चल ही रहा है। किसी जीव का मरण कराकर, जीवन मत जीना। यदि तुम अंतरंग में जल भी रहे हो तो भी हिंसा हो रही है। पहले भावहिंसा होती है, फिर द्रव्यहिंसा होती है।

(714)

आचार्य गुणभद्र स्वामी उत्तर पुराण में कहते हैं – भगवान को जन्म से तीन ज्ञान होते हैं, वह सत्य ज्ञान नहीं है, आत्मज्ञान ही ज्ञान है। भेद-विज्ञान हो जाए, संसार से विषय से अरुचि हो जाए इसका नाम ज्ञान है। परम तत्त्व के लिए कितना निस्पृह होना पड़ेगा, नहीं जानते?

नींबू की जरा-सी बूँद दूध को क्षार-क्षार कर देती है। राग का अल्प कण वीतरागता को क्षार-क्षार कर देता है।

द्वादशांग को कंठस्थ कर लो, एक परमाणु प्रमाण, शरीर से राग, सिद्धि संभव नहीं है।

715

शरीर खाता है कि आत्मा खाती है? न शुद्ध-जीव खाता है, न शुद्ध पुद्गल खाता है। जीव-पुद्गल दोनों की विभाव दशा, मिश्र धारा है वह खा रही है। पंडित टोडरमल जी ने मिथ्यात्व के भेद- निश्चयाभासी, व्यवहारभासी, उभयाभासी।

आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी कथन कर रहे हैं, यह जीव व्यवहार नय से पौद्गलिक कर्मों का कर्ता है। शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध भावों का ही कर्त्ता है।

प्राय: संसारी जीव सत्य-ज्ञान से शून्य हैं।

716

समयसार का संगीत स्वानुभूति पर टिका है, बाहर की आवाजें जब बंद होती हैं, तब भीतर की स्वानुभूति की आवाजें आना प्रारंभ होती हैं समयसार को बंद करके नहीं रखना, ज्ञानी इससे बंध को हटाया जाता है।

क्रियाएँ धर्म नहीं, क्रियायें बिना भी धर्म नहीं है। ईश्वर कर्तावादी नहीं है, हाँ प्रत्येक जीव अपने कर्मों का कर्ता अवश्य है, जब कर्म का वह कर्ता है तो उसका भोक्ता भी वह स्वयं ही है, दूसरा नहीं हो सकता।

(717)

चतुर्निकाय के देवों को मानना (पूजा करना) भक्ति करना भी मूढ़ता है, आगम का सूत्र है, गुणियों के प्रति मैत्रीभाव, दीनों के प्रति करुणा, गुणियों के प्रति प्रमोद भाव और विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थभाव रखो। यही समता का भाव है 'णमो लोए सव्वसाहूणं' की आराधना करके मैं देवों को बुलाऊँ? नहीं में तो देवाधिदेव की आराधना करूँगा, देव तो स्वयं आयेंगे। सुख-दुःख सम्यक्त्व का, रत्नत्रय का हेतु नहीं है, यह तो पुण्य-पाप का हेतु है।

(718)

भो ज्ञानी! जन्मता तू वासना की शैया पर ही है, परन्तु ज्ञानी वो होता है, जो सल्लेखना के संस्तर पर आरूढ़ होकर परमेश्वर बन जाता है। पथ भला नहीं तो अंत कभी भला नहीं हो सकता। प्रज्ञा से विवेक अनिवार्य है, मैं कभी भी शिथिलाचारी न बनूँ। मत कहना मैं बड़ा हूँ, यह छोटा है, मैं मालिक हूँ, यह नौकर है, यहाँ तो श्वान देव हो जाता है और देव श्वान हो जाता है, अहंकार मत करना। वीतराग शासन ही सत्य है।

(719)

बिना प्रक्रिया के जो दूध से मावा निकालना चाहता है, वह बिना संयम के मोक्ष पाना चाहता है, चारित्र की निर्मलता से ही ज्ञान में निर्मलता आती है, भावों की निर्मलता कहीं बाहर से नहीं आती, योगी अपने आप में ही, अपने आप से प्रकट करता है, यह विद्या अनुभव विद्या है, बाह्य विद्या नहीं अनुभव-अनुभूति का विषय है।

जबतक नियमसार नहीं आ रहा है, तब तक समयसार कैसे आयेगा। भाव व्रति की ही सुगति है।

(720)

भो ज्ञानी! परिणाम ही गुणस्थान है इसलिए ऐसा पुरुषार्थ करो जिससे श्रद्धा, संयम तथा चारित्र में वृद्धि हो। जो गिरते को उठा ले वह आगम है।

आत्मा के परिणामों का घात करना ही हिंसा है - ऐसी भावना करे कि आत्मा में भगवती आत्मा की अवस्था प्रकट हो। आगम में द्रव्य-हिंसा और भाव-हिंसा दो प्रकार की हिंसा का कथन है, दोनों प्रकार की हिंसा के त्यागी जब तक नहीं बनोगे, मोक्षमार्गी नहीं हो।

(721)

प्राणी, बंधुओं के बीच निर्बंध नहीं हो सकते, निर्ग्रंथों के बीच जाओगे, तभी निर्बन्ध हो पाओगे। व्रत, समिति, गुप्ति, अनुप्रेक्षा, चारित्र ये निर्बंधता के हेतु हैं। जिस दिन अशुद्ध को अशुद्ध मान लोगे और शुद्ध को शुद्ध जान लोगे, उस दिन तुम शुद्ध होने का पुरुषार्थ प्रारंभ कर दोगे। 8 कर्मों के जो उपल-खंड हैं, उसे भेदविज्ञान की छैनी में टांक-टांक कर तुम निकाल दो, तेरा आत्मप्रभु प्रकट हो जाएगा। लोक जहाँ जनरंजन में लीन होता है, वहाँ संत आत्मरंजन में लीन होता है।

(722)

धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं होता। जब तक निःशंक नहीं, तो निकांक्षित भी नहीं तू करोड़ों का व्यापार फोन पर, विश्वास पर कर रहा है, फिर परमात्मा पर अविश्वास क्यों है ? रोटी का टुकड़ा (एक पुद्गल) मेरा पेट भर देगा। इस विश्वास से खाते हैं। टुकड़े पर विश्वास किया ? भूमि मतें पानी है यह विश्वास है तो देह में परमात्मा है, विश्वास करो। जब खोदोगे तो पानी मिलेगा, जब खोजोगे तब परमात्मा पालोगे। भगवान से मिलना, यह द्वैतभाव है और भगवान बनना यह अद्वैतभाव है।

723

जितना गहरा ज्ञान, उतना गहरा ध्यान। ज्ञान की गहराई के साथ, भावों की विशुद्धि, भोजन की शुद्धि, योग का विवेक आत्मस्थ के लिए परम आवश्यक है। किंचित् मात्र विकल्प है, वहाँ निर्विकल्पता की सिद्धि संभव नहीं है, जहाँ जहाँ परवस्तु में निजत्व बुद्धि होगी, वहाँ वहाँ नियम से ध्यान भंग होगा। जिनके पास था वह छोड़कर साधु बनकर, उसकी स्मृति में दुर्बुद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। किसी को संभालने की आवश्यकता नहीं है, केवल अपने ज्ञान को संभालो। निज के ज्ञान का भी विपर्यास है।

724

सुख तो चाहिए, पर किसमें चाहिए ? जहाँ नहीं है, वहाँ खोज रहा है। सुखाभास हो भी गया पर शांति कहाँ ? शारीरिक सुख कुछ समय के लिए मिल सकता है, पर मानसिक शांति नहीं ? आकांक्षा बढ़ती रही तो क्लेश ही क्लेश है, जहाँ क्लेश वहाँ न शांति है और न ध्यान।

ध्यान है क्या ? पहले संक्लेशता से रक्षा करो, शांति की ओर बढ़ो, फिर ध्यान होगा। ध्यान यानी धर्म, धर्म यानी ध्यान। जिसके पास धर्म है उसी के पास ध्यान है जो मोक्ष का साधन बनता है।

725

आत्मा परिणमनशील नहीं है तो चार गतियों का अभाव हो जाएगा। सिद्धगति का भी अभाव हो जाएगा।

द्रव्य ध्रुव है, परंतु द्रव्य परिणमनशील है, मेरा परिणमन न होता है, होता तो 8400000 योनियाँ कौन धारण करता।

तीनों कालों में क्या द्रव्य रहित पर्याय और पर्याय रहित द्रव्य होता है। आचार्य स्वामी कहते हैं – 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्' आत्मा को कोई भगवान बनाता नहीं भगवत्ता प्रगट होती है।

726

कर्मों का आत्मा से पृथक् होना मोक्ष है न तो कर्मों का नाश होता है और न आत्मा का नाश होता है स्तवन उस पुरुष का नहीं है जिसका स्तवन तू करता है यह नाभिराय के पुत्र, अश्वसेन के पुत्र, सिद्धार्थ के पुत्र का स्तवन कर रहा है, आंखों से दिखने वाले पुरुष का स्तवन तो सभी कर लेते हैं, अपने लोभ के लिए। जिस पुरुष का स्तवन समयसार कर रहा है, वह है चेतन, चिदात्मा। वह बाह्य की आंखें नहीं अंदर की आंख देख पाती है।

727

किसी के पुण्य को तुम दबा नहीं सकते, जो है सो है। वस्तु और व्यक्ति इनके राग में प्राणी भाव बिगाड़ लेता है। एक भी वस्तु, व्यक्ति मेरे साथ नहीं जाएगी, भाव जो बिगड़े वो साथ जाएंगे। जिस काल में ज्ञानी ! जो नियत है टल नहीं सकता चाहे इंद्र आ जाए, चाहे जिनेंद्र आ जाए। अपने पुण्य की ताकत पर, अपने पाप की कमजोरी पर विश्वास करो। आत्मा सत्य है, जीव द्रव्य सत्य है – ऐसा जानकर प्राणी तू सारे कर्मों को छोड़ दे।

728

योगेंद्रदेव स्वामी कह रहे हैं – अपने स्वात्म तत्त्व में रमण करो, समता भाव से।

एकासन, ऊनोदर, उपवास सारे साधनों से उत्कृष्ट साधन है 'समाचरेत' जगत के प्राणियों के प्रति ऐसा सोचना, जैसा मैं दुखी होना नहीं चाहता, वैसे वो भी दुखी न हो। हे भव्यात्मन! योगी को पाप क्रियाओं को छोड़कर पुण्य क्रियाओं का आचरण करना चाहिये और शुभ की भावना रखनी चाहिए।

729

संभल के जीना आज से पाप कर्म का फल दुखी होता है, जो करता है वह निश्चय से होता है। कर्म सिद्धांत के जोड़ में कोई भूल नहीं होती, जिसके पास समता विराजमान है, उसके पास कोई विषमता प्रवेश नहीं कर सकती। आचार्य भगवन कह रहे हैं पाप कर्म का त्याग कर पुण्य कर्मों में लीन होकर निज शुद्ध आत्मा का ध्यान करो। कल्याण आरती पुरुष को निरंतर रत्नेश की भावना करनी चाहिए। जगत को संभालने की अपेक्षा अजित को संभालने का पुरुषार्थ करो।

730

तिल में तेल, दूध में घृत ऐसे ही देह में परमात्मा विराजमान है यह द्रव्यदृष्टि है। आत्मा इस देह में शक्ति रूप से संस्थित है, शक्ति है, अभिव्यक्ति नहीं है। अभिव्यक्ति तभी होगी, तब चारित्र की पूर्णता होगी। चारित्र की पूर्णता 14वें गुणस्थान में होगी।

आचार्य कुंदकुंद कहते हैं मोक्षमार्ग क्या है? अशुद्ध जीव में-राग रहित परिणाम है तो मोक्ष होता है, देह आदि में राग परिणाम होता है तो बंध होता है, परपरिणति संसार हेतु है।

731

स्वात्म का चिंतन पिण्डस्थ ध्यान है। कर्मों के नष्ट होने की सामर्थ्य जब ध्यान में है तो शरीर के रोग नष्ट न हों - ऐसा होता नहीं है। आत्मा का मुनि देखना है, तो फिर जगत के द्वन्द्वों से दूर जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।

राज्यसभा में गणिका नृत्य करें तो सब मुस्कुराते हैं पर पटरानी नृत्य करें तो शोभा को प्राप्त नहीं होती। हे श्रवणो! जो श्रावक के कार्य है वह श्रावक को ही करने दो।

'राज समाज महा अघ कारण वैर बड़ावन हारा।'

732

रत्नत्रय की आराधना ही मुक्ति का समीचीन उपाय है, आत्मस्थ होना ही योगी का कर्त्तव्य है, सर्व-जगत के प्रपंचों से विरक्त होकर निजानंद में लवलीन होना ही योगी का सम्यक् आचरण है। 'पर' में प्रवृत्ति ही विकृति है। स्व में स्थिरता, स्वभाव लीनता ही स्वात्म स्थिति है। गुरुवर कह रहे हैं 'ध्यान' करना है तो कषाय भाव से अपनी रक्षा करो, उबलते पानी में कभी अपना चेहरा नहीं दिखता। निर्ग्रंथ-मुद्रा निर्वाण के लिए है, निर्माण के लिए नहीं है।

(733)

ओहो! तुमने भोगों के पीछे, इंद्रिय सुख के पीछे संस्कृति व धर्म का नाश कर डाला। भो ज्ञानी! जिसकी दृष्टि में जिनवाणी छा गई है, उसे दूसरों की छाया की आवश्यकता नहीं है। असाता को साता में संक्रमित करने का कोई उपाय है तो निस्वार्थ भाव से पंचपरमेष्ठी की आराधना है। सुख में भावित किया ज्ञान, दुख के आने पर विनाश को प्राप्त हो जाता है, जिसने दु:ख से ही अपने आपको भावित किया है, उसका ज्ञान पावन पवित्र शाश्वत हो जाता है।

(734)

आत्माओ! तेरा चैतन्य सुखमय है, न दुखमय है, वह तो शुद्ध चिन्मय चैतन्यभूत है जिसकी दृष्टि खोटी है, उसके आगे आगम सत्य बताकर भूल मत कर देना। जिसकी परिणति जैसी है, वह जाने, लेकिन निज परिणति में विकार करके हम अपनी आत्मा में कर्मों के कुष्ठ रोग को उत्पन्न न करें। मुमुक्षु की आँख पाप-पर्याय के लिए हमेशा बंद रहती है, जिनवाणी कहती है संयम के लिए हर समय वृद्ध बनकर रहना और ज्ञान के लिए बालक बन कर रहना।

735

जिसने जीवन के राग को जीत लिया है, वही तो भविष्य का भगवान है। शत्रु आपको समता सिखाता है मित्र नहीं। जीवन में सफलता चाहिए, उत्कर्षता चाहिए, महानता चाहिए तो अपने चारों तरफ शत्रु खड़े कर दो। जीवन में, मरण में, लाभ में, अलाभ में, सुख में, दुख में, बंधु में, साम्य वृत्ति है, इसका नाम सामायिक है। जब तक जीव व्यसनों को उतारने के साथ वासना नहीं उतारता है, तब तक कोई निर्ग्रन्थ योगी नहीं होता है।

736

जहाँ हिंसा है चाहे शरीर से, चाहे वचन से, चाहे मन से वहाँ बंध है। साधु महाव्रतों को देखता है, पर योगी मात्र निज की आत्मा को देखता है। साधु स्वर्ग तक जाता है, योगी नियम से परमात्मा बनता है।

आत्मा को स्वस्थ रखना है तो पुद्गल से दृष्टि हटा करके निज ध्रुव आत्मा पर दृष्टि ले जाओ। काय, वचन, द्रव्यमन, श्वासोच्छ्वास सब पौद्गलिक हैं। तुमने आज तक किया क्या है ? शरीर को स्थिर कर लो, श्वासोच्छ्वास को संभाल लो बहिरसाधना।

(737)

वर्तमान के ज्ञान का क्षयोपशम भविष्य के लिए सहकारी बनता है – नाश में भी, वृद्धि में भी। धन से धन बढ़ता है, पुण्य से पुण्य बढ़ता है। याद रखना यदि तेरा पुण्य बचा है तो सब कुछ बच जाएगा, पुण्य चला गया, तो कुछ भी बचने वाला नहीं है किसे बचाओगे ? ज्ञानी होगा तो पुण्य को बचाने दौड़ेगा।

बाहर का पदार्थ इंद्रिय सुख का साधन है, भीतर का पदार्थ शांति का साधन है आपको यहाँ सुख तो परिपूर्ण है पर शांति नहीं है।

(738)

संसार शरीर भोगों से उदासीन वृत्ति जिसकी है, वह रत्नत्रय से संयुक्त, तो शिव गति का पथिक है इस पुण्य में मस्त मत हो जाना, दुर्गति के पात्र बन जाओगे। मोक्ष पुण्य-पाप से मुक्त होने पर प्राप्त होगा। तेरी कल्याण की दृष्टि है, तो अपने चित्त पर ध्यान दो। मन को वशीकृत करो। कोई तुम्हारे जीवन में कल्याणकारी द्रव्य नहीं है। मन की चंचलता मन की कुटिलता ही तुम्हारे कष्ट का मुख्य बिंदु है, वस्तु को बदलने का प्रयास मत करो, दृष्टि को बदल दो।

739

अशुभ कर्म यदि तुम हँसी-हँसी में भी करते हो, हँसी के चुटकुले छोड़ते हो, तो भी पाप बंध होगा, बच नहीं सकते। कर्म सबसे बड़ा शत्रु है और तुम उसे बढ़ाते रहते हो। योगी, ज्ञानी कुछ नहीं करते। जो कर्मबंध के कर्म को बंद करके बैठता है, उसी का नाम साधु है। साधु क्यों बनता है? साधु ही बनता रहे तो क्या फायदा है, साधु ही न बनना पड़े, इसलिए साधु बनता है। भगवान बनने के लिए साधु बनता है।

740

जिसका कथन चल रहा है, वह प्राप्त कैसे होगा? उसके लिए निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय की आराधना आवश्यक है, उसके बिना किसी को भी उसकी प्राप्ति संभव नहीं है।

निश्चयनय, व्यवहारनय मोक्षमार्ग नहीं है, निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय मोक्षमार्ग है, इस प्रकार देह व आत्मा के भेदज्ञान को जानकर के मोह से उत्पन्न समस्त विकल्प जालों को छोड़कर निर्विकार होकर, चैतन्य मात्र निज परमात्म भाव में भावना निरंतर बढ़ते रहना है।

(741)

जितने तुम अचेतन तीर्थ की रक्षा में पुरुषार्थ कर रहे हो, उतने ही तुम चेतन तीर्थ की रक्षा में पुरुषार्थ करो। (निर्ग्रंथों की) मुनि को देखकर, मुझे दिख रहा है इनके अंदर सिद्धपर्याय है - भाव-अभाव। जिसका अभाव है उसका भाव भी मुझे दिख रहा है। जैसे अक्षय आत्मा है वैसे ही अक्षय अक्षर है सबसे गहरा धर्म ध्यान है। आज्ञाविचय मुझे नहीं मालूम जगत की व्याख्या, जो सर्वज्ञदेव ने कहा है, वही सत्य है।

(742)

निश्चय-व्यवहार दृष्टि में जीवन निकाल दिया काश सत्य धर्म की, सात तत्त्व की चर्चा घर-घर में होती तो जीवन सार हो जाता है, समयसार हो जाता। समयसार ग्रंथ पर वाद-विवाद न होता। मिथ्यादृष्टि भव्य भगवान बनते हैं, मारीचि महावीर नहीं बने ?

सत्य जानना कठिन है, सत्य को जानकर सत्य में जीना और अधिक कठिन है। सत्य को प्राप्त करना बहुत अधिक कठिन है। आज तक तू असत्य में जिया है, असत्य में मरा है।

743

बंध का हेतु पर-परिणत, पागलपन का हेतु पर-परिणति, मानसिक तनाव का हेतु पर-परिणति। उपेक्षा भाव पर दृष्टि नहीं है। उपेक्षा-भाव नहीं है, तो संयम नहीं आएगा। पर-परिणति में दुखी हो रहा है। हे ज्ञानी ! रिश्ता निभाओ, परंतु अपने को दुखी क्यों कर रहे हो ?

तूने पूरी पर्याय को, पर के होने में नष्ट कर दी। यह जीवन आनंदमय था, जिसे तूने दुःखमय बना दिया। पुण्य लेकर आया था, पाप में बिता दिया।

744

सम्यग्दृष्टि जीव दूसरों के दुख देखकर रोता नहीं है, दुख दूर करता है। दुख का हेतु पर-परिणति है, जिसका व्यवहार नहीं बदलेगा, उसका 'निश्चय' क्या बदलेगा? धर्म को समझना पड़ेगा, ऐसे ही नहीं चलेगा। स्वतंत्र रहना ही जैनदर्शन है। पूर्ण स्वतंत्र होना ही सिद्ध भगवान बनना है।

क्षमा शील कभी छोटा नहीं होता। शरीर में आग लगे, उससे पहले कषाय में आग लगा देना। यह मत सोचना कल क्षमा मागूँगा, कल का क्या भरोसा ?

745

पानी ऊपर ले जाने के लिए मशीन लगानी पड़ती है, पर नीचे ले जाने के लिए कुछ भी नहीं लगाना पड़ता।

निज ध्रुव स्वरूप की प्राप्ति के लिए गुरू रूपी मशीन लगानी पड़ती है, शब्द समयसार सुनाया जा सकता है, शुद्ध समयसार सुनाया नहीं जा सकता।

समयसार पढ़ने वाले संयम से नहीं हटते। हाँ समयसार को न समझने वाले संयम से हटते हैं, समयसार जैसे आलौकिक ग्रन्थ ने चरित्र को गौण नहीं किया।

746

यदि ज्ञान में परिवार आ रहा है, तो अशुभोपयोग है, यदि ज्ञान में भगवान आ रहे है तो शुभोपयोग है परंतु शुद्धोपयोग नहीं है।

जिसके मन में मन का भी विकल्प न रहे, वह आत्ममन है जिनेंद्र के चरणों में बैठे-बैठे, जिनेंद्र को निहारना बंद हो जाए, चिंतन ही चित्त से चला जाए इसका नाम आत्मज्ञान है जब तक चिंतन है, तब तक राग-द्वेष है बुद्धि पूर्वक चिंतन, राग द्वेष को बढ़ाना है।

747

जब पानी से विद्युत उत्पन्न की जा सकती है तो ध्यान से वो विद्युत उत्पन्न होती है जो कैवल्य प्रकट करती है। ध्येय तुम्हारा पवित्र है तो ध्यान भी तुम्हारा पवित्र होगा। जिसका ध्यान पवित्र है उसकी सुगति सुनिश्चित है मेरा बंध, मेरा मोक्ष पराधीन नहीं है मेरा बंध, मेरा मोक्ष स्वाधीन है सुखानुभूति, दुःखानुभूति दोनों स्वाधीन हैं, मैं चाहूँ तो दुखी हो जाऊँ, मैं चाहूँ तो सुखी हो जाऊँ। परमेष्ठी के बीजाक्षरों का ध्यान करने से कर्म भी आत्मा से बाहर फेंक जाते हैं।

748

आप कल्याण करना चाहते हो, तो स्वयं को ठीक कर लो, संसार कभी ठीक नहीं हो सकता। काम निपटे न निपटे पर आयु काम निपट जाएगा। अरहंत परमात्मा के स्वरूप का चिंतन करना समवशरण में विराजे तीर्थंकर के दर्शन करना, परमात्मा के गुणों का चिंतन करना ये पिण्डस्थ ध्यान है आचार्य विमलसागरजी सर्दी में बाहर बैठे अग्नि धारणा का ध्यान कर रहे थे, उनके शरीर से पसीना निकल रहा था सच्ची घटना।

(749)

निज की गलती देखता नहीं, पर की गलती देखा करता। जो जीव कषाय की तरफ बैठा है, उसकी दृष्टि विपरीत चलती है उसे लगता है मैं अच्छा कर रहा हूँ।

धर्म का कोई कार्य करो या न करो तुम जानो, पर कषाय किसी से मत करो। वरना सारा धर्म कार्य नष्ट हो जाएगा। विष से, रक्तक्षय से, श्वांस से, निरोध से, अति ठंड से, अति गर्मी से, आहार के निरोध से आयु कर्म के निषेक का अपघात होता है (अकाल मृत्यु)।

(750)

ज्ञानियो! आचार्य कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं - इस जगत में कोई खोटा है तो 'अज्ञान से मोहित मति' साक्षात् भगवान भी बैठे दिखाई नहीं देते।

दूसरे को दोष देने का भाव आना ही दोष है।

एक भी पुद्गल द्रव्य नहीं कहता, मैं तेरा हूँ और तू हर समय उसे कहता रहता है मेरा धन, मेरा घर, मेरा शरीर, जितने भाव से तू दर्पण में अपना चेहरा दिखता है, उतने भाव से तू क्या भगवान को भी देखता है?

(751)

यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है वस्तु स्वतंत्रता, स्वरूप दृष्टि, तीर्थंकर प्रकृति का बंध, ये मुनियों को भी होता है और तीर्थंकर प्रकृति का बंध चतुर्थ गुणस्थान व्रती श्रावक को भी होता है (रावण)।

आत्मा जिसका इतना व्याख्यान किया है, उस उस शुद्धात्मा को बिना द्रव्यानुयोग के कैसे जाना-पहचाना जा सकता है, तत्त्व का निर्णय बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता।

(752)

आत्मा त्रैकालिक है, शरीर त्रैकालिक नहीं है, वह तात्कालिक है। शरीर के नाश का नाम मरण है। समयसार में यही कथन है कि हम मर नहीं रहे हैं विश्वास हो जाए मैं कभी नहीं मरूँगा, इतना बोध हो जाए, इसका नाम आत्मविद्या है शरीर के साथ यदि आत्मा नष्ट होती तो फिर पुण्य-पाप किसको मिलेगा ।

ऊर्जा का कभी नष्ट नहीं होता है, त्रैकालिक सिद्धांत है, आत्मा को एक वस्तु के नाम से भी जानते हैं, वस्तु का विनाश होता है क्या ? नहीं।

(753)

मोह से युक्त हृदय रहता है जिसका परभाव में भेद न करते हुए, उन परभावों को ही स्वभाव स्वीकारता हुआ, यह मेरे हैं ऐसा भाव करता है, यह निश्चय से अज्ञानी जीव है, आचार्य अमृतचंद्र स्वामी की डांट सुनो – 'जो निज स्वभाव से दूर है वे सब दुरात्मा हैं, सप्तम गुणस्थान में लीन जीव भी आत्मस्वभाव में लीन हैं।'

दुरात्मा दो प्रकार के हैं – 1. शुभ 2. अशुभ। परमात्मा में शुभभावों में लीन शुभ दुरात्मा, विषयों में लीन अशुभ दुरात्मा।

(754)

अंत तक वो ही चलता है, जो सच्चा होता है, पर संपत्ति में लीन होकर निज संपत्ति को मत खो देना। मैं और मेरे के बीच में जो है, उसे मत अपना बना लेना। पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ की चर्चा करने वाले इस विश्व में बहुत मिल जाएंगे, पर शुद्ध चेतना की, निज स्वरूप की चर्चा करने वाले मुट्ठी भर मिलेंगे। जब तक यह परभाव को निजभाव मानने की दृष्टि है, तब तक ज्ञानी मोक्षमार्ग की दृष्टि नहीं है।

(755)

आचार्य अमृतचंद्र कह रहे हैं किसी भी प्रकार से, महान कष्ट प्राप्त कर तत्त्व को जानने का प्रयास कर। अपनी निज आत्मा को, इस शरीर मूहुर्त मात्र भी तू पृथक् देखा-देख लिया तो सम्यग्दर्शन हो जाएगा और अर्द्धपुद्गल परावर्तन में नियम से मोक्ष होगा। समय सम्यग्दर्शन की इतनी महिमा है, उसके बिना सब कुछ भी, कुछ नहीं।

हे ज्ञानी! एक घन से पाषाण नहीं टूटता। एक भव से मोक्ष नहीं मिलता। उसके लिए कई भव लगते हैं।

(756)

प्रत्येक वस्तु को स्वतंत्र घोषित करना यह समयसार की दृष्टि है, अनेक परिणामों से युक्त, इस जीव में मिथ्यात्व व रागादि भाव है अज्ञानी जीव 'स्त्रीपुत्रादिक' मेरे हैं, यह ऐसा कहता है। जो वस्तु का स्वभाव है, वही तत्त्व है। सात तत्त्व में सारे विश्व की व्याख्या है और अभेद दृष्टि से कथन करें तो दो तत्त्वों में सारा विश्व आ चुका है। जीव और अजीव शेष तत्त्व जीव और अजीव का ही संयोग और वियोग है, छह द्रव्यों में एकमात्र जीव द्रव्य चेतन है।

757

जैसे घोड़े का मल चमकता है, ऐसे ही भावकर्म, द्रव्यकर्म का उदय पुण्यरूप जो है, वह लगता तो मधुर है, यह उसके सेवन से उसके बंध की कैसी दुर्गन्ध आती है कि तेरी पर्याय तिर्यंच नरक में जाकर भी वह दुर्गन्ध नहीं जाती। धन्य हैं वे योगीश्वर जिन्होंने उस पुण्य की चमक को दुर्गन्ध रूप समझ स्पर्श नहीं किया और आत्मस्वभाव का स्पर्श कर लिया। मोह जीतने पर ही स्वभावभाव की सुन्दरता का आलम्बन होता है।

758

ज्ञानी ! भोगों की कटेंच की फली आत्मा को खुजला रही है, संसार की सारी विद्यायें करेंच की फलियाँ हैं, उसमें आग क्यूँ नहीं लगा देते। विषय-कषायों को दबाना नहीं जलाना है, दबाओगे तो 11वें से फिर वापस आ जाओगे। तेरी कृपा से सारे काम हो रहे हैं। यह भक्ति की भाषा है, गहरे में गये तो मिथ्यात्व की भाषा बन जायेगी।

सम्यग्दृष्टि जीव निकांक्षित भाव से भक्ति करता है।

आकांक्षा अतिचाह है।

759

गद्दों पर सोते हो, क्या समझोगे समयसार ? तन पर सूले चुभे हो तो समझोगे समयसार। जो अरहंत की द्रव्य- गुण-पर्याय को जानता है उसको दर्शन होते हैं, उसका राग जाता है, अनंत काल से भगवान की प्रतिमा के दर्शन करें, उसकी पूजा करी तथा अपनी देह के दर्शन करें, उसका पोषण किया। बस और कुछ नहीं किया। न प्रतिमाओं में परमात्मा देखा। न निज आत्मा में परमात्मा देखा।

760

शरीर के एक अंगुल में 96-96 रोग हैं, वह स्वस्थ नहीं हो सकता। पर भगवती आत्मा स्वस्थ हो सकती है। त्यागी से मत पूछना शरीर स्वस्थ है कि नहीं, पूछना रत्नत्रय सबल हुआ कि नहीं। अलबत्ता शरीर के माध्यम से धन की प्राप्ति होती है भगवान की प्रतिमा के स्तवन से, केवली के गुणों का स्तवन नहीं होता।

आचार्य कुंदकुंद कहते हैं भगवान बनने के लिए भगवान को भी नहीं देखना पड़ेगा।

761

जब तक इस आत्मा में रागभाव है, तब तक भाव्य अशुद्ध है, राग की ज्वाला आत्मा को विकृत किए बिना छोड़ती नहीं। अपने यथार्थ स्वरूप को भूल गया है।

लोग कहते हैं गृहस्थी बसाई निभाना पड़ेगा। यह राग की भाषा है, जब तू स्वतंत्र है, सबकी सत्ता स्वतंत्र है। वात्सल्य भाव, व्यवहार सम्यक्त्व का अंग है।

उपेक्षा भाव से जीना सीख लोगो तो कषाय से रक्षा हो जायेगी, संबंध स्थापित किया कि परेशानियाँ प्रारंभ।

762

हे ज्ञानी ! अपने सिवाय (आत्मा) सभी पदार्थ पर हैं, ऐसा जानकर तू किससे जुड़ता सबको ही तो त्यागता। अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है, विभाव भाव तेरा निज भाव नहीं, पर भाव है, जिसका अभाव होता है, वह निज स्वभाव होता ही नहीं है, यह रागादि भाव परसापेक्ष है।

कर्मों का संबंध अनादि से है इतने घुल-मिल गये हैं कि उसे भिन्न मानते ही कहाँ हो? तथा अपनी स्वतंत्र पहचान को पहचान नहीं रहे हो। विभाव भाव को विभाव स्वीकार कर ही नहीं पा रहा है।

(763)

जीव स्वभाव से शुद्ध है पर मिश्रण किसका है? 'अनादि संबंधे च' कर्म कब से है ? अनादि से है। भैया! पर्याय अशुद्ध है, द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध है, नाली का पानी त्रैकालिक शुद्ध है, लेकिन क्या तुम इसे पियोगे? अशुद्ध नहीं है क्या? इसी तरह आत्मा संसार में कर्म की नाली के साथ बह रही है, वह आत्मा स्वभाव से शुद्ध होने पर भी कर्म संबंध के कारण, जब तक 14वें गुणस्थान तक नहीं आती, तब तक शुद्ध नहीं है सिद्ध ही शुद्ध है।

(764)

हर अवस्था व्यवस्थित है, अव्यवस्थित कोई वस्तु नहीं है, राग करेगा तो बंध होगा, यह व्यवस्थित अवस्था है राग से हटेगा तो निबंध होगा यह व्यवस्थित व्यवस्था है, दूध में नींबू डालेगा तो दूध फटेगा, यह व्यवस्थित व्यवस्था है।

भेदविज्ञान की मथानी को लेकर निज का मंथन करेगा तो निज को भगवान बनायेगा। यह व्यवस्थित व्यवस्था है, दूसरे पर दृष्टि मत डाल, वस्तुव्यवस्था को बस निहार यह जैनदर्शन की अलौकिक शैली है।

765

सिद्ध परमेश्वर मुक्त ही नहीं अमुक्त भी हैं। कर्म से मुक्त हैं ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य की अपेक्षा अमुक्त हैं। भगवान मुक्तामुक्त हैं, मेरी आत्मा का कोई धर्म है तो उपयोगोलक्षणम्। आत्मा कैसी? उपयोगमयी है, परभावों से भिन्न है, प्रकट कैसे होगी? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र को एकता से संज्वलन कषाय के मंद उदय में आत्मा की अनुभूति है (7-8 गुणस्थान) से ही शुद्धात्मा की अनुभूति कहाँ है जब तक मोहादि का त्याग नहीं है शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं है।

766

मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ - ऐसा जिसमें बहुत होता है, वही तो 'अहं' पद वाच्य आत्मा है यह प्रत्यय सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी भी दोनों को होता है। अंतर इतना है सम्यग्ज्ञानी जीव केवल आत्मा को देखता है, उसकी श्रद्धा करता है। मिथ्यात्वी जीवद्रव्य के साथ अन्य द्रव्य के मिलाप सहित आत्मा को देखता और अनुभव करता है।

मोक्षमार्ग के घातक पंच-पंचेन्द्रिय के विषय-कषाय परिणाम हैं, व्यवहार धर्म तो भेद रत्नत्रय है बस।

767

स्वभाव प्राप्ति के लिए स्वभाव की चर्चा करनी पड़ेगी। इसलिए समयसार सुनने योग्य है गुरु से। निज समय समझ आयेगा तभी तो हम पर समय को हटा पायेंगे। लक्ष्य शुद्ध आत्मा का ही बनाना होगा।

प्रचण्ड राग की तीव्रता में यह जीव जगत के सम्पूर्ण द्रव्य को आत्मभूत किए हैं बाह्य तत्व मेरा नहीं होता, अंतस् तत्त्व ही मेरा है, इसलिए स्वयं ही अपने उपयोग से मैं भगवान आत्मा हूँ ऐसा ही जानना।

768

संवेदन धर्म जो है वह पुद्गल का नहीं आत्मा का धर्म है, ज्ञान स्व-पर प्रकाशित है पर को भी जानता है स्व को भी जानता है। जो निश्चय-व्यवहार पक्ष से हटकर स्वात्मपक्ष को जाने वह अंतरात्मा। भगवान महावीर स्वामी ने वेश्या के भव धारण किए 60 हजार बार।

अमृतचंद आचार्य ने रत्नत्रय से मंडित आत्मा को ही समयसार कहा है, जब इस लोक में किंचित् भी परमाणु मात्र तेरा नहीं है तो क्यों जगत का बोझ ढो रहा है।

(769)

कर्मों से बंधा है, कहते सब हैं परन्तु विरले ही जीव, कर्मों से छूटने का पुरुषार्थ करते हैं, तूने जिनलिंग को धारण करके भी मात्र कर्म की ही आराधना की है। 'धर्म' की आराधना की ही नहीं है, जीव को पता ही नहीं, वह क्या कर रहा है ? पुण्य के फल को मांग रहा है या पाप कर्मों को कर रहा है, इन्द्रिय सुखों को सुख मानता है, चाहता है।

संसारातीत होना है तो कहीं मत जाओ, दो कर्मों पर दृष्टि रखो – दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय।

(770)

अरे ज्ञानी ! परमेष्ठी पूज्य हैं, इसलिए आराधना करना, लेकिन आत्मा का स्वरूप नहीं है, यह तो मानना ही पड़ेगा। मैं परमेष्ठी की पूजा भी निज आत्म स्वतत्त्व प्राप्ति के लिए कर रहा हूँ, अरहंत के द्रव्य–गुण–पर्याय को जो जानता है, वह ही अपनी आत्मा को जानता है, हम अरहंत के पादमूल में अरहंत को देखने नहीं आते, अरहंत में निज अरहंत को झांकने आये हैं, जैसे दर्पण में अपना चेहरा देखकर, चेहरे की कालिमा पोंछ लेते हैं।

771

अनुभूति ही आनंद है, आनंद जड़ का धर्म नहीं, आत्मा का धर्म है, जब घर में कोई अनिष्ट हो जाता है, तो बाहरी पदार्थ होते हैं, वो ही घर होता है, पर अच्छे क्यों नहीं लगते? सुख आत्मा का गुण है, इन्द्रिय सुख भी सुख है, नरक का दुःख क्या है, तिर्यंच का दुःख क्या है, स्वर्ग का सुख क्या है, मनुष्य गति में सुख क्या है ? इन्द्रिय सुख में तूने अनादि समय व्यतीत किया है। जो इन्द्रिय सुख है, वे सब पराधीन हैं और आकुलता सहित है।

772

जिस दिन द्रव्य दृष्टि आ जाएगी, उस दिन अहिंसा नियम आ जाएगा। द्रव्य दृष्टि तुझे चरित्र की तरफ ले जाएगी। धन्य हो मुनिदशा मल विसर्जन में भी कर्म निर्जरा कहते हैं स्वयं को स्वतंत्र मानो यदि सुगति चाहते हो तो, पर को पर मानो स्व मत मानो। एकत्व विभक्त भगवानात्मा का आनंद विरले निर्ग्रन्थ लेते हैं, कोलाहल में कुछ नहीं मिलेगा। आचार्य अमृतचंद्रस्वामी कहते हैं एकांत में सारे विकल्पों को हटाकर 6 महीने ध्यान करो। कभी एकल विहार मत कर लेना। पंचम काल में संगति अनिवार्य है।

773

जैसे निर्मली डालकर मलिंग पानी को शुद्ध किया जाता है, वैसे ही निजचित्त में निजस्वानुभव से निजज्ञान की निर्मली से अपने ज्ञान को शुद्ध करो। पर के राग में, वासना में, कामना में जा रहा है ज्ञान। वैराग्य से दूर हो रहा है ज्ञान।

ज्ञाता, ज्ञान का दोष नहीं है, ज्ञान तो सविकल्प है, ज्ञान सतरंग है, ज्ञान में तरंगे उठती हैं, ज्ञान को संभाला जाता है, तुझे तो विश्व ज्ञाता केवली भगवान बनना है, पर को संभालने में अपने को क्यों भूल रहा है।

774

आत्मा कर्म से काली है, ऐसा नहीं है। आत्मा कर्म से आवरणित है, कर्म आत्मा का स्वभाव किंचित् भी नहीं है, कर्म और आत्मा का मिला हुआ ही जीव का स्वरूप है। चार्वाक मत है पंचभूत पृथ्वी, अग्नि, वायु के मिलने से जीव की उत्पत्ति मानता है, आज प्राणी आत्मा को नहीं जानता हुआ, नाना रूपों में देखता है।

पर के विषयों को देखने में, जानने में, तुझे इतना विवेक नहीं जगा, यदि दृष्टि अपने ऊपर ले जाता तो कर्मों की निर्जरा होती, संवर होता, मोक्षमार्ग प्रशस्त होता।

775

आचार्य कुंदकुंद कह रहे हैं कि परवस्तु को निहारना व्यभिचार है, स्वरूप से बाहर जाना ही व्यभिचार है, ज्ञायक भाव से अपने आप को हटाकर चलना व्यभिचारी दृष्टि है फिर कहाँ दिखेगा ?

शुद्ध आत्मा को जाने बिना शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं होती। आप आत्मा के नाम से चिढ़ते क्यों हो ?

सम्यदृष्टि श्रावक वही होता है, जो पंचपरमेष्ठी के साथ शुद्धात्मा की भावना भाता है, ग्रहण करना धर्म नहीं है, छोड़ना धर्म है द्रव्याख्यान अर्थात त्याग प्रत्याख्यान।

776

पाप नाम की वस्तु इस ब्रह्माण्ड में कोई नहीं है, जीव के परिणाम ही पाप हैं, तेरे रागादिक परिणाम भाव पाप हैं, तेरे शुभ परिणाम भाव पुण्य हैं, तेरी अशुभ करने की प्रवृत्ति द्रव्य पाप है, तेरे शुभ करने की प्रवृत्ति द्रव्य पुण्य है। तू ही पुण्य है, तू ही पाप है, तू 24 घंटे में कितनी बार पुण्य जीव होता है कितनी बार पाप जीव होता है। शरीर की साधना तो थोड़ी होती है, परिणामों को संभालने की साधना सीखो, जो हर पल चलते रहते हैं (सीखो तंदुलमच्छ से)।

(777)

जब जीव निज ज्ञान को निज ज्ञेय में लगा लेता है, वही ध्रुव विवेक ज्ञान है जहाँ ज्ञान का प्रयोग संसार में, विषयों में लगा लेता है वह अविवेक दृष्टि है ज्ञान और विवेक एक सा लगता है, परन्तु ज्ञान-ज्ञान है परिणतिरूप परिणमन विवेकरूप तथा अविवेकरूप है ज्ञान मध्यस्थ है ज्ञान तटस्थ है ज्ञाता के अन्दर ज्ञान का उपयोग करने का जो भाव है, वह जैसा होगा, ज्ञान वैसा कार्यकारी है ज्ञान की पर्याय मतिश्रुत है, यह तो बदलती रहती है, परन्तु ज्ञाता नहीं बदलता।

(778)

बेटे की गाली, पत्नी की फटकार समता से सुन लो तो साधु बनने की योग्यता आ गई। ज्ञानी ! समयसार बांचा है, अब वचनामृत, पाचना, कहना कि वास्तव में है क्या? जहाँ त्याग का भी त्याग कराया जाय उसका नाम समयसार है त्याग का वर्णन करना त्याग नहीं है त्याग से राग है उसे भी नहीं करता।

अनादि से मोह की संतान है उसी के वश यह जीव तल्लीन हो रहा है, बुद्धिविहीन जीव के मोह का पट हट जाने पर कैवल्यज्योति प्रकट हो जाती है।

(779)

रत्नत्रय के साथ जो पुण्य का बंध होता है, वह स्वर्ग ले जाता है, वैसे रत्नत्रय तो मोक्ष का ही हेतु है, राज-मार्ग यही है। यदि हमारा सम्यक्त्व निर्मल हो गया, सम्यक्त्व के साधन निर्मल हो गये तो समयसार तो मिल ही जायेगा।

जिनकी भवावलियाँ अनंत हैं, उनके अशुभ भाव होना निश्चित है। जिनकी भावावलियाँ न्यून हैं, वे वीतरागी देव, शास्त्र, गुरु के चरणों से दूर नहीं रहते।

(780)

ज्ञानी! देह में मैं हूँ, देह मेरे में नहीं है, इस असद्भूत व्यवहारनय में जो नयातीत विराजा है, वह निज भगवान आत्मा है। बाह्य साधन (अनुकूल) हुए बिना, परिणाम निर्मल होते नहीं। पण्डित टोडरमलजी कहते हैं बर्तन को तपाये बिना दूध तपता नहीं है।

आ. समंतभद्र लिखते हैं, मैं मुनि क्यों बना, भव का अभाव हो जाये, इसके लिए दुनियाँ साधु बनती है। भव के अभाव की भावना का ही अभाव हो जाये – 'मैं जो हूँ सो हूँ'' की प्राप्ति के लिए मैं मुनि बना हूँ।

781

विकारी भाव, सहज भाव नहीं है। परभाव सहज भाव नहीं है। आराध्य-आराधक भाव हो सकते हैं और अरहंत भक्ति भी सहज भाव नहीं है। यह धर्मानुराग भक्ति भाव है, सहज भाव में एकमात्र निज स्वभाव में रमण होता है। शुभ राग, राग का परिवर्तन है सहज नहीं है। दु:ख से दुखी मत होना सुख से सुखी मत होना, यह तथ्य की मूल बात है - ऐसा साधक ही सहजता को पकड़ सकता है।

782

जीने के लिए सब कुछ चाहिए और सब कुछ के लिए सब कुछ करना पड़ता है, जब करना पड़ता है तो निकल कैसे सकता है।

783

मुमुक्षु जीव नामों को नमस्कार नहीं करता, वह तो भगवान को नमस्कार करता है, उनके गुणों को नमस्कार करता है। 'वंदे तद्गुण लब्धये।' अहो धर्मात्माओ! धर्म एहसान करना नहीं, धर्म तो तेरा स्वभाव है, धर्म स्वयं का कल्याण करने के लिए स्वीकार किया जाता है, तीर्थंकर जिनशासन के प्रवर्तक नहीं, प्रचारक हैं, चाहे एक दिन का गर्भपात है या 9 महीने का - पंचेन्द्रिय जीव का घात है।

784

ज्ञानी को यदि माला पहनने का शौक है, तिलक लगवाने का शौक हो तो अपना धन छोड़ देता, अपने सम्मान के लिए समझ लेना तेरी कापोत लेश्या चल रही है, जितना पुरुषार्थ देह को चमकाने में करते हो उतना पुरुषार्थ परिणामों को चमकाने में कर लेते तो पंचमकाल में नहीं आना पड़ता।

इच्छा जब होती है तो चित्त नीचे जाता है, जब चित्त नीचे जाता है तो चारित्र नीचे आता है। जब तक आपके चित्त में कोई इच्छा नहीं है, तब तक आप श्रेष्ठ हो।

785

हे वर्द्धमान ! जब तक 5 नाम गूँजते रहे, तब तक अशरीरी नहीं बन पाया, जब अशरीरी बनने गये थे, तो एक नाम भी नहीं था, जो था वही था। वो कौन था ? पर्याय की पहचान के लिए नाम है, सत्य का कोई नाम नहीं है। सत्य का जीवन जीना चाहते हो तो नाम लेना भूल जाना। जब पर्याय ही सत्य नहीं तो नाम कैसे सत्य हो गया।

धर्म की दृष्टि आकिंचन्य दृष्टि है। आकिंचन्य में पदार्थ नहीं दिखता। केवल आत्मा दिखती है।

786

शब्दों का भेद-विज्ञान अनंत बार किया पर भेदविज्ञान नहीं हुआ। जब जानता नहीं था, अब जानता है। ज्ञानी निज स्वभाव, है कहाँ ? विभाव हटा तो निज स्वभाव है। जब तक स्वसंवेदनभाव नहीं जगेगा। भेदविज्ञान की जागृति नहीं होगी, भेदविज्ञान का मतलब द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियों के विषय जीतना है, परभावों को जीतना सबसे कठिन है, असंख्यात कर्मवर्गणाएँ आत्मा में बंध जाती हैं, आँख झपकते ही।

787

जो क्रिया भाव से शून्य है, वह फलित नहीं होती। व्यवहार भक्ति भी, प्रकट रूप से होनी चाहिए। सामायिक में मच्छर बैठ जाये तो उड़ाने में लग जाता है, व्यवहार भक्ति से मात्र संतुष्ट मत हो जाना, फिर निश्चय को प्राप्त नहीं कर सकता।

सम्यग्दृष्टि जीव अंत तक संतुष्ट नहीं होता, प्रत्येक क्रिया में परमार्थ दृष्टि रखता है, परमार्थ दृष्टि के बिना तो व्यवहार भी नहीं, व्यवहाराभास है, मन का अभिनंदन नहीं करना भाई, कितनी बार कह चुका है।

788

भगवान एकांत से बनते हैं, पापी भी एकांत खोजता है, जीवन बनेगा एकांत में, स्वयं से चिंतन वार्ता एकांत में ही होती है। बिगड़ोगे तो भी एकांत में।

समय के लिए समय नहीं है, पर समयों के लिए पूरा समय है, पलक झपकते तब तक आस्रव है, मोह अलग हो जाये तो सब समाप्त हो जाये। तेरी भगवानात्मा, परद्रव्यों परभावों से भिन्न है, जो आत्मा को देखता है, वही निश्चय से मोह जीतता है।

789

हे रागी ! जैसा राग मेरे प्रति है, ऐसा स्वयं के प्रति हो जाये तो स्वयंभू बन जाए। चमड़ी का राग क्यूं कर रहा है। कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं, भगवान के चरणों का राग जब संसार का कारण है तो पर की चमड़ी का राग संसार का कारण क्यों नहीं होगा। परमात्मा से राग तो परम्परा से मोक्ष का कारण बन जायो, पर देह का राग तो संसार का कारण ही बना रहेगा। कोई तेरे काम नहीं आये, निज परिणामों की निर्मलता तेरे काम नियम से आयेगी।

790

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' - तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है तत्त्व पर श्रद्धान हो गया तो सम्यग्दर्शन हो गया। नहीं भाई, यह तो सम्यग्दर्शन की व्याख्या है।

सम्यग्दर्शन तो यह है कि अपने घर में, अपने आसपास जिसको देखा रहे हो, वो सब आत्मा दिख रही है, सब एक से दिख रहे। साता या असाता कर्म उदय, दोनों एक दिख रहे यह है सम्यग्दर्शन।

791

समाज, पुत्र, परिवार के प्रति जो तूने राग किया है, द्वेष किया है, यहाँ किसी के काम नहीं आयेंगे। हाँ, वह कर्मास्रव अगली पर्याय में तेरे अवश्य उदय में आयेंगे।

कोटि-कोटि उपवास करने की अपेक्षा तटस्थ जीवन जीना उत्कृष्ट साधना है।

भूखा रहना तो शरीराश्रित है, यह परिणामों को तटस्थ बनाकर रहना। यह निज के भीतर का पुरुषार्थ है, गाली देने वाले के प्रति परिणाम कैसे हैं, जरा निहारिये। पता चल जायेगा मोक्षमार्ग कितना आरम्भ हुआ है।

(792)

जहाँ संकल्प-विकल्प की लीलावलियाँ चल रही हैं, वह ध्यान ज्ञानी मोक्षमार्ग में कारणभूत नहीं है, ध्यान 'पर' से हट 'निज' में लग जाये ये ही तो ध्यान है। स्वभाव में लीन हो जाए यह परम ध्यान है। यही प्रत्याख्यान है, व्रत संयम से ऊपर यह ध्यान है।

मोह पीडा देता है, फिर क्यूँ करता है ? यह समझ क्यूँ नहीं आता। मोह की दशा सत्यार्थ को जानते हुए भी आँख बंद करा देती है तथा असत्यार्थ की पुष्टि कराने में मोह बड़ा प्रबल होता है।

(793)

हे कमठ ! तू नाना उपसर्ग ही कर सकता है, पर तू योगी की कषाय को नहीं भड़का सकता। यह है समयसार की अनुभूति का समयसार।

आज हमारी दृष्टि द्रव्य पर है कहाँ, पर्याय का राग इतना दृढ़ हो रहा है कि पर्याय में ही द्रव्य झलक रहा है, मनुष्य असमानजातीय पर्याय है, इसमें भी द्रव्य नहीं झलका तो समानजाति पर्याय में क्या झलकेगा ?

794

प्रशंसा का मन नहीं तो इससे बड़ा प्रशंसनीय नहीं। रत्नत्रय की आराधना ही सबसे बड़ा आत्मा का अभिनंदन है। यह परमार्थ दृष्टि है।

मोह सहित निर्ग्रंथपना भी संसार-पना है, मोहरहित श्रावकपना भी मोक्षपना है, मिथ्या मोह-रहित श्रावक मोक्षमार्गी है, मुनि बनूँगा, पर निर्मोही बनूँगा ऐसा सोचना। संज्ञी हो, पंचेन्द्रिय हो, जागृत हो, पर्याप्तक हो, कर्मभूमिया हो, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनगुरु का निमित्त हो ये ही तो काललब्धि है, देखो क्या नहीं चल रहा ?

795

सच्चे मुनि बन जाओगे तो मोक्ष तेरी मुट्ठी में है। साधक बनो तो असंयम से बचो। ज्ञानस्वभावी आत्मा से जो अन्य द्रव्य है, वह परद्रव्य है, जो इसको जानता है, देखता है, वो ही साधु है।

मोही को धर्म का विवेक नहीं रहता। वीतरागी की ध्वनि ऐसे निकलती है। सामने से टकरा कर स्वयं पर आ जाती है, यह परद्रव्य, परइन्द्रियाँ भावक हैं, आत्मा भाव्य है, भावक-करण है, भाव्य-क्रियाभूत कर्त्ता है।

796

हे मुमुक्षु! जब तू चाहेगा, तो तू शुद्ध हो सकता है, अपना सुधार कर सकता है, वर्ना तो जैसा अशुद्ध चल रहा है, चलता रहेगा। भूल हुई है, भूल ही चलती रहेगी। भूल मोह की नहीं है, मोह तो एक कर्म है, भूल मोही की है, मदिरा की भूल नहीं, भूल मद्य पापी की है।

आज वृद्धावस्था आ गई है फिर भी मोह बूढ़ा नहीं हो रहा है और जवान हो रहा है। श्वांस खिंचने लगी यह मोह की श्वांस नहीं खिंच रही है, जब तक प्राणी निज भाव में लीन नहीं होते, उन्हें परभाव में ही रहना पड़ता है।

797

आत्म स्वभाव की चर्चा करने वाले भी पुद्‌गल में लिप्त है, जब मोह मेरा नहीं तो मोह के साधन मेरे कैसे ?

पहली प्रतिमा लेते हो। 'संसारशरीरभोग निर्विभिन्ना'। राग का छूटना सबसे कठिन देह से है, अनंत भव लग जाते हैं।

राग की बातें बंद करो, वैराग्य की बात कर सकते हो तो करो। प्रत्येक स्थिति में समता रखो, असाता में सोचना, मेरा पूर्व कर्म फलित हुआ है।

798

तू तो चिद्रूप देखता है, पुद्गल पिण्ड पर दृष्टि क्यों ? क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी 6 महीने राग में खोया हुआ है, चारित्र मोहनीय की प्रबलता है, जब तक स्वयं का मोह हलका नहीं होता, कितने भी निमित्त समझाने वाले मिल जायें।

बहिरंग की साधना करनेवाले कोटि जीव है, परन्तु कषाय का उपशमन करने वाले बहुत कम हैं।

बाह्य साधना, बाह्य प्रभावना की वाह-वाह में अंतरंग छूट न जाए।

799

अध्यात्म, द्रव्य की परिधियों में नहीं घूमता, भावों की परिधियों में चलता है, आनंद द्रव्य में नहीं, अनुभूति में आनंद है एक आम यहाँ रखा है, आनंद आयेगा क्या? चखेगा, अनुभूति करेगा, तब आनंद आयेगा ज्ञानी, तत्त्व का ज्ञान तो है, पर चख नहीं पा रहे हो, इसलिए आनंद नहीं है, आनंद जड़ द्रव्य का धर्म है कि आनंद आत्मा का आनंद है। आनंद तो आत्मा का धर्म है। 'सच्चिदानंद स्वरूपोऽहम्।'

(800)

कर्म का कर्ता, भोक्ता, आत्मा तू स्वयं है और जब मुक्त होगा तो बहिरंग अंतरंग उपायों से यह आत्मा ही मुक्त होगा। वास्तव में सिद्ध भगवान कर्म नष्ट नहीं करते कर्म से पृथक् होते हैं, पृथकी करण की क्रिया है, चिंतन कहना जब मोह मेरा नहीं तो मोह के साधन मेरे कैसे हो सकते हैं, पर के राग में, प्राणी स्वयं के भगवान को खो रहा है। निजात्मा के स्वरूप में प्रीति होना है। सत्यार्थ प्रत्याख्यान है, रागादिक भावों का अभाव करना प्रत्याख्यान है।

(801)

जो मैं होता हूँ, वह त्रैकालिक होता है, जो मैं नहीं होता हूँ, वह तात्कालिक होता है, यह भव्य जीव की मोह दशा त्रैकालिक नहीं है। यह भव्य जीव का असंयम त्रैकालिक नहीं है, यह भव्य जीव का मिथ्यात्व अविरति त्रैकालिक नहीं है। विभाव तो विभाव है, विभाव तो बारिश के बादल हैं, काली घटा नष्ट नियम से होगी, पर आकाश अखण्ड है, आत्मा में मोह हो सकता है, पर आत्मा मोह नहीं, मैं आत्मा हूँ, तो मैं मोह नहीं।

(802)

जो मंदिरों में करते हो, वह पुण्य है, पुण्य कर्म है, धर्म वस्तु भिन्न है, जब तक स्वामित्व भाव है, कर्ता भाव है यानी संबंध कारक जहाँ-जहाँ होगा, वहाँ-वहाँ कषाय भाव होगा वहाँ-वहाँ बंध होगा इसी को जानना धर्म वस्तु है जहाँ 'पर' आ गया, मैं नहीं बचा वही मैं स्व से हट गया। अतः संबंधों का अपादान करो, जैसे वृक्ष से पत्ते गिर रहे हैं, ऐसे ही अपने अंतरंग में राग का पत्र पड़ा है, उसे छोड़ दो।

(803)

सम्यग्दृष्टि जीव चाहे श्रावक हो, चाहे साधु 23 घंटे यही भाव लाता है भगवान मैं आपके पास आता हूँ कि आपके पास भी न आना पड़े। आना नहीं छोडूंगा, तब तक आता रहूँगा, जब तक आप न बन जाऊँ। द्रव्य नहीं बदलता, पर्याय बदलती है, तन बदल रहा है, आत्मा तो वही है, तू बदल रहा है, उसे देख रहा है, जो शाश्वत है, उसे कहाँ देख रहा है।

(804)

चरित्र में न्यूनता आ जाए तो प्रायश्चित से शुद्ध हो सकता है, श्रद्धा में एक अंश कमी मत लाना, उसकी पूर्ति किसी से नहीं होती। आज अभक्ष्य भोजन खाने वाला कहता है कि आज आगम अनुसार मुनि नहीं हैं। कोई विद्वान आए, त्यागी आए, ज्ञानी आए उसका सम्मान करना। व्यवहारनय से, शरीर -आत्मा एक है निश्चय से दोनों कभी भी एकरूप नहीं है।

805

सबसे बड़ा पाप अज्ञानता। पंचम काल में, पृथ्वी पर प्राणी पर्याय में जीता है। पर्याय में जागता है, पर्याय को जानता है, पर्याय में रहता है, पर्याय को जोड़ता है, पर्याय में ही सुखी-दुखी होता है, पर्याय ही परिणति है, पुण्य-पाप में स्वीकृति है।

एक दिन पर्याय में ही मर जाता है, जो वह है ही नहीं, कितना बड़ा धोखा है? जो वो है 'परम' उसे जानता ही नहीं।

806

स्वभाव में वैराग्य-धारा वीतराग-धारा ही बहेगी। सुख विषय का बढ़ गया है, पर शांति घर गई है।

जिन शासन में परमात्मा को भी पर-द्रव्य कहा है, तो राग को निज-द्रव्य कैसे कह सकते हैं। पहले विषयों से हटो, परपदार्थों से हटो, फिर वीतराग दशा को प्राप्त करोगे। कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका में आचार्य महाराज ने कहा है अरहंत की पूजा, निर्ग्रंथों को दान और संतान को जन्म औरों से नहीं कराया जाता, स्वयं किया जाता है।

807

जड़ द्रव्यों की चिंता में ही जीवन चिता बनाई है।
रसना की लोलुपता में ही शुद्धि का न ध्यान रखा।।
पर के दोष दिखे हैं, निज के दोष न दिख पाये।
अंदर में है घना अंधेरा, सत्यस्वरूप न दिख पाये।।
कर्मों को दोष दिया करता, स्वयं नहीं पुरुषार्थ जगाया।
भाव शुभाशुभ जब करता है, पुण्य-पाप फल पाता हूँ।।
सारे पद जग के झूठे हैं, शाश्वतपना मिट जाते हैं।
मद का काम नहीं शिवपथ में, मम मद पूर्ण विनाश करो।।

808

बहिरात्मा जीव (प्राणी) बाह्यलिंग धारण करके बाह्य सुख छोड़कर जन्म-मरण करता रहता है। मुक्ति के लिए दु:ख को सहन करता है लेकिन मिथ्याभाव का नाश नहीं करता है, इसकारण मुक्ति सुख को नहीं पाता है, ऐसा प्राणी क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष को दण्डित नहीं करता, शरीर को दण्डित करता है, वह नहीं जानता, भावों की विशुद्धि जहाँ है, वहाँ मोक्षमार्ग है, समकित भाव नहीं है तो कर्म निर्जरा नहीं है।

809

समयसार बोलेंगे, समयसार सुनेंगे, समयसार में रहेंगे तो 'पर' में नहीं जा पायेंगे और पर का करने जायेंगे तो समयसार में रह नहीं पायेंगे। समय एक ही है चाहे समयसार में लगा दो, चाहे पर समय में लगा दो।

भगवत् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं – मुमुक्षु ! अब तुम पर भावों से निज स्वभाव की रक्षा में लग ही जाओ। अनादि अविद्या के वश हुआ अज्ञ प्राणी उसने स्वप्न में भी सोचा नहीं कि मैं जीव हूँ। सौभाग्य मानिये कि तुम अपने को जीव मान रहे हो।

810

दुनियां के सारे मशीन यंत्र, कुछ समय के लिए बंद हो जाते हैं लेकिन तू चिंतन की धारा को स्वप्न में भी नहीं बंद करके रखता। तेरी आस्त्रव की धारा कभी बंद नहीं होती। श्रुत सुनते ही श्रुत (ज्ञानमय) नहीं होता। सुनते यहाँ होते कहाँ। काषायिक भावों को पर भावों की आवश्यकता पड़ती है लेकिन शांत भावों के लिए पर भावों की आवश्यकता नहीं पड़ती है राग ज्यादा मत करो, णमो अरिहंताणं पढ़ा करो।

811

तीन प्रकार की चेतना है कर्म चेतना, कर्मफल चेतना, और ज्ञान चेतना। कर्म चेतना, कर्मफल चेतना के लिए, सारा जगत रो रहा है। 12वें गुणस्थान तक अशुद्ध ज्ञान चेतना, शुद्ध ज्ञान चेतना 13-14 गुणस्थान में एवं सिद्ध परमेश्वर में है।

एकेन्द्रिय जीव से पूछ लेना कि कितना भोग है, चल फिर नहीं सकता, कर्मफल चेतना को भोग रहा है। ज्ञान का, इंद्रियों का दुरुपयोग किया, इसलिए भोग रहा है।

812

कर्म विचार नहीं करते, जो ज्ञाता इस देह में है क्या था वह ज्ञाता है अशरीरी सिद्ध भगवान वह ज्ञाता।

अपने ज्ञान को वर्तमान में कहाँ लगा रहा है? जिस ज्ञान की धारा का उपयोग निज ज्ञेय में होना चाहिए था, वह पर ज्ञेयो में ज्ञाता भाव से हो रहा है, कर्ता भाव से हो रहा है, यदि देखने मात्र के लिए होता तो बंध नहीं होता, भोक्तृत्व भाव से, कर्त्तृत्व भाव से होने के कारण बंध है, भोग भी अनेक प्रकार से होता है।

813

अज्ञान से जिसकी मति मोहित है ऐसा जीव कहता है कि यह शरीरादि, धन-धान्यादि आदि परद्रव्य मेरा है। शरीर पुद्गल और तू उपयोग लक्षण वाला चेतन, फिर तू अपना रूप स्वरूप शरीर रूप कैसे देखता है, कैसे मानता है। आचार्य समयसार में व्याख्यान कर रहे हैं ज्ञानी जीव, अज्ञानी जीव दो धाराएँ जीव की चल रही है। जहाँ पर दृष्टि होगी, नियम से कषाय भाव होगा। जहाँ कषाय भाव है, वहाँ अज्ञान भाव है।

814

बिना सब कुछ छोड़े, समयसार का वैराग्य संभव नहीं है, आपकी परिस्थितियाँ, आपकी मन:स्थितियों से बन रही है सीधा कहिए, कषाय सता रही है विश्वास रखिए, ज्ञानी को परिस्थिति सताती ही नहीं। राग-द्वेष की भावना में परिस्थितियाँ खराब लगेगी। निर्मल परिणाम होंगे तो ज्ञानी, परिस्थितियाँ कुछ नहीं करती। दो-चार शास्त्रों को पढ़ लेने से ज्ञानी नहीं बन जाता, दो-चार आवश्यकों को, दो-तीन व्रतों को कर लेने से व्रती नहीं बन जाता, महाव्रत धारण करके भी वैरागी नहीं बन जाता।

(815)

ज्ञानी ! आत्म अनुशासन को कितना दिखता है आत्मा का कल्याण तो आत्मानुशासन से होगा। निज लक्ष्य को ध्यान में रखना भूल मत जाना त्रैकालिक रागदशा अज्ञानी की दशा है, जो परद्रव्य में राग कर रहा है, वह अज्ञानी बहिरात्मा है। मैं सुखी, मैं दुखी, मैं रंक हूँ, मैं राजा हूँ, यह सारे विकल्प बहिरात्मा में जन्म से रहते हैं, सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा होता है, वह ऐसे विकल्पों को नहीं करता, जो पर में आत्मबुद्धि रख रहे हैं, वह सब अज्ञानी है।

(816)

जो भेद–अभेद रत्नत्रय की भावना से युक्त है, वह ज्ञानी है – **'देह जीव को एक गिने बहिरात्म तत्त्व मुधा है'**

पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किसने किया ? – भाई ने

गजकुमार पर उपसर्ग किसने किया ? – ससुर ने

सुकुमार पर उपसर्ग किसने किया ? – भाभी ने

सुकौशल पर उपसर्ग किसने किया ? – माँ ने

आत्मा राजा है, तन शत्रु राजा है, परिणाम तेरा अधिकारी है।

(817)

स्वभाव में संयोग लगता नहीं, जब–जब संयोग लगेगा, तब–तब व्यवहार होगा। जो वस्तु का स्वरूप, सत्यार्थ, भूतार्थ है, इसमें कोई सहयोग नहीं है, निमित्त भी उपादान की योग्यता से नियमित रूप घटित होता है। प्रकाश, ज्ञान का कारण नहीं पदार्थ ज्ञान का कारण नहीं स्वावरण कर्म की क्षयोपशम की योग्यता ही पदार्थ का ज्ञायक है।

(818)

अंतरंग तप पर लक्ष्यपात करो। जो केवली के गुण हैं, उनका स्तवन करना ही केवली का स्तवन है, तीर्थंकर के अनंतचतुष्टय आदि गुण ही उनका स्तवन है, आप बंध अवस्था में अवश्य हो लेकिन अपने ज्ञान को अबंध दशा की ओर ले जाइए। इस आत्मा में अबंधभूत भी ज्ञेय हैं और आपका बंधभूत भी ज्ञेय हैं बंध अवस्था में संसारी हो, अबंध अवस्था में स्वयं में मोक्ष दिखाई देता है।

(819)

स्वभाव दृष्टि नहीं, तो संसार अवस्था में मुक्त तत्त्व का वेदन नहीं, तो पुरुषार्थ करोगे क्या? बंद के दुख का जिसे वेदन नहीं, वह निर्बंध होने का पुरुषार्थ क्यों करेगा? सम्यक्त्व तभी प्रकट होगा, जब जीव को बंध का भान हो, वेदन हो। बंध से भय होगा, तो भूल कर भी संयम से भूल नहीं करेगा। आत्मभाव, आस्रवभाव पर दृष्टि नहीं तो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा।

(820)

सच्चे भावलिंगी मुनि कुछ नहीं करने की साधना करते हैं। हमारे भगवान न किसी से खुश होते हैं न किसी से नाराज, सबसे कठिन काम है हाथ पर हाथ रखना। कर्त्तृत्व भाव ही संसार है, अकर्त्तृत्व भाव ही मोक्षमार्ग है न सुनने के, न सुनाने के भाव आये, समझना प्रभु बनने के भाव आ गये। मुनि दीक्षा लेना बहिरंग साधना है, कुछ न करना अंतरंग साधना है।

(821)

सर्व परसंबंधों में स्वयं को हटा लेना इसका नाम वैराग्य है निज संबंध में लीन हो जाना, इसका नाम चरित्र है निज-पर के संबंध को जानना इसका नाम सम्यग्ज्ञान है, जब तक वस्तु का निर्णय नहीं होगा, तब तक सम्यग्ज्ञान प्रारंभ नहीं।

तू किसी का कुछ नहीं कर पाएगा, राग-द्वेष करके बंध ही कर पायेगा, जिसको तत्त्व का बोध हो जाएगा, वह वैरागी होकर मुस्कुराता रहेगा।

(822)

यश-अपयश आत्मा का धर्म नहीं है, राग जहाँ है संपत्ति-विपत्ति है हल्का होना है, ऊपर उठना है तो राग छोड़ दो। तुम सुखी होना चाहते हो तो जो पकड़े हो उसे छोड़ दो।

कुत्ता रोटी का टुकड़ा पकड़े हैं, 10 कुत्ते उसके पीछे पड़े हैं, इसी तरह पुद्गल के टुकड़े हो, जब तक पकड़े रहोगे, तब तक कष्ट पीछे पड़े रहेंगे। जो तेरा है ही नहीं, उसे क्यों पकड़े हो ? क्या समझ नहीं आता ?

823

यदि नरक नहीं जाना है तो स्वभाव में मृदुता लाइए, क्षमा लाइए, सम्यक्त्व की आराधना कीजिए।

बहु–आरंभ, बहु–परिग्रह में लीन है तो भगवान भी तुझे नरक जाने से नहीं बचा सकते। जीव हिंसा से बचना, देह को सजाने से बचना, अशुभ कर्मों से बचना, अभक्ष्य भोजन से बचना। विषय–कषाय से बचना। यदि नरक नहीं जाना।

824

नग्नता ही भगवान जिनेन्द्र की मुद्रा है, वही निर्वाण प्राप्ति का रूप है भवनाश के लिए भगवान की आराधना नहीं है, परिणामों की विशुद्धि साधन है। हे ज्ञानी ! जगत का तू कुछ कर नहीं पाएगा। राग–द्वेष करके राख हो जाएगा।

जगत के लोगों को देखो जानो और जाने दो। जो तत्त्व में आनंद है वो आनंद जगत में कहीं होता नहीं है।

825

आत्मा जो है वह परभाव से बिल्कुल भिन्न हैं। खाने की थाली पर बैठा, नमक नहीं खाने में, चुपचाप खाकर चल दिया। गाली देकर तुझे कोई चला गया, तू मुस्कुरा दिया – समझना तूने समयसार पढ़ा है।

ज्ञान हुआ, दर्शन हुआ तो चारित्र क्यों नहीं, तीनों एक ही तो हैं, तब ही तो पूर्णता है 'अखण्ड स्वभावी' आत्मा का परमभाव है – 'आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं।'

(826)

ज्ञान का आनन्द लूटना है तो पहले अपने हृदय को खाली करो। निज निंदा करो। ज्ञानी ! पुण्य की चमक में चारित्र सत्य हो, यह कोई नियम नहीं।

बंध तो मिल-मिलाकर कर लेगा, जब छोड़ना पड़ेगा तो अकेले ही करना होगा। बंधन के काल में तो भीड़ भी होगी, मुस्कराने वाले भी होंगे, पर छूटने के लिए एकान्त में तुझे जाना होगा।

(827)

व्यवहार दृष्टि - मैं आपकी वंदना करता हूँ, मेरा दुःख दूर हो। दुःख दूर कैसे होगा, जब कर्मों का क्षय होगा। कर्मों का क्षय कैसे होगा, जब बोधि की प्राप्ति होगी। सम्यग्दृष्टि नही तो बोधि नहीं, बोधि नहीं तो समाधि नहीं। हे भगवान् मेरा समाधि मरण हो और सुगति में गमन होये, आपके गुणों की सम्पत्ति प्राप्त होये यह भक्ति मैं करता हूँ।

(828)

हे ज्ञानी, निज ज्ञान की निर्मली से अपने ज्ञान को निर्मल करो। कामना, वासना की ओर जा रहा है, ज्ञान पर के राग में जा रहा है ज्ञान। निज के वैराग्य से दूर हो रहा है ज्ञान। ज्ञान का दोष नहीं है, ज्ञान सविकल्प है, ज्ञान सतरंग है, ज्ञान में तरंगें उठती हैं, ज्ञान को सम्हाल ले ज्ञाता। यह ज्ञाता का पुरुषार्थ है, पर को मत सम्हाल, तत्त्व की खोजकर।

829

निर्बंध होने के लिए पापों पर ध्यान बिल्कुल नहीं देना होगा। अपने ज्ञान से शरीर को जाना, बाह्य पदार्थों को जाना तब इस जीव ने शरीर आत्मा में भेद ही नहीं समझा। संसार में इंद्रियों तथा विषयों का आनंद आया-लिया। हे मूढ़! ज्ञान दुर्बुद्धि हो गई। ये स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण। ज्ञायक आत्मा का स्वरूप नहीं है। हे योगी! इंद्रियों के मध्य में बैठा हुआ भी उनमें शून्य हो, वह द्रव्येन्द्रिय का जितेंद्रिय है।

830

अंतरंग शुद्धि तभी होगी, जब बहिरंग शुद्धि होगी। द्रव्य अहिंसा पले नहीं, और यूं कहे की भाव अहिंसा है जो बहिरंग के बिना अंतरंग की बात करता है, वह जैनदर्शन से विपरीत है। अंतरंग के निर्मल से, बहिरंग शुद्ध हो जाता है, संसार दृष्टि से, तत्त्व दृष्टि प्राप्त नहीं होती।

नए बालक को णमोकार के साथ 'सिद्धि अनेकांताश्च' भी सिखाना चाहिए, स्याद्वाद जैनधर्म की विशेषता है।

831

हे ज्ञानी जब तुझे समझ आ गया कि सारा जगत निज से भिन्न है तो जगत का मोह क्यों नहीं छोड़ता। तू परमात्मा निजानंद सुखरूप है तो फिर जग में सुख लेने क्यों फिरता है। ध्यान रखना किसी भी काल में आत्मद्रव्य परभूत एवं परद्रव्य आत्मभूत नहीं होंगे - इसका चिंतन करना।

832

जैनागम कहता है – असत् का जन्म नहीं होता, सत् का विनाश नहीं होता। वस्तु का अभाव नहीं होता, वस्तु का परिणमन होता है ज्ञानियो। आत्मा को, परमात्मा को, तुम भगवान कहकर भटक रहे हो। पहले उसे वस्तु मानिये। जो भगवान है, वह भी वस्तु है, मैं हूँ वह भी वस्तु है, आप हो वह भी वस्तु है।

आत्मरक्षा शब्द का अर्थ देहरक्षा कहना गलत है, आत्म-द्रव्य को कर्मपरमाणुओं से बचाकर रखना, यह आत्मरक्षा है।

प्रशस्त परिणाम रखना, अन्यथा आपके अहिंसाव्रत का पालन भावात्मक रूप से हो नहीं पायेगा। अपराधियों की चर्चा लोक में है, पापियों की चर्चा लोक में नहीं है।

बहिरंग साधना के बाद, अंतरंग साधना अनिवार्य है वरना उसका महत्त्व समाप्त हो जायेगा।

तीर्थंकरों पर उपसर्ग हुआ तो किसी बाहर वाले ने नहीं किया, इसलिए ज्ञानी जो नजदीक होते हैं, उनसे संभल कर रहना, मोह-राग-द्वेष उन्हीं से होता है।

जो निश्चय और व्यवहार स्वरूपवाले रत्नत्रय को नहीं जानता, वह जो करता है, वह सब मिथ्यारूप है।

परिणामों की दशा पर्याय से भी ज्यादा नाजुक है। पर्याय के विलीन होने में समय लगता है, परिणामों के ऊपर-नीचे होने में समय नहीं लगता। दीन में दीन परिणाम एक समय में भगवत्ता की ओर ले जाये।

833

भाव नहीं भव कहो।
भाव ही से भव है।
भावनायें 16 तो तीर्थंकर बन गये।
भावनायें होये 12 तो सम्यग्दृष्टि हो गये।
भाये सिद्धगुणमाला स्वर्गवासी हो गये।

834

न तू मुझको छूता है। न मैं तुझको छूता हूँ।
मैं सबसे अछूता हूँ। इसका पता तब होता।
जब ज्ञान सम्यक्त्व होता है।

835

विगत की न कर कोई बात।
अनागत में न कर कोई चाहत।
वर्तमान ही बस तेरा।
बनकर दिखा वर्द्धमान।

836

पर्याय की पूर्ति या परम की प्राप्ति
जानता ही नहीं परम को
जानता ही नहीं स्वयं को
एकाकी कार्य पर्याय की पूर्ति।

(837)

जिनकी बुद्धि पर्याय है, पर्याय को देखता, उसे जानता है, उसे समझता, उसे ही समझाता –

वह ज्ञानी होकर, त्यागी होकर भी उस सर्किल पर खड़ा है, चल रहा है, जिसका न कोई स्टार्ट है न कोई एण्ड।

(838)

खाना और निकालना
कमाना और खर्च करना
मैं मैं मेरा मेरा करते रहना
नाम की पंच लगाना
मान का झण्डा उठाना और क्या ?

(839)

संसार भाग्य के सहारे
मुक्ति पुरुषार्थ से पाले
संसार का केवल दृष्टा बन जा
सब कुछ छोड़ के, लोक का मालिक बन जा

(840)

तन नहीं, धन किस काम का
धर्म नहीं तो तन–धन किस काम के।
और अल्प ज्ञान बिन धर्म नहीं
चारित्र बिन ज्ञान किस काम का।

(841)

अतीत की ताप से झुलसा प्राणी,
वर्तमान के शीतल जल से शान्ति पाता।
देख, तेरी वर्तमान की क्रिया भाव किस ओर जाता,
मंद कषाय बिन, मात्र क्रिया से पुण्य बंध नहीं होता।

(842)

मोह गया जिसका,
कुछ ना करते हुए भी
मुक्ति का पात्र है,
मोह से घिरा जो
कुछ भी करते हुए
मुक्ति का पात्र नहीं है।

(843)

जीवन के आखिर पड़ाव पर भी,
तू उसी जीवन के बारे में सोच रहा।
भगवान महावीर की 72 साल की उम्र में,
उन्होंने 42 साल तप तथा केवलज्ञान में बिताये।

(844)

मन के कारण, कर्मों में बँधता मन को बांध ले, कर्मों से छूटता मन जड़ है और तू चेतन है।

845

चल रहा नहीं समय की धार में है तू
कर रहा नहीं कर्म की धार में है तू
कुछ भी नहीं तू कर्म की धार में है तू
ज्ञानी बनता तू अपना ज्ञान भी नहीं
दौड़ता दुनिया में न जहाँ से चला, वही खड़ा तू

846

संसारी – कर्म से प्रीति
साधर्मी – धर्म से प्रीति
सम्यग्दृष्टि की – परम से प्रीति

847

व्यवस्थित को व्यवस्थित करना चाहता
नियति को अपने अनुकूल करना चाहता
भगवान आदिनाथ पार्श्वनाथ बदल न पाये
तू केवल भावों को अच्छा, बुरा कह सकता
पाना तेरे हाथ नहीं, हाँ त्याग तू कर सकता।

848

समय का रुक जाना
तेरे हाथ नहीं,
हाँ, समय का सुधर जाना
तेरे हाथ में है।

849

कर्म शत्रु से करी मित्रता, नरक दुःख पाया,
इतना भी समझ न पाया,
योग से बंधता, योग से ही मुक्त होता

850

जब तक कर्मों की इन्द्रियों की पदार्थों की, अपनों की गुलामी है तेरी सारी पुण्य धर्म की क्रियायें निःसार हैं (व्यर्थ नहीं)।

851

न समय, न समयसार, न संयम, न त्याग
जो कर रहा, वो शर्मसार
सुन्दर शरीर विकास से भरा
झूठ, हिंसा, मान से भरा
धन, सम्पदा नाम के राग में पड़ा
क्या होगा उसका अन्त भला?

852

आत्मा पर मिथ्या संस्कार कब से
जिसका कोई आदि नहीं
कब तक रहेंगे जिसका कोई अंत नहीं
फिर हम कहाँ उसके बीच की धारा में
उस धारा का एक सर्किल बन गया
और हम उस सर्किल के पदार्थ बन गये

(853)

रागादिक वश पर वशी
नित्य प्रभावी जीव
घात करे अथवा नहीं
हिंसक कहे सदीव
आत्मा कषाय से युक्त होकर
पहले अपने द्वारा,
अपनी आत्मा का विनाश करता है

(854)

मैं भाग रहा हूँ और भागे ही जा रहा हूँ
सोचता हूँ अब निकला अब निकला
लेकिन फंसता ही जा रहा हूँ
थक गया, गिर गया
कोई उठाने भी नहीं आ रहा
धीरे से कान में आवाज आई
आंख खोल ले

(855)

न अतीत की सोच
न अनागत की सोच
केवल वर्तमान की सोच
उसमें मिथ्यात, कषाय, प्रमाद
मत जोड़

856

परिग्रह है तो आरम्भ है
आरम्भ है तो हिंसा है
मूर्च्छा है तो राग है
राग है तो हिंसा है
हिंसा ही पाप है
पाप है तो दुःख है

857

तन की परिणति को मैंने
अब तक माना धर्म प्रभो
सुखी-दुखी हुआ आज तक
कर्मों फलों का वेदन कर
कर्म जीतने का पुरुषार्थ न जागा आज तक

858

सम्यक्त्व का विनाश मिथ्यात से ही नहीं
अनन्तानुबंध कषाय से भी होता है
अतः सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए
चार कषाय तथा तीन मिथ्या की प्रकृति को
जीतना अनिवार्य है।

(859)

प्राणी दु:खों से नहीं छूटता,
पापों से जो नहीं छूटता।
गतियों के भ्रमण से नहीं छूटता,
कारण कर्मों से नहीं छूटता।।

(860)

संसार बदलता नहीं
तू अपने को बदल सकता
पर बदलता नहीं
नियति की अपनी सत्ता है
तेरी भी अपनी सत्ता है
तू क्यों अपनी सत्ता को नियति की सत्ता से जोड़ता?

(861)

जिनको गिरने का ही नहीं पता
वो उठने की कब सोचेंगे
एक कांटा चुभा सारे दिन चुभन रही
सारे शरीर में कांटे गड़ गये
चुभन जरा भी नहीं हुई

862

पर का अवलम्बन करके
उसकी प्रकृति होती है – व्यवहारनय
स्व का अवलम्ब करके
जिसकी प्रकृति होती है – निश्चयनय

भेद रत्नत्रय के बिना अभेद रत्नत्रय की उत्पत्ति हो नहीं सकती और भेद रत्नत्रय सकलचारित्र से होता है, सकल चारित्र व्यवहार सम्यग्दर्शन के होने पर होता है।

863

पर्याय को संभालने का जो कार्य तू कर रहा है, उसे बंद कर क्योंकि उसे संभाल कर नहीं रख पाओगे। पर्याय संभालते भी रहे तो कुछ भी मिलने वाला नहीं है, यदि परिणाम संभाल लिये तो एक दिन भगवान बन जाओगे।

864

मोक्ष इस धरती से,
जहां मैं हूँ,
न स्वर्ग से,
न भोग–भूमियों से,
तू कहाँ है ?